



FES-10

पर्यावरण अध्ययन Environmental Studies



विज्ञान विद्या शाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड एवं विशेषज्ञ समिति

अध्ययन बोर्ड	विशेषज्ञ समिति
<p>1. डा. पी. पी. ध्यानी निदेशक गोविन्द बल्लभ पन्त पर्यावरण संस्थान कोसी, कटारमल, अल्मोड़ा</p> <p>2. डा. डी. सी. उप्रेती पूर्व वैज्ञानिक एवं प्रोफेसर पर्यावरण विज्ञान आइ. ए. आर. आई., नई दिल्ली, विकासपुरी नई दिल्ली</p> <p>3. डा. एस. सी. गड़कोटी ऐसोशिएट प्रोफेसर पर्यावरण विज्ञान विधाशाखा जे. एन. यू., नई दिल्ली</p>	<p>1. डा० कुसुम नैथानी अरुणाचलम प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष पर्यावरण विज्ञान एवं प्राकृतिक संसाधन विभाग दून विश्वविद्यालय, देहरादून</p> <p>2. डा० पी०सी० जोशी प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष जन्तु विज्ञान एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग गुरुकुल कॉगडी विश्वविद्यालय, हरिद्वार</p> <p>3. डॉ० आर० के० श्रीवास्तव ऐसोशिएट प्रोफेसर पर्यावरण विज्ञान विभाग गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि विश्वविद्यालय, पन्तनगर</p>

ईकाई लेखन

ईकाई	यूनिट का नाम	लेखक/ लेखिका का नाम
1	पर्यावरण अध्ययन की बहुशास्त्रीय प्रकृति	प्रोफेसर पी०डी० पन्त
2	प्राकृतिक संसाधन	डॉ चारु चन्द्र पन्त
3	परितंत्र	डॉ० पूजा जुयाल
4	जैव विविधता और उसका संरक्षण	डॉ श्याम सिंह कुंजवाल
5	पर्यावरण प्रदूषण	डॉ० वीरेन्द्र कुमार
6	समाजिक मुद्दे एवं पर्यावरण	मो० अकरम
7	मानव जनसंख्या और पर्यावरण	डॉ० शालिनी सिंह

पाठ्यक्रम संपादन

<p>डा० अनिल कुमार यादव आचार्य एवं विभागाध्यक्ष वानिकी एवं पर्यावरण विज्ञान विभाग सोवन सिंह जीना परिसर, अल्मोड़ा कुमाऊँ विश्वविद्यालय</p>

शीर्षक	: पर्यावरण अध्ययन
ISBN No.	:
कीपीराइट	: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण	: 2017

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल— 263 139

उच्च शिक्षा की सभी शाखाओं के स्नातक पाठ्यक्रमों के लिए पर्यावरण अध्ययन का बुनियादी पाठ्यक्रम
Core module syllabus for Environmental Studies for undergraduate courses of all branches of Higher Education.

विषय-सूची

इकाई 1	पर्यावरण अध्ययन की बहुशास्त्रीय प्रकृति	5-11
1.1	परिभाषा, विस्तार एवं महत्व	5
1.2	जनजागरूकता की आवश्यकता	10
इकाई 2	प्राकृतिक संसाधन	12-39
2.1	उद्देश्य	12
2.2	परिचय	12
2.3	नवीकरणीय और अनवीकरणीय संसाधन	14
2.4	प्राकृतिक संसाधन और सम्बंधित समस्याएँ	17
2.4.1	वन संसाधन : उपयोग और अति दोहन, वन विनाश, केस अध्ययन, इमारती लकड़ी की कटाई, खनन, बांध निर्माण उनका वनों तथा जनजातीय लोगों पर प्रभाव।	17
2.4.2	जल संसाधन : भूजल और भूमिगत जल का उपयोग और अति शोषण, बाढ़, सूखा, जल सम्बन्धी विवाद, बांध के लाभ और समस्याएँ	22
2.4.3	खनिज संसाधन : उपयोग और दोहन, खनिज संसाधनों के दोहन और उपयोग का पर्यावरण पर प्रभाव, केस अध्ययन	28
2.4.4	खाद्य संसाधन : विश्व की खाद्यान्न समस्याएँ, खेती और अत्यधिक चराई से उत्पन्न परिवर्तन, आधुनिक कृषि के प्रभाव, उर्वरक कीटनाशकों से संबंधित समस्याएँ, जलभराव, खारापन, केस अध्ययन	29
2.4.5	ऊर्जा संसाधन : ऊर्जा की बढ़ती आवश्यकताएँ, ऊर्जा के नवीकरणीय और अनवीकरणीय स्रोत, ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का प्रयोग, केस अध्ययन	33
2.4.6	भूमि संसाधन : संसाधन के रूप में भूमि, भूमि का हास, मानवकृत भूस्खलन, मृदा अपरदन और मरुस्थलीकरण	36
2.5	प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में व्यक्ति की भूमिका	37
2.6	निर्वहनीय जीवन शैली के लिए संसाधनों का समतामूलक प्रयोग	37
2.7	निष्कर्ष	38
2.8	प्रश्नोत्तर	38

इकाई 3	पारितंत्र	40-51
3.1	पारितंत्र की अवधारणा	41
3.2	पारितंत्र की संरचना एवं कार्य	41
3.3	उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक	42
3.4	पारितंत्र में ऊर्जा का प्रभाव	42
3.5	पारितंत्र का क्रम	43
3.6	खाद्य-शृंखला, खाद्य जाल और पारितंत्रीय पिरामिड	44
3.7	निम्नलिखित पारितंत्रों का परिचय, प्रकार, बुनियादी विशेषता, संरचना एवं कार्य	48
3.7.1	वन्य पारितंत्र	48
3.7.2	चारागाही पारितंत्र	49
3.7.3	मरुस्थलीय पारितंत्र	50
3.7.4	जलीय पारितंत्र (तालाब, नाले, झीलें, नदी, समुद्र, खाड़ी)	50
इकाई 4	जैव विविधता और उसका संरक्षण	52-76
4.1	परिचय, परिभाषा, आनुवांशिकी, प्रजातीय और पारितंत्रीय विविधता	52
4.2	भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण	54
4.3	जैव विविधता का मूल्य: उपभोग मूल्य, उत्पादक मूल्य, सामाजिक एवं नैतिक मूल्य, सौंदर्यात्मक एवं वैकल्पिक मूल्य	57
4.4	वैश्विक राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तरों पर जैव विविधता	59
4.5	विराट विविधता वाले राष्ट्र के रूप में भारत	64
4.6	जैव विविधता के मुख्यस्थल	65
4.7	जैव विविधता को खतरा, आवास क्षति, वन्य प्राणियों का शिकार एवं मानव वन्य जीवन टकराव	66
4.8	भारत की संकटग्रस्त एवं स्थानीय जातियाँ	68
4.9	जैव विविधता का संरक्षण यथास्थल एवं बहिःस्थल	71
इकाई 5	पर्यावरण प्रदूषण	77-96
5.1	परिभाषा	77
5.2	प्रदूषण के कारण, प्रभाव और नियन्त्रण के उपाय	78
5.2.1	वायु प्रदूषण	79
5.2.2	जल प्रदूषण	81

5.2.3	मृदा प्रदूषण	85
5.2.4	समुद्री प्रदूषण	86
5.2.5	ध्वनि प्रदूषण	87
5.2.6	ऊष्मीय प्रदूषण	90
5.2.7	नाभिकीय प्रदूषण : आणविक खतरे	91
5.3	ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन: नगरीय और औद्योगिक अपशिष्ट का कारण, प्रभाव एवं प्रबन्धन	92
5.4	प्रदूषण की रोकथाम में व्यक्ति की भूमिका	93
5.5	प्रदूषण सम्बन्धी केस अध्ययन	93
5.6	आपदा प्रबन्धन: बाढ़, भूकम्प, चक्रवात और भूस्खलन	94
इकाई 6	सामाजिक मुद्दे एवं पर्यावरण	97-137
6.1	अनिर्वहनीय से निर्वहनीय तक	98
6.2	ऊर्जा से सम्बन्धित नगरीय समस्याएँ	101
6.3	जल संरक्षण, वर्षाजल का संचय तथा जल संभरों का प्रबन्धन	102
6.4:	जनता का पुनर्वास, इनकी समस्याएं एवं सरकार, केस अध्ययन।	108
6.5	पर्यावरण सम्बन्धी नैतिकता: समस्या एवं सम्बन्धित समाधान।	109
6.6	जलवायु परिवर्तन: भूमण्डलीय तापन, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत का ह्रास, परमाणु दुर्घटनाएँ एवं विध्वंस, केस अध्ययन।	114
6.7	बंजर भूमि का उद्धार	123
6.8	उपभोक्तावाद एवं अपशिष्ट पदार्थ।	125
6.9	पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986	126
6.10	वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981	127
6.11	जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974	128
6.12	वन्य जीवन संरक्षण अधिनियम	129
6.13	वन संरक्षण अधिनियम	130
6.14	पर्यावरण संबंधी कानून लागू करने में आने वाली समस्याएं	132
6.15	जन जागरूकता	134
इकाई 7	मानव जनसंख्या और पर्यावरण	138-151
7.1	जनसंख्या वृद्धि, विभिन्न राष्ट्रों में अंतर	138
7.2	जनसंख्या विस्फोट-परिवार कल्याण कार्यक्रम	142

7.3	पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य	146
7.4	मानवाधिकार	146
7.5	मूल्य शिक्षा	147
7.6	एचआईवी/एड्स	149
7.7	महिला एवं बाल कल्याण	149
7.8	पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका	150

इकाई 1 पर्यावरण अध्ययन की बहुशास्त्रीय प्रकृति

- 1.1 परिभाषा, विस्तार एवं महत्व
1.2 जनजागरूकता की आवश्यकता

1.1 परिभाषा, विस्तार एवं महत्व

प्रदूषण, वनों का दोहन, ठोस अपशिष्ट का निस्तारण, पर्यावरण के स्तर में गिरावट, राष्ट्रीय सुरक्षा, आर्थिक उत्पादकता, भूमण्डलीय तापीकरण, ओजोन की परत का हास तथा जैव विविधता की क्षति जैसी लगातार चिन्ताओं ने प्रत्येक मनुष्य को पर्यावरण के प्रति सचेत कर दिया है। विश्व भर में आयोजित हो रही संगोष्ठियों में न केवल पर्यावरण संरक्षण पर बहस छेड़ी है अपितु संयुक्त राष्ट्र द्वारा 1992 में रियो डि जेनेरो तथा 2002 में जोहान्सबर्ग में पर्यावरण विकास तथा सतत् विकास पर गहन विचार कर विश्व भर में लोगों के जहन में पर्यावरण के प्रति एक जागरूकता भी पैदा की है। आज सम्पूर्ण धरती पर एक ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है, जहाँ पर हर कोई पर्यावरण के प्रति सजग रहना चाहता है। पर्यावरणीय आपदाओं का प्रबन्धन आज एक महत्वपूर्ण व्यवसाय बन गया है। अतः पर्यावरण विज्ञान व पर्यावरणीय अध्ययन के महत्व को कमतर नहीं आँका जा सकता है। मानव की उन्नति के लिए सतत् विकास ही एक महत्वपूर्ण रास्ता है। सभ्यता के आरम्भ से ही मनुष्य पारिस्थितिकी पर विचार व व्यवहार करता आ रहा है। पुराणों में भी पर्यावरण के प्रति तथा मूल्यों का उल्लेख मिलता है। आज पर्यावरण की स्थिति और अधिक संकटमय हो गयी है तथा मानव को पर्यावरण व सतत् विकास के प्रति और अधिक जागरूक होने की जरूरत है।

पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति के बावजूद पर्यावरणीय अध्ययन को हमारे शैक्षिक गतिविधियों में उचित स्थान नहीं मिला है। इसको ध्यान में रखते हुये माननीय उच्च न्यायालय के निर्देश पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने पर्यावरण अध्ययन को एक बुनियादी पाठ्यक्रम के रूप में अनिवार्य विषय बनाया है, जिसे सम्पूर्ण भारतवर्ष में पढ़ाया जा रहा है।

आधुनिक समय में समाज के विकास का प्रारम्भ लगभग सन् 1750 ई0 में इंग्लैंड में कपड़ा मीलों के खुलने से हुआ माना जाता है, जब वहाँ औद्योगिक क्रान्ति का जन्म हुआ। मानव द्वारा किए जाने वाले कई कार्यों का उत्तरदायित्व वहाँ स्थापित मशीनों ने सम्भाल लिया। औद्योगीकरण ने देखते-देखते मानव जीवन को सुगम बना दिया। उद्योग किसी भी राष्ट्र की प्रगति एवं समृद्धि का प्रतीक बन गए। जीवन के हर क्षेत्र में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उद्योगों का प्रभाव पड़ने लगा। औद्योगिकीकरण के चलते नगरीकरण की प्रक्रिया भी तेज हुई। सम्पूर्ण विश्व का आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप ही परिवर्तित हो गया। नगरीकरण के साथ यातायात के साधनों में भी तीव्र गति से वृद्धि हुई। तीव्र जनसंख्या वृद्धि ने भी पर्यावरण प्रदूषण को बढ़ाने में सहयोग दिया। मानव ने अपनी महत्वाकांक्षाओं की प्राप्ति हेतु प्रदूषण को निरन्तर बढ़ावा दिया है, परिणामस्वरूप वर्तमान में पर्यावरण संकट सर्वत्र व्याप्त है।

किसी भी जीव पर वायुमंडल, जल, मृदा, विकिरणों का सम्मिलित प्रभाव पड़ता है। मानव एक ऐसा जीव है जिसके क्रियाकलापों का पर्यावरण व प्रकृति पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ता है। क्योंकि मानव ने अपने विकास के लिए, अपनी प्रगति के लिए प्राकृतिक घटकों का अंधा-धुंध दोहन किया है।

पर्यावरण की परिभाषा

पर्यावरण का उद्भव 'परि' व 'आवरण' की संधि से हुआ। पर्यावरण वह आवरण है जो जीव के चारों ओर उपस्थित है अर्थात् जल, थल, नभ तीनों में जैविक व अजैविक रूप में उपस्थित सभी अवयव, पर्यावरण का ही भाग है। पर्यावरण अध्ययन उस हर महत्वपूर्ण मुद्दों का सामना करता है जो किसी भी जीव को प्रभावित करता है। यह एक कई विषयों को मिलाकर किया जाने वाला अध्ययन है जो हमारे रोज के जीवन यापन पर अपना प्रभाव छोड़ते हैं। यह एक तरह से एक व्यावहारिक विज्ञान है जिसे प्रायोगिक रूप में आम जन को विश्वास दिलाना होता है। यह अध्ययन का एक व्यापक क्षेत्र है जो पर्यावरण तथा मानव के सम्बन्धों का अध्ययन करता है।

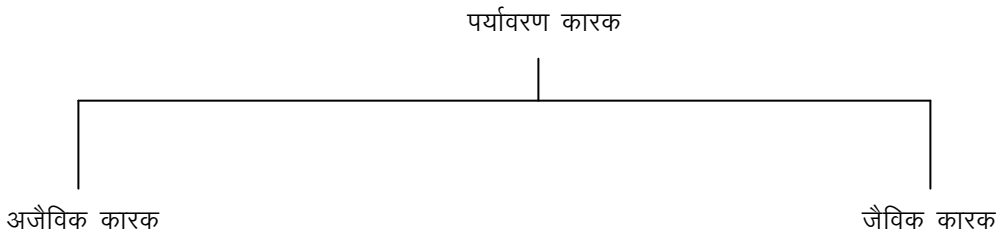
पर्यावरण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है।

1. पर्यावरण, समस्त जीवों के चारों ओर उपस्थित जैविक व अजैविक घटकों तथा प्राकृतिक व अप्राकृतिक परिस्थितियों का योग है।
2. पर्यावरण पृथ्वी पर उपस्थित सभी जैविक, भौतिक व रासायनिक अवयवों का सम्मिलित रूप है जो मनुष्य को प्रभावित करता है तथा जिसे मनुष्य प्रभावित करता है।
3. पर्यावरण समस्त सामाजिक, जैविक, भौतिक व रासायनिक कारकों का योग है जो सभी जीवों के चारों ओर एक आवरण के रूप में उपस्थित है।

पर्यावरणीय कारक

पर्यावरण मे ही समस्त जीव-जंतुओं का जीवन सम्भव है। यह पर्यावरण अनेक कारकों से मिलकर बना है, जिसका मनुष्यों और जीव-जंतुओं पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार मानव को प्रभावित करने वाले बाह्य बलों को अथवा परिस्थिति को कारक की संज्ञा दी जाती है। अर्थात् पर्यावरण का प्रत्येक अंग जो परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप से मानव, जीव-जंतुओं को प्रभावित करता है कारक कहलाता है।

सामान्य रूप से पर्यावरण के कारकों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है।



1. अजैविक कारक

सभी अजैविक कारक इसी श्रेणी में आते हैं। इसके अंतर्गत भौतिक कारक जैसे ताप, प्रकाश अथवा विकिरण इत्यादि व रासायनिक कारक जैसे मिट्टी, जल, गैसों इत्यादि तथा वातावरणीय कारक जैसे वायुमंडल इत्यादि आते हैं। यह सभी कारक एक-दूसरे पर निर्भर करते हैं।

(i) प्रकाश— प्राकृतिक रूप से सूर्य का प्रकाश एक बहुत बड़ा स्रोत है। तथा पृथ्वी पर पाई जाने वाली सभी ऊर्जाएँ इसी प्रकाश ऊर्जा का रूपान्तरण है। प्रकाश की उपस्थिति में ही पेड़-पौधे प्रकाश संश्लेषण का कार्य कर पाते हैं। अर्थात् सरल अकार्बनिक पदार्थों से जटिल कार्बनिक पदार्थों का संश्लेषण करते हैं। यही कार्बनिक पदार्थ सभी उपभोक्ताओं द्वारा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से काम में लिए जाते हैं।

(ii) ताप — ताप भी पर्यावरण का महत्वपूर्ण घटक है। पृथ्वी पर तापीय ऊर्जा, सौर विकिरणों के रूप में पहुँचती है। ताप पेड़-पौधे, जीव-जंतुओं सभी की गतिविधियों को प्रभावित करता है। पौधों में जल अवशोषण, प्रकाश संश्लेषण, श्वसन, वाष्पोत्सर्जन आदि सभी क्रियाएँ ताप से प्रभावित होती हैं। सभी पेड़-पौधे, जीव-जंतु, सूक्ष्मजीवों इत्यादि को अपनी गतिविधियों को सुचारु रूप से चलाने हेतु एक अनुकूल ताप की आवश्यकता होती है। इससे कम या अधिक ताप पर गतिविधियाँ विपरीत रूप से प्रभावित होती है।

जंतुओं में शीत निष्क्रियता व ग्रीष्म निष्क्रियता पाई जाती है। कुछ जीव, शीत रुधिर वाले होते हैं, जिनका तापमान वातावरण के ताप परिवर्तन के अनुसार घटता बढ़ता रहता है। जैसे-सांप, मेढक, मछली आदि। कुछ जीव उष्ण रुधिर वाले होते हैं जो समतापी कहलाते हैं। सभी स्तनपायी व पक्षी इसके उदाहरण हैं। ये वातावरण के बदलते तापमान के उपरान्त भी अपने शरीर का तापमान स्थिर रख सकते हैं। ताप के कारण कई जीवों में उष्णीय प्रवास भी पाया जाता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण 'साइबेरियन क्रैन' का है। जो साइबेरिया से शीत ऋतु (कम ताप) में भारत आते हैं व मार्च के अंत तक वापस चले जाते हैं।

(iii) मृदा घटक — मृदा पृथ्वी की ऊपरी सतह का एक महत्वपूर्ण भाग है, जो कि पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी पौधों व जंतुओं के लिए आधार प्रदान करती है। यह पेड़-पौधों को आवश्यक खनिज तत्व उपलब्ध कराती है

जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया सुचारु रूप से चल पाती है और समस्त जीव-जंतु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इसी भोजन पर निर्भर करते हैं।

(iv) जल घटक – पृथ्वी का लगभग 70 प्रतिशत भाग जल से ढका हुआ है एवं जल जीवन के लिए आवश्यक घटक है। क्योंकि जल न सिर्फ जीवों के शरीर का एक घटक है बल्कि उनकी मूलभूत आवश्यकता व कई जीवों (जलीय जीवों) का आवास भी है। जल ही वातावरण में आर्द्रता, ताप, मानसून आदि को नियंत्रित करता है।

वातावरण कारक से हमारा सन्दर्भ वायुमण्डल व उसमें उपस्थित विभिन्न गैसों से है। वायुमण्डल हमारे चारों ओर वायु का कई किलोमीटर ऊँचाई तक फैला आवरण है। यह आवरण पर्यावरण का महत्वपूर्ण भाग है, जिसमें उपस्थित ऑक्सीजन के कारण, पृथ्वी पर जीवन संभव है। वायुमण्डल में उपस्थित मुख्य गैसों, नाइट्रोजन 78% व ऑक्सीजन 21% व अल्पमात्रा में उपस्थित गैसें जैसे जलवाष्प, कार्बन डाईऑक्साइड, निऑन, हीलियम, आर्गन आदि के साथ एक सन्तुलन बनाए रखती है।

वायुमण्डल की संरचना

वायुमण्डल पृथ्वी की सतह से 500 किलोमीटर ऊँचाई तक फैला हुआ है। जिसमें तापमान -92° सेंटीग्रेड से 1200° सेंटीग्रेड तक होता है। इसमें वायु की अनेक परतें पाई जाती हैं। इसके आधार पर इसे चार भागों में बांटा गया है।

(i) क्षोभ मण्डल – यह वायुमण्डल का सबसे निचला स्तर है व पृथ्वी की सतह से 11 किलोमीटर ऊँचाई तक फैला हुआ है। इसमें अधिक मात्रा में धूल कण, बादल और जलवाष्प उपस्थित होने के कारण यहाँ मौसमी घटनाएँ होती हैं। क्षोभमण्डल का सबसे ऊपरी स्तर, जो क्षोभ मण्डल व समताप मण्डल के बीच का, संक्रमण स्थिति वाला भाग है उसे क्षोभ स्तर कहते हैं। यह करीब 1-1.5 किलोमीटर चौड़ा होता है।

(ii) समताप मंडल – क्षोभ स्तर से ऊपर लगभग 13 से 50 किलोमीटर तक का क्षेत्र समताप मण्डल कहलाता है। इस भाग में बादल बिल्कुल नहीं होते हैं एवं मौसमी परिवर्तन भी नहीं होते हैं। वायुदाब बहुत न्यून हो जाता है। समताप मण्डल में ही 15 किलोमीटर से 25 किलोमीटर की ऊँचाई के बीच ओजोन गैस की अधिकता होती है। इसे 'ओजोन स्तर' भी कहते हैं। यह स्तर सूर्य से आने वाली हानिकारक पराबैंगनी किरणों का अवशोषण कर उन्हें पृथ्वी तक नहीं पहुँचने देती है। अतः यह परत मानव जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण रक्षा कवच का कार्य करती है।

(iii) मध्य मण्डल – लगभग 50 किलोमीटर से 85 किलोमीटर तक का भाग मध्य मण्डल कहलाता है। इस क्षेत्र में ताप में गिरावट -80° सेंटीग्रेड से -90° सेंटीग्रेड तक आती है। इस क्षेत्र में ताप में इतनी गिरावट आने का मुख्य कारण यह है कि यहाँ विकिरण अवशोषक गैसों अनुपस्थित होती है।

(iv) आयन मण्डल – यह क्षेत्र 85 किलोमीटर से लगभग 500 किलोमीटर तक का है। इस क्षेत्र में सूर्य विकिरणों एवं पराबैंगनी किरणों की अधिकता के कारण वायुमण्डलीय गैसों आयनिक अवस्था में रहती है। इसी कारण इस क्षेत्र को आयन मण्डल कहते हैं। इस क्षेत्र का तापमान अनिश्चित होता है।

पर्यावरण की विशेषताएँ

पर्यावरण की महत्वपूर्ण विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

1. पर्यावरण का निर्माण जैविक और अजैविक तत्वों से मिलकर बना होता है।
2. जीवों के चारों ओर की वस्तुएँ पर्यावरण का निर्माण करती हैं।
3. पर्यावरण सदैव परिवर्तनशील है। इसकी परिवर्तनशीलता का प्रमुख कारण सूर्य से प्राप्त ऊर्जा है।
4. पर्यावरण के प्रति जीवों में अनुकूलता पाई जाती है।
5. पर्यावरण स्व-पोषण एवं स्व-नियंत्रण पर आधारित है।
6. पर्यावरण के अंतर्गत विशिष्ट भौतिक क्रियाएँ कार्यरत होती हैं।
7. पर्यावरण में पार्थिव एकता के साथ-साथ क्षेत्रीय विविधता भी परिलक्षित होती है।
8. पर्यावरण में जैव-जगत का निवास पाया जाता है।
9. पर्यावरण के जीवों में परस्पर सहवास अनिवार्य लक्षण है।
10. पर्यावरण में संसाधनों का भण्डार है।
11. पर्यावरण का प्रभाव दृश्य और अदृश्य दोनों रूपों में परिलक्षित होता है।

विस्तार

पर्यावरण अध्ययन मूलतः परिस्थितिकी के सिद्धान्त, पर्यावरण विज्ञान, भूगोल, मनुष्य जाति का विज्ञान, विधि, अर्थशास्त्र, सामाजिक विज्ञान, योजना, प्रदूषण नियंत्रण, प्राकृतिक संसाधनों तथा प्रबंधन का एक मिलाजुला परिवेश है। पर्यावरण ही किसी भी जीवित जीव के जीवित रहने योग्य परिस्थिति का निर्माण करता है। किसी भी जीव की उत्तरजीविता सामग्री की नियमित आपूर्ति तथा उसके पर्यावरण से अपशिष्ट निपटान पर निर्भर होती है। पर्यावरण की परिस्थिति में गिरावट मनुष्य के अस्तित्व एक अतिमहत्वपूर्ण समस्या बन गयी है। मिट्टी, पानी व वायु प्रदूषण जीवित जीवों के जीवन के लिए अभिशाप बन गया है, तथा प्राकृतिक संसाधनों का अभाव भी होने लगा है। पर्यावरण अध्ययन का उद्देश्य मानव को उसके पर्यावरण के प्रति सजग करना है।

पर्यावरण अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र शामिल हैं।

1. पर्यावरण तथा इसे सम्बन्धित समस्याओं के प्रति जागरूकता तथा संवेदनशीलता विकसित करना।
2. लोगों की पर्यावरण संरक्षण के लिये सक्रिय साझेदारी।
3. पर्यावरणीय समस्याओं के पहचान व निदान हेतु कौशल विकास
4. प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण को मन में धारण करने की सोच मन में बैठाना
5. पर्यावरण से सम्बन्धित योजनाओं का मूल्यांकन सामाजिक, आर्थिक पारिस्थितिकी तथा सौन्दर्य के कारकों को ध्यान में रखकर करना।

पर्यावरण का क्षेत्र

पर्यावरण का अध्ययन क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत है, जिसके अन्तर्गत सूक्ष्म पारिस्थितिक तन्त्र से लेकर वृहद् जीव मण्डलीय पारिस्थितिक तन्त्र के अध्ययन को सम्मिलित किया जाता है। पर्यावरण के अन्तर्गत चार प्रमुख घटकों को सम्मिलित किया जाता है।

1. **स्थल मण्डल** – स्थल मण्डल इसमें समस्त बाहरी भूपटल, सागर व महासागर की सतह भी सम्मिलित है। पर्यावरण का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव है। इसके अंतर्गत धरातल की रचना, मृदा, चट्टानों, भू-आकृतियों, भूमिगत जलस्रोतों और प्राकृतिक संसाधन सम्मिलित हैं। इन सभी से मिलकर पर्यावरण का निर्माण होता है और ये सभी जीवन के हर पहलू को प्रभावित करते हैं। इसकी मोटाई लगभग 50 किलोमीटर मानी जाती है।
2. **जल मण्डल** – जल मण्डल के अन्तर्गत पृथ्वी पर पाए जाने वाले सभी जल स्रोतों, सागरों, महासागरों, नदियों, झीलों, तालाबों, कुओं, बावड़ियों और पोखरों को सम्मिलित करते हैं। जल जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। जल मण्डल व स्थलमण्डल के आयतन में 7:3 का अनुपात है।
3. **वायु-मण्डल** – भू-भाग और जलमण्डल के चारों ओर पाया जाने वाला वायु का आवरण वायुमण्डल कहलाता है। इसमें स्थल एवं जल मण्डल दोनों ही समाहित हैं। वायु मण्डल पर्यावरण का गतिशील घटक है, जिसमें निरन्तर मौसमी परिवर्तन होते रहते हैं। इसको भू-भाग की सतह से अधिकतम सीमा लगभग 10,000 किलोमीटर तक स्वीकार की गई है। इसमें ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, ऑर्गन, कार्बन डाईऑक्साइड, हाइड्रोजन, हीलियम और ओजोन गैसों विभिन्न अनुपात में पाई जाती हैं। वायुमण्डल में क्षोभमण्डल, समताप मण्डल, मध्यमण्डल और आयनमण्डल चार परतें पाई जाती हैं।
4. **जैव मण्डल** – पृथ्वी पर जीवन सम्भव बनाने वाली परत 'जैव मण्डल' कहलाती है। यह परत वायु मण्डल, स्थल मण्डल और जल मण्डल के मिलने से बनी एक पतली पट्टी के रूप में पाई जाती है। जिसमें सभी पौधों और जीवों का जीवन पाया जाता है। इसकी मोटाई भू-पटल की सतह से लगभग 7 किलोमीटर गहराई तक है।

पर्यावरण का महत्व

पृथ्वी का निवासी होने के कारण, हमारा कार्य का तरीका इस उपग्रह तथा उसके निवासियों पर प्रभाव डालता है। चक्रवात, भूकम्प, ज्वालामुखी विस्फोट जैसी कुछ प्रमुख आपदाएँ हमारे पर्यावरण को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। मानवीय गतिविधियाँ जैसेकि पर्यावरण में प्रदूषण का प्रभाव, वनों का कटना व नदियों पर बांधों को निर्माण ने हमारे पर्यावरण को नुकसान पहुँचाया है। पर्यावरण अध्ययन वह विज्ञान है जिसके माध्यम से मनुष्य तथा उसके पर्यावरण में सम्बन्धों पर अध्ययन किया जाता है। वर्तमान शताब्दी में जीवन को बनाए रखने के लिए पर्यावरण की गुणवत्ता को बनाए रखना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब हम सभी पर्यावरण के महत्व को समझें।

केविन आर0 कोक्स ने अपनी पुस्तक 'पर्यावरणीय गुणवत्ता का भूगोल में स्वस्थ पर्यावरण के निम्न आधार बतलाए हैं।

1. पर्यावरण में किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं होना चाहिए।
2. पर्यावरण स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिए।
3. पर्यावरण में पर्याप्त नियोजन की सम्भावना हो।
4. पर्यावरण में मनोरंजन की पर्याप्त सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए।
5. पर्यावरण में उत्तम आवास की व्यवस्था हो।
6. पर्यावरण में शिक्षा की सुविधा हो।
7. पर्यावरण में पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध हो।

स्वस्थ पर्यावरण के अंतर्गत किसी भी प्रकार का प्रदूषण नहीं पाया जाता लेकिन पर्यावरण के जैविक और अजैविक घटकों की संतुलित अवस्था से परिवर्तित होने और अवांछित तत्वों के प्रवेश से पर्यावरणीय गुणवत्ता में ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है, जो पर्यावरण प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, भूमि प्रदूषण, रेडियोधर्मी प्रदूषण, खाद्य प्रदूषण, जनसंख्या प्रदूषण, मानसिक प्रदूषण जैसे विभिन्न स्वरूपों में हमारे सामने आता है।

भौतिक पर्यावरण के विभिन्न घटकों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध

सभी प्रकार के जैविक-अजैविक संगठक पर्यावरण के उपरोक्त चार घटकों के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार पर्यावरण अध्ययन के क्षेत्र में निम्न विषय वस्तु को सम्मिलित किया जा सकता है।

1. पर्यावरण के विभिन्न घटकों का क्षेत्रीय ओर विश्वव्यापी अध्ययन।
2. प्राकृतिक संसाधनों का अध्ययन और सिमटते संसाधनों की समस्या।
3. जैव विविधता का अध्ययन, उपलब्धता के आधार पर वर्गीकरण और संकटग्रस्त प्रजातियों की समस्या का अध्ययन।
4. पर्यावरण प्रदूषण –जल, वायु, भूमि, ध्वनि, रेडियोधर्मी, सागरीय प्रदूषण के कारण मानव पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।
5. पर्यावरण प्रबन्धन के विभिन्न पक्षों का अध्ययन।
6. पर्यावरण के प्रति चेतना व जागृति उत्पन्न करने हेतु 'पर्यावरण शिक्षा' का मार्गदर्शन करना।
7. विभिन्न राष्ट्रों की पर्यावरण स्थितियों और पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन।
8. पर्यावरण संरक्षण हेतु स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कानूनी उपबन्धों और प्रयासों का अध्ययन।
9. संसाधनों के उपयोग का पर्यावरण पर पड़ने वाला प्रभाव और पर्यावरण संरक्षण हेतु 'संरक्षित विकास की अवधारणा' का अध्ययन।
10. जनसंख्या नियंत्रित हेतु उपयोगी कार्यक्रम व नीतियाँ तैयार करना और प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सुझाव देना।
11. जनसंख्या, नगरीकरण और औद्योगीकरण से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।
12. पर्यावरण अपकर्षण का विभिन्न क्षेत्रों के आधार पर अध्ययन।
13. मानव और पर्यावरण के सम्बन्धों पर अध्ययन।
14. पर्यावरण संरक्षण में आमजन महिलाओं और गैर सरकारी संगठनों के भूमिका का अध्ययन।
15. विश्व में मानव जाति के समक्ष वर्तमान में उत्पन्न पर्यावरणीय समस्याओं का अध्ययन।

इस प्रकार पर्यावरण अध्ययन, पर्यावरण के घटकों, पर्यावरणीय समस्याओं और उनके मानव जीवन और पारिस्थितिकी पर पड़ने वाले प्रभावों, पर्यावरण संरक्षण हेतु तकनीकों, नीतियों, कानूनों सहित पर्यावरण से सम्बन्ध रखने वाले सभी तथ्यों का समावेश कर लेता है। इस प्रकार मानव जीवन और प्रकृति से सम्बन्धित लगभग सभी क्षेत्र पर्यावरण अध्ययन में समाहित हैं।

पर्यावरण अध्ययन का महत्व एवं जन-जागृति

पृथ्वी पर सभी जीव-जंतु और मानव अपने जीवन और विकास की अनुकूल परिस्थितियों के लिए पर्यावरण पर आश्रित हैं। पर्यावरण के अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। प्राचीन काल से ही जीव-जंतुओं और पर्यावरण का सम्बन्ध रहा है। जीव-जंतुओं ने पर्यावरण को संतुलित बनाए रखने में योगदान दिया है। लेकिन मानव ने अपने बौद्धिक ज्ञान से पर्यावरण का अत्यधिक दोहन किया है। भौतिकवादी और तीव्र विकास की आकांक्षा ने मानव को पर्यावरण में ह्रास के लिए जिम्मेदार बना दिया है। जैसे-जैसे मानव प्रगति और विकास करता गया वैसे-वैसे पर्यावरण की गुणवत्ता में कमी आती गई और पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन उत्पन्न होता गया। जैव-विविधता संकटग्रस्त हो गई। मानव सभ्यता के लिए स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु और स्वच्छ वातावरण का अभाव हो गया।

भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास

भारत और विश्व स्तर पर पर्यावरण संरक्षण व पुनर्निर्माण के लिए सर्वप्रथम स्वीडन की राजधानी स्टॉकहोम में 1972 में पर्यावरण सम्मेलन, जून 1992 में विश्व शिखर सम्मेलन ब्राजील के रियो-डी-जैनिरो में हुआ। इस सम्मेलन में सन् 2001 तक विश्व को पर्यावरण प्रदूषण से मुक्त करने हेतु महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किए गए। पर्यावरण की दिशा में भारतीय संसद ने सन् 1976 में 42वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित कर अनुच्छेद 48(क) जोड़ा। उसमें एक अनुच्छेद 51(क) जोड़ा गया, जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय का यह कर्तव्य है कि वह जंगलों, झीलों, नदियों तथा वन्य जीवों की सुरक्षा में अभिवृद्धि करने का प्रयास करें। पर्यावरण संरक्षण हेतु इन संवैधानिक आधारों पर संसद द्वारा विभिन्न कानूनों व नीतियों का निर्माण किया गया है।

1. राष्ट्रीय वन नीति, 1952
2. जल (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1974
3. वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981
4. वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980
5. पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986
6. संशोधित वन नीति, 1988
7. प्रदूषण निवारण नीति, 1988
8. सार्वजनिक दायित्व बीमा अधिनियम, 1991
9. प्रदूषण निवारण नीति, 1992
10. राष्ट्रीय पर्यावरण अभिकरण अधिनियम, 1995
11. राष्ट्रीय पर्यावरण सुनवाई अधिकार अधिनियम, 1997
12. जल नीति, 2000

पर्यावरण के क्षेत्र में न्यायपालिका की सक्रियता अनुच्छेद 32 व अनुच्छेद 226 के अधीन अधिकारिता के तहत परिलक्षित होती है। न्यायपालिका ने पर्यावरण को मूल अधिकार मानते हुए अनुच्छेद 19 'स्वतंत्रता का अधिकार' और अनुच्छेद 21 'प्राण और दैहिक स्वतंत्रता' के अधिकार को विस्तार देकर इसमें स्वच्छ पर्यावरण के अधिकार को सम्मिलित किया गया है।

1.2 जन जागरूकता की आवश्यकता

जन-जागृति से तात्पर्य जनता में पर्यावरण के प्रति सजगता उत्पन्न करने से है। पर्यावरण संरक्षण हेतु सरकारी प्रयासों की सफलता तब तक संदिग्ध बनी रहेगी जब तक कि सरकार द्वारा कार्यक्रमों और योजनाओं के प्रति जनता में जन-जागृति उत्पन्न न हो और जनता इसमें सहभागी न हो। पर्यावरण संरक्षण के प्रति जन-जागृति उत्पन्न करने हेतु व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए और अधिकारिक जनसहयोग प्राप्त करने का प्रयास होना चाहिए।

1. पर्यावरण के प्रति जागरूकता प्राकृतिक संसाधनों के बेहतर उपयोग के प्रति हमारे इरादे को दर्शाता है। संसाधनों के दुरुपयोग के कारण कई पर्यावरणीय समस्याओं का जन्म जैसे प्रदूषण, भूमण्डलीय तापीकरण व नाभिकीय आपदाओं का जन्म हुआ है।

2. पारिस्थितिकी केन्द्रित परिक्षेत्र को अपनाने से ही कुछ सहायता मिल सकती है। हमारी गतिविधियाँ इस तरह से समर्पित हों जिससे पर्यावरण पर न्यूनतम प्रभाव हो। व्यक्ति विशेष में इस तरह की जागरूकता पैदा करने से ही हम एक बेहतर ग्रह में रह सकेंगे।
3. पर्यावरण सम्बन्धी समस्याओं के सफलतापूर्वक समाधान के लिए पर्यावरण के प्रति जागरूकता पैदा करना एक अति महत्वपूर्ण कार्य है। यह पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित है। पर्यावरण शिक्षा का प्रावधान जहाँ एक तरफ व्यक्ति विशेष में इसके प्रति रुचि पैदा करना है, वहीं दूसरी तरफ, पर्यावरण के प्रति अधिक जागरूकता पर्यावरण शिक्षा के महत्व को एक नया आयाम देती है।
4. जनमानस में पर्यावरण जागरूकता पैदा करने के लिए जनसंचार तथा कई अन्य विधाओं का उपयोग किया जा सकता है।
5. बढ़ती आबादी, शहरीकरण तथा गरीबी ने प्राकृतिक संसाधनों पर गहरा दबाव बनाया जिससे पर्यावरण को काफी क्षति पहुँची। पर्यावरण के इस हरण को बचाने के लिए सरकार तथा विभिन्न संघटनों द्वारा अनेकों अभियान व कार्यक्रम चलाये हैं। केवल कानून बना देने से पर्यावरण की रक्षा नहीं हो सकती। जनता का जन आन्दोलन पर्यावरण संरक्षण के लिए अति महत्वपूर्ण है। पर्यावरण शिक्षा सीखने की वह विधि है जिसमें जनमानस को पूर्ण ज्ञान के साथ जागरूकता भी सिखायी जाती है।

मौसम में बदलाव, जैव विविधता की क्षति, मछली पालन में कमी, ओजोन परत का हास, लुप्तप्राय प्राणियों का अवैध व्यापार, ठौर-ठिकानों की तबाही, भूमि की उर्वता में गिरावट, भूमिगत जल में गिरावट, विदेशी प्रजातियों का पौधारोपण, पर्यावरण प्रदूषण, ठोस अपशिष्ट का निस्तारण, चक्रवात तथा मल का निस्तारण परिस्थिति को गंभीर क्षति पहुँचा रहा है।

पर्यावरण संरक्षण का क्षेत्र वर्तमान में मात्र सरकारी प्रयासों तक ही सीमित न होकर गैर-सरकारी संगठनों और सामुदायिक संगठनों का विषय बन गया है। इन संगठनों ने जनता में स्वावलम्बन की भावना उत्पन्न करने के साथ ही पर्यावरण प्रदूषण की जानकारी देने और उनके संरक्षण हेतु आगे आने के लिए प्रेरणा भी दी है। स्वैच्छिक संगठनों ने सरकार और विदेशी एजेंसियों द्वारा विकास के नाम पर पर्यावरण विनाश के क्षेत्र में किए गए औद्योगिक और गैर-औद्योगिक कार्यों का संगठित होकर विरोध किया है। ऐसे बहुत से काम जो सरकार नहीं कर रही है, वह काम स्वयंसेवी संगठन कर रहे हैं। वे लोगों को समझा रहे हैं कि पर्यावरण कैसे बिगड़ता है? उसे कौन बिगाड़ रहा है? और उसे बचाने के लिए क्या-क्या किया जाना चाहिए? केरल साहित्य परिषद् ने इस क्षेत्र में केरल में बहुत काम किया है। इस संस्था की राज्य भर में 250 इकाईयाँ हैं और कुल 4,000 से अधिक सदस्य नुक्कड़ नाटक, लेखों, वार्ताओं, गांव की बैठकों, संगीत व नृत्यों तथा आंदोलनों द्वारा पर्यावरण के संदेश को घर-घर पहुँचाने की कोशिश कर रहे हैं।

अनुभवी लोगों का यह मानना है कि लोग पर्यावरण के प्रति जितने अधिक जागरूक होंगे, सरकार (केंद्र एवं राज्य दोनों ही) उसी अनुपात में पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होगी। अतः लोगों की जागरूकता ही देश के पर्यावरण को बचा सकती है। स्वयंसेवी संस्थाएँ सरकार के साथ हाथ से हाथ मिलाकर इस महत्वपूर्ण कार्य को कर सकती हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है राज्य सरकारों ने इस ओर ध्यान दिया है तथा वित्तीय सहायता तथा स्वयंसेवी संगठनों के तकनीकी ज्ञान एवं मानव संसाधनों से राज्य स्तर पर प्रत्येक जिले में पारिस्थितिक विकास शिविरों का आयोजन हुआ है। इन शिविरों का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी, ग्रामीण एवं आदिवासी युवकों में पर्यावरण के प्रति चेतना जगाना तथा उन्हें वास्तविक पर्यावरण-विकास कार्यों में शामिल करना है।

प्रश्न (Question)

1. पर्यावरण की परिभाषा दीजिए।
2. पर्यावरण की रचना के जैविक कारक क्या हैं?
3. पर्यावरण की रचना के भौतिक कारकों के नाम दीजिए?
4. वायुमण्डल की सभी परतों के नाम दीजिए।
5. पर्यावरण के कारकों का वर्णन दीजिए?
6. वायुमण्डल क्या है? विभिन्न परतों को वर्णन करते हुए समझाइये।
7. पर्यावरण अध्ययन की विविध विषयी प्रकृति के बारे में समझाइये।
8. पर्यावरण के महत्व व जन-जागृति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

इकाई – 2

प्राकृतिक संसाधन

- 2.1 उद्देश्य
- 2.2 परिचय
- 2.3 नवीकरणीय और अनवीकरणीय संसाधन
- 2.4 प्राकृतिक संसाधन और सम्बंधित समस्याएँ
- 2.4.1 **वन संसाधन** : उपयोग और अति दोहन, वन विनाश, केस अध्ययन, इमारती लकड़ी की कटाई, खनन, बांध निर्माण उनका वनों तथा जनजातीय लोगों पर प्रभाव।
- 2.4.2 **जल संसाधन** : भूजल और भूमिगत जल का उपयोग और अति शोषण, बाढ़, सूखा, जल सम्बन्धी विवाद, बांध के लाभ और समस्याएँ
- 2.4.3 **खनिज संसाधन** : उपयोग और दोहन, खनिज संसाधनों के दोहन और उपयोग का पर्यावरण पर प्रभाव, केस अध्ययन
- 2.4.4 **खाद्य संसाधन** : विश्व की खाद्यान्न समस्याएँ, खेती और अत्यधिक चराई से उत्पन्न परिवर्तन, आधुनिक कृषि के प्रभाव, उर्वरक कीटनाशकों से संबंधित समस्याएँ, जलभराव, खारापन, केस अध्ययन
- 2.4.5 **ऊर्जा संसाधन** : ऊर्जा की बढ़ती आवश्यकताएँ, ऊर्जा के नवीकरणीय और अनवीकरणीय स्रोत, ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का प्रयोग, केस अध्ययन
- 2.4.6 **भूमि संसाधन** : संसाधन के रूप में भूमि, भूमि का हास, मानवकृत भूस्खलन, मृदा अपरदन और मरुस्थलीकरण
- 2.5 प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में व्यक्ति की भूमिका
- 2.6 निर्वहनीय जीवन शैली के लिए संसाधनों का समतामूलक प्रयोग
- 2.7 निष्कर्ष
- 2.8 प्रश्नोत्तर

2.1 उद्देश्य

- प्राकृतिक संसाधनों और उनके उपयोग से सम्बंधित इकाई से जुड़ी अवधारणाओं/संकल्पनाओं और सामान्यीकरण जैसे प्रमुख शब्दों का परिचय प्राप्त करना।
- इकाई में प्रयुक्त मुख्य अवधारणाओं/संकल्पनाओं का अर्थ ज्ञान करना।
- इकाई के लिए व्यवहारगत रूप में शैक्षणिक उद्देश्यों को प्रकट करना।

2.2 परिचय

मानव और प्रकृति का गहरा एवं अटूट संबंध है। वह प्रकृति की गोद में उत्पन्न होता है और प्रकृति के तत्वों से ही जीवित रहता है। वस्तुतः मानव मात्र के विकास की समस्त आश्यकता प्रकृति की ही गोद में संपन्न होती है। वर्तमान समय में पर्यावरण पर दबाव बढ़ता जा रहा है और मानव प्रकृति से दूर होता जा रहा है। बीसवीं शदी में

सभ्य मानव ने प्रकृति के साथ अत्यंत बर्बरता की है। प्राकृतिक संसाधनों की प्रचुरता के बावजूद पृथ्वी पर उपलब्ध पदार्थों और ऊर्जा के विशाल भण्डार में से बहुत कम भाग ही मानव के लिए उपयोगी है, क्योंकि संसाधन या तो पूरी तरह से अगम्य हैं अथवा ऐसे रूप में उपलब्ध हैं, जिनका उपयोग नहीं किया जा सकता प्रकृति के भंडार का केवल वही भाग संसाधन बनता है, जो मानव की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उपयोग किया जा सकता है। इस प्रकार संसाधनों की यह परिभाषा दी जा सकती है कि प्राकृतिक भण्डार का वह अंश संसाधन है, जिसका विशिष्ट तकनीकी, आर्थिक और भौतिक पर्यावरण की अंतःक्रियाओं के द्वारा ही बनाए जाते हैं।

प्राकृतिक संसाधन का आशय

मनुष्य की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ जैव भौतिकी पर्यावरण के तत्वों को प्राकृतिक संसाधन कहते हैं। इसके अंतर्गत वायु, भूमि, मृदा, नदियाँ, झीलें, जल प्रपात, सागर, भूमिगत जल, खनिज संसाधन मानव के लिए तीन प्रकार से उपयोगी हैं।

1. एक तो ये विकास के लिए पदार्थ, ऊर्जा और अनुकूल दशाएँ प्रदान करते हैं।
2. इनसे पर्यावरण का निर्माण होता है, जिसमें मनुष्य तथा अन्य जीव रहते हैं। वायु, जल, वन और विविध प्रकार के जीव, मनुष्य के जीवन के लिए अनिवार्य हैं।
3. संसाधन विभिन्न प्रकार के होते हैं। इनमें से कुछ अनवीनीकरणीय तथा कुछ नवीनीकरणीय हैं।

प्राकृतिक संसाधन ऐसी प्राकृतिक पूंजी होती है जो निवेश की वस्तु में बदल कर बुनियादी पूंजी प्रक्रियाओं में प्रयोग की जाती है। इनमें शामिल हैं मिट्टी, लकड़ी, तेल, खनिज और अन्य पदार्थ जो कम या ज्यादा धरती से ही लिए जाते हैं। बुनियादी संसाधन का निष्कर्षण शोधन करके ज्यादा शुद्ध रूप में बदले जाते हैं, जिन्हें सीधे तौर पर इस्तेमाल किया जा सके (जैसे धातुएँ, रिफाईंड तेल) इन्हें आम तौर पर प्राकृतिक संसाधन गतिविधियाँ माना जाता है, हालांकि जरूरी नहीं है कि बाद में प्राप्त पदार्थ पहले वाले जैसा ही लगे।

2.3 प्राकृतिक संसाधनों का वर्गीकरण

उनके मूल के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों को निम्नलिखित प्रकारों में बांटा गया है:

1. **अजैविक** : अजैविक संसाधन वे संसाधन होते हैं जो गैर-जीवित चीजों और गैर-कार्बनिक पदार्थों से बनते हैं। इस प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों के कुछ उदाहरणों में पानी, वायु, भूमि और धातु जैसे लोहा, तांबा, सोना और चांदी शामिल हैं।
2. **जैविक** : ये वह संसाधन हैं जो जीवित प्राणियों, पौधों और जानवरों जैसे कार्बनिक पदार्थों से उत्पन्न होते हैं। इस श्रेणी में जीवाश्म ईंधन भी शामिल है क्योंकि वे क्षययुक्त कार्बनिक पदार्थ से प्राप्त होते हैं।

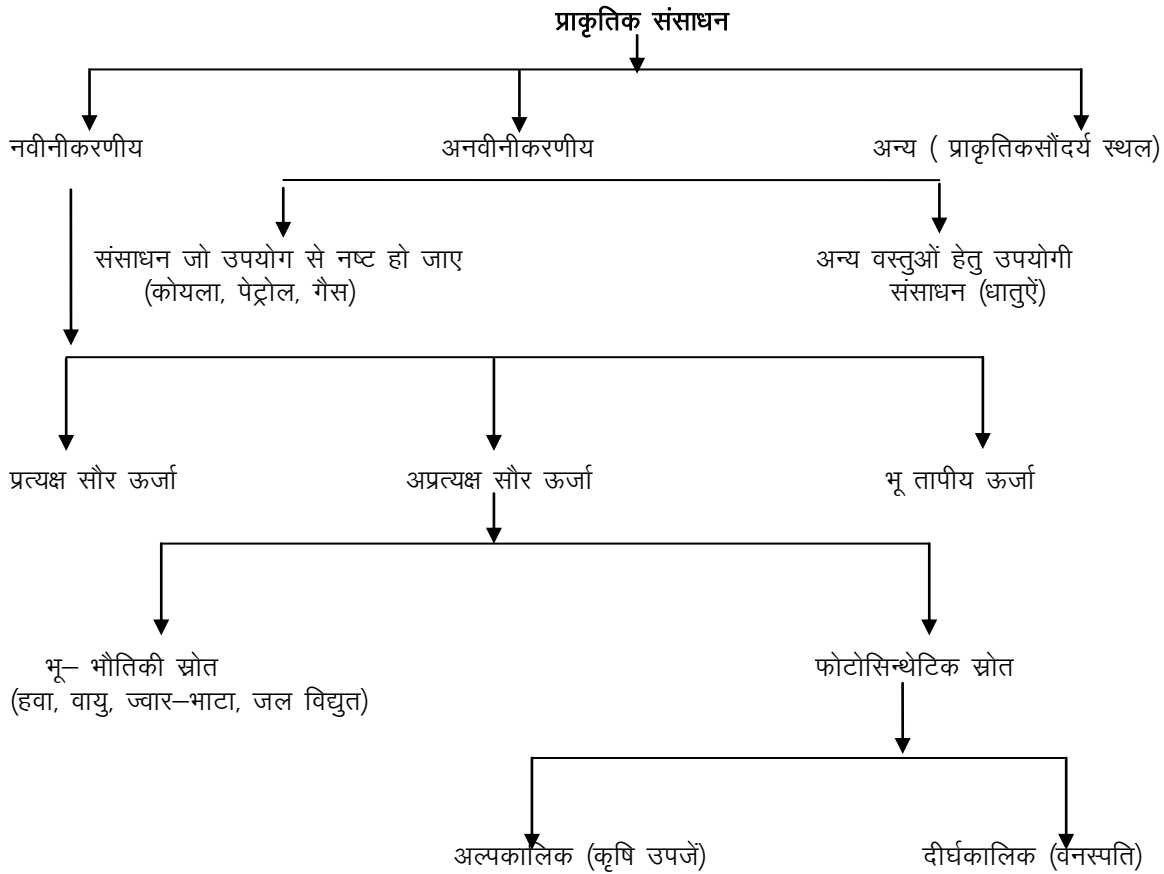
विकास के स्तर के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों को निम्नलिखित तरीके से वर्गीकृत किया गया है।

1. **वास्तविक संसाधन** : इन संसाधनों का विकास प्रौद्योगिकी की उपलब्धता और लागत पर निर्भर है। ये संसाधन वर्तमान समय में उपयोग किए जाते हैं।
2. **रिजर्व संसाधन** : वास्तविक संसाधन का वह भाग जिसे भविष्य में सफलतापूर्वक विकसित और उपयोग में लाया जाए उसे रिजर्व संसाधन कहा जाता है।
3. **संभावित संसाधन** : ये ऐसे संसाधन हैं जो कुछ क्षेत्रों में मौजूद होते हैं लेकिन वास्तव में इस्तेमाल में लाने से पहले उनमें कुछ सुधार करने की आवश्यकता होती है।
4. **स्टॉक संसाधन** : ये वह संसाधन हैं जिन पर इस्तेमाल में लाने के लिए सर्वेक्षण तो किए गए हैं लेकिन प्रौद्योगिकी की कमी के कारण अभी तक उपयोग में नहीं जाए जा सके हैं।

प्राकृतिक संसाधनों का पुनः उपयोग की दृष्टि से इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है।

1. नवीनीकरणीय संसाधन
2. अनवीनीकरणीय संसाधन

कुछ विद्वान इन दोनों वर्गीकरणों के अतिरिक्त अन्य प्राकृतिक संसाधनों के अंतर्गत प्राकृतिक सुरम्य स्थलों को भी सम्मिलित करते हैं।



आरेख 2.1 प्राकृतिक संसाधन के प्रकार

नवीनीकरणीय संसाधन

इसके अंतर्गत ऐसे संसाधन आते हैं जिनका प्रयोग मानव द्वारा पुनः किया जा सकता है। इन संसाधनों का निर्माण निरन्तर प्रकृति में होता रहता है। मानव के संतुलित प्रयोग से इनमें कमी नहीं आती है और इनका पुनः उपयोग किया जा सकता है। इन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. नवीनीकरण और अपरिवर्तनीय संसाधन : इसके अंतर्गत महासागरीय जल, सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, मृत्तिका, वायु आदि को शामिल किया जाता है।
2. नवीनीकरण लेकिन दुष्प्रयोजनीय संसाधन : अविवेकपूर्ण उपयोग से ऐसे संसाधनों की मात्रा तथा गुणवत्ता घट जाती है। इसके अन्तर्गत भूमि, वन्य, जीव, जल संसाधन आदि सम्मिलित हैं।
3. संपोषणीय और नवीनीकरणीय संसाधन : इन संसाधनों की नवीनीकरणीयता इनके उपयोग की विधि पर निर्भर करती है। इमारती लकड़ी, मानव संख्या, भूमि की उर्वरता, भूमिगत जल आदि को इसमें सम्मिलित किया जा सकता है।

नवीनीकरणीय संसाधन अथवा नव्य संसाधन वे संसाधन हैं जिनके भंडार में प्राकृतिक / पारिस्थितिक प्रक्रियाओं द्वारा पुनर्स्थापन होता रहता है। हालांकि मानव द्वारा ऐसे संसाधनों का दोहन (उपयोग) अगर उनके पुनर्स्थापन की दर से अधिक तेजी से हो तो फिर ये नवीनीकरणीय संसाधन नहीं रह जाते और इनका क्षय होने लगता है। उपरोक्त

परिभाषा के अनुसार ऐसे संसाधनों में ज्यादातर जैव संसाधन आते हैं जिनमें जैविक प्रक्रमों द्वारा पुनर्स्थापन होता रहता है। उदाहरण के लिए एक वन क्षेत्र से वनोपजों का मानव उपयोग वन को एक नवीकरणीय संसाधन बनाता है, किंतु यदि उन वनोपजों का इतनी तेजी से दोहन हो कि उनके पुनर्स्थापन की दर से अधिक हो जाए तो वन का क्षय होने लगेगा। उदाहरण : सामान्यतया नवीकरणीय संसाधनों में नवीकरणीय ऊर्जा संसाधन भी शामिल किए जाते हैं जैसे सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, भू-तापीय ऊर्जा इत्यादि। किंतु सही अर्थों में ये ऊर्जा संसाधन अक्षय ऊर्जा संसाधन हैं न कि नवीकरणीय।

अनवीनीकरणीय संसाधन

अनवीकरणीय संसाधन वे संसाधन होते हैं जिनके भंडार में प्राकृतिक प्रक्रियाओं द्वारा पुनर्स्थापन नहीं होता है। ऐसे संसाधन जिनका पुनः उपयोग निकट भविष्य में सम्भव नहीं होता उन्हें अनवीनीकरण संसाधन कहा जाता है। एक बार प्रयोग में लेने के पश्चात् इनके पुनः निर्माण में करोड़ों वर्षों का समय लगता है। इसके अंतर्गत खनिज पदार्थ, पेट्रोलियम, कोयला आदि को सम्मिलित किया जाता है। इन्हें तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. संपोषणीय लेकिन अनवीनीकरणीय संसाधन : अत्यधिक दोहन व उपयोग के पश्चात् ऐसे संसाधनों के नवीनीकरण की संभावना नहीं रहती। इनमें मृदा के भौतिक पदार्थ एवं जैव-विविधता शामिल है।
2. अनवीनीकरण लेकिन उपयोग योग्य संसाधन : जिन खनिजों का उपयोग बार-बार किया जा सकता है, उन्हें इस वर्ग में रखा गया है। ये हैं रत्न (मणि), खनिज जैसे लोहा, टिन, ताँबा, सोना और चाँदी।
3. अनवीनीकरण लेकिन एक बार उपयोग योग्य संसाधन : कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और अधात्विक खनिज एक बार उपयोग के बाद ही समाप्त हो जाते हैं।

समस्त धात्विक व अधात्विक खनिज इसी श्रेणी में आते हैं। ये संसाधन प्रकृति की गोद में करोड़ों वर्षों तक छिपने के बाद अपना स्वरूप बदलकर प्राप्त होते हैं। जैसे जली हुई लकड़ी बाद में कोयले का रूप प्राप्त कर लेती है। यह संसाधन समस्त मानव जाति के लिए अति महत्वपूर्ण है और इनकी महत्ता के साथ इनका उपयोग भी अत्यंत आवश्यक है।

प्रकृति के संरक्षण के विभिन्न उपाय :

प्राकृतिक संसाधन चाहे नवीकरणीय हो या गैर नवीकरणीय, जैविक हो या गैर-जैविक, प्रकृति के संसाधनों का संरक्षण होना अत्यंत आवश्यक है। इनके संरक्षण के कुछ उपाय दिए गए हैं जो सरकार और व्यक्तियों को प्रकृति के संरक्षण के लिए प्रयोग में लाने चाहिए।

1. प्राकृतिक संसाधनों का अधिक उपयोग करना बंद कर देना चाहिए। उपलब्ध संसाधनों को अपव्यय किए बिना समझदारी से उपयोग करने की जरूरत है।
2. वन्य जीवों के संरक्षण के लिए जंगली जानवरों का शिकार करना बंद कर दिया जाना चाहिए।
3. किसानों को मिश्रित फसल की विधि, उर्वरक, कीटनाशक और फसल चक्र के उपयोग को सिखाया जाना चाहिए। खाद, जैविक उर्वरक इस्तेमाल को उपयोग में लाने की जरूरत है।
4. वनों की अत्यधिक कटाई को नियंत्रित करना चाहिए।
5. वर्षा के जल की संचयन प्रणाली स्थापित की जानी चाहिए।
6. सौर, जल और पवन ऊर्जा जैसे नवीकरणीय संसाधनों के उपयोग को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
7. कृषि में इस्तेमाल होने वाले पानी को दोबारा उपयोग में लाने की प्रणाली का पालन करना चाहिए।
8. जीवाश्म ईंधन की खपत को कम करना एक अच्छा तरीका है।
9. कागज के उपयोग को सीमित करें और रिसाइक्लिंग को प्रोत्साहित करें।
10. पुराने लाइट अथवा बल्ब की जगह फ्लोरोसेंट बल्ब या एल0 ई0 डी0 बल्ब का इस्तेमाल करके ऊर्जा की बचत करना, जिससे बिजली बचाई जा सके। इसके अलावा जब आवश्यकता नहीं हो रोशनी के उपकरण और इलेक्ट्रॉनिक आइटम बंद करें।

प्राकृतिक संसाधनों का असमान उपयोग

वर्तमान समय में प्राकृतिक संसाधनों के एक बड़े भाग की खपत प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित देशों में हो रही है, जिसे उत्तम क्षेत्र कहा जा सकता है दक्षिण के विकासशील देशों जिनमें भारत एवं चीन आदि देश शामिल हैं, अधिक जनसंख्या होने के कारण उनमें अनेक संसाधनों का अत्यधिक उपयोग हो रहा है, किन्तु विकसित देशों में प्राकृतिक संसाधनों का प्रति व्यक्ति उपयोग अधिकांश विकासशील देशों की तुलना में 50 गुना अधिक हो रहा है। वैश्विक स्तर पर उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट और हरित गैसों की कुल मात्रा का 75 प्रतिशत उन्नत देशों में पैदा होता है। जीवाश्म ईंधन से प्राप्त होने वाली ऊर्जा का उपयोग भी विकसित देशों में प्रचुर मात्रा में होता है, इन देशों में खाद्य एवं अन्य पदार्थों का भी खासी मात्रा में उपयोग किया जाता है, जिसके फलस्वरूप अपशिष्ट भी अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। जैसे खाद्य उद्योग में प्रयुक्त होने वाली पैकेजिंग सामग्री, मनुष्य के उपयोग के लिये, मांस के उत्पादन के लिये कृषि की तुलना में अधिक भूमि की आवश्यकता पड़ती है। अतः जो देश मांसाहारी भोजन पर अधिक निर्भर रहते हैं, उन्हें उन देशों की तुलना में जहाँ अधिकांश जनसंख्या शाकाहारी है, चरागाहों के लिये अधिक क्षेत्र की आवश्यकता होती है, इस उपभोक्ता पद्धति को किसी देश या शहर के लिये इकोलॉजिकल फुटप्रिंट कहते हैं। इसी फुटप्रिंट के द्वारा उपभोक्ता पद्धति को मापा जाता है। वर्ष 2006 में अमेरिका में प्रति व्यक्ति फुटप्रिंट 9.0 ग्लोबल हेक्टेयर था, जबकि भारत में यह मूल्य 0.8 ग्लोबल हेक्टेयर था, जबकि भारत का फुटप्रिंट विश्व के औसत से 2.2 ग्लोबल हेक्टेयर से काफी कम है। हमारे प्राकृतिक संसाधनों में तेजी से होने वाले इस विनाश की भरपाई करना कठिन है।

भूमि उपयोग की योजना

भूमि स्वयं में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संसाधन है। यह खाद्यान्न, उत्पादन, पशुपालन, उद्योग स्थापित करने के लिये और बढ़ती इंसानी बस्तियों के लिये एक महत्वपूर्ण संसाधन है। भूमि के गहन उपयोग से इन रूपों का अक्सर "निर्जन भूमि, हमारे बाकी बचे जंगलों, चरागाहों, दलदली जमीनों और रेगिस्तानों की कीमत पर विस्तार किया जाता है, इसलिये भूमि के उपयोग हेतु इस प्रकार की विवेकपूर्ण नीति अपनाने की आवश्यकता है, जो यह तय कर सके कि विभिन्न उद्देश्यों के लिये कितनी भूमि उपलब्ध करायी जाए और कहाँ करायी जाए। प्रायः यह देखा जाता है कि औद्योगिक बस्तियों या बांधों का निर्माण वैकल्पिक स्थानों पर किया जा सकता है, परन्तु एक प्राकृतिक स्थान का कृत्रिम ढंग से सृजन नहीं किया जा सकता, वर्तमान समय के परिप्रेक्ष्य में यह नितान्त आवश्यक है कि प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा की जाए। दीर्घकालिक आवश्यकताओं के लिये प्रत्येक परितन्त्र में कम से कम 10 प्रतिशत भूमि और जलाशय निर्जन स्थानों के रूप में सुरक्षित रखने की आवश्यकता है, जिसके लिए सरकार द्वारा एक नियम बनाना होगा।

जिस प्रकार विश्व की जनसंख्या लगातार बढ़ती जा रही है, जिसके परिणाम स्वरूप भविष्य में जनसंख्या विस्फोट की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, इसके लिये पर्याप्त खाद्य के उत्पादन के लिये 'भूमि की लगातार बढ़ती भूख' के कारण आज संसाधन के रूप में भूमि पर गम्भीर दबाव पड़ रहा है। उद्योगों से निकलने वाले औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थों से गांवों एवं नगरों में गन्दे पानी से भूमि एवं जल संसाधन तो प्रभावित हो ही रहे हैं, उन्हें सामयिक आर्थिक लाभ के लिये कृषि और उद्योगों की तरफ भी मोड़ा जाता है। आज हालात ये हैं कि अत्यधिक महत्व वाले प्राकृतिक दलदलों को कृषि एवं अन्य कार्यों के लिये सुखाया जा रहा है।

प्राकृतिक भूमि के उपयोग में सबसे हानिकारक परिवर्तन का पता भारत समेत बाकी दुनिया में तेजी से होने वाले जंगलों के विनाश से चलता है। जंगल मनुष्य के एवं अन्य पशु-पक्षियों के जीवित रहने के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, जंगल हमें अनेक प्रकार की सुविधाएँ देते हैं।

निर्वाहनीय जीवन शैली की आवश्यकता

पृथ्वी पर मानव जीवन की गुणवत्ता और परितन्त्रों की गुणवत्ता संसाधनों के निर्वाहनीय उपयोग के सूचक हैं। मानव की निर्वाहनीय जीवनशैली के कुछ स्पष्ट सूचक जीवन में वृद्धि, ज्ञान में वृद्धि एवं आय में वृद्धि हैं। इन तीन कारणों को मिलाकर मानव विकास सूचकांक कहा जाता है। किसी पारितन्त्र में गुणवत्ता के सूचकों को मापना अधिक कठिन है जो निम्न प्रकार है।

1. स्थिर जनसंख्या या प्रजातियों के समाप्त होने का प्रतिशत।
3. पारितन्त्र में प्रजातियों की विविधता।

4. पारितन्त्र में प्राकृतिकपन की स्थिति।

2.4 प्राकृतिक संसाधन और सम्बन्धित समस्याएँ

प्राकृतिक संसाधनों में मूल रूप में ऐसे संसाधन शामिल हैं जिन्हें पर्यावरण से प्राप्त किया जाता है। जलवायु, खनिज तेल और वनों से होने वाले उत्पाद प्राकृतिक संसाधनों के कुछ मुख्य उदाहरण हैं। प्रकृति ने हमें कई उपहार जैसे हवा, पानी, भूमि, धूप, खनिज, पौधे और जानवर दिए हैं। मानव के लिए भूमि, जल, वायु, खनिज जैसे प्राकृतिक संसाधनों का बहुत अधिक महत्व है। प्रकृति के ये सभी तोहफे हमारे ग्रह को रहने लायक जगह बनाते हैं। इनमें से किसी के भी बिना पृथ्वी पर मनुष्य के जीवन का अस्तित्व सम्भव नहीं होगा। प्रारंभ में मानव संसाधनों का संग्रहक मात्र था, क्योंकि तब संसाधनों की बहुलता थी और उसकी आवश्यकताएँ कम थीं। मनुष्य प्रकृति का अंग था और तब संसाधनों पर मानव का प्रभाव बहुत ही कम पड़ता था। अब, जबकि ये प्राकृतिक संसाधन पृथ्वी पर प्रचुरता में मौजूद हैं, दुर्भाग्य से मानव आबादी में वृद्धि के कारण इनमें से अधिकांश की आवश्यकता बढ़ गई है। इनमें से कई प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग तीव्र गति से किया जा रहा है जबकि उनकी उत्पादन क्षमता कम है। इस प्रकार प्रकृति के संरक्षण तथा प्रकृति द्वारा उपलब्ध कराए प्राकृतिक संसाधनों को बचाने की आवश्यकता है।

जैसे-जैसे मानव संख्या में बढ़ोत्तरी हुई, उन्हें उन्नत किस्म के औजार तथा तकनीक मिली वैसे-वैसे ही संसाधनों का शोषण बढ़ने लगा। अब मानव प्रकृति का शोषक बन गया, आज हम जितने भी समस्याओं का सामना कर रहे हैं, उनमें से अधिकतर संसाधनों के अवैज्ञानिक उपयोग का ही परिणाम है।

प्राकृतिक संसाधन इस प्रकार हैं।

1. वन संसाधन
2. जल संसाधन
3. खनिज संसाधन
4. खाद्य संसाधन
5. ऊर्जा संसाधन
6. भूमि संसाधन

2.4.1 वन संसाधन

वन क्षेत्र मानव उपयोग के योग्य बहुत सारी चीजें उत्पन्न करते हैं, जिनका घरेलू कार्यों से लेकर औद्योगिक उत्पादन तक मनुष्य उपयोग करता है। अतः वन एक महत्वपूर्ण संसाधन है और चूंकि वन में पेड़-पौधे प्राकृतिक रूप से वृद्धि करते हुए अपने को पुनः स्थापित कर सकते हैं, यह नवीकरणीय संसाधन भी है। वनोपजों में सबसे निचले स्तर पर जलाने के लिए लकड़ी, औषधियाँ, लाख, गोंद और विविध फल इत्यादि आते हैं, जिनका एकत्रण स्थानीय लोग करते हैं। उच्च स्तर के उपयोगों में इमारती लकड़ी या कागज उद्योग के लिए लकड़ी की व्यवसायिक और यांत्रिक कटाई आती है।

जैसा कि सभी नवीकरणीय संसाधनों के साथ है, वनों से उपज लेने की एक सीमा है। लकड़ी या पत्तों की एक निश्चित मात्रा निकाल लेने पर उसकी प्राकृतिक रूप से समय के साथ पुनः भरपाई हो जाती है। यह मात्रा संपोषणीय उपज कहलाती है, किंतु यदि एक सीमा से ज्यादा दोहन हो ओर समय के सापेक्ष बहुत तेजी से हो तो वनों का क्षय होने लगता है और तब इनका दोहन संपोषणीय नहीं रह जाता और ये नवीकरणीय संसाधन भी नहीं रह जाते।

विश्व में और भारत में भी जिस तेजी से वनों का दोहन हो रहा है और वनावरण घट रहा है, इन्हें सभी जगह नवीकरणीय की श्रेणी में रखना उचित नहीं प्रतीत होता। वन अंतर्राष्ट्रीय दिवस के मौके पर वन संसाधन पर जारी आंकड़ों में कृषि संगठन (एफओएओ) के अनुसार वैश्विक स्तर पर वनों के क्षेत्रफल में निरंतर गिरावट जारी है और विश्व का वनों वाला क्षेत्र वर्ष 1990 से 2010 के बीच प्रतिवर्ष 53 लाख हेक्टेयर की दर से घटा है। इसमें यह भी कहा गया है कि उष्णकटिबंधीय वनों में सर्वाधिक नुकसान दक्षिण अमेरिका और अफ्रीका में हुआ है।

मौजूदा आंकड़ों के अनुसार भारत में वन और वृक्ष क्षेत्र 78.29 मिलियन हेक्टेयर है, जो देश के भौगोलिक क्षेत्र का 23.81 प्रतिशत है। 2009 के आंकड़ों की तुलना में, व्याख्यात्मक बदलावों को ध्यान में रखने के पश्चात् देश के वन क्षेत्र में 367 वर्ग किलोमीटर की कमी दर्ज की गई है।

वन संसाधनों का महत्व इसलिए भी है कि ये हमें बहुत से प्राकृतिक सुविधाएँ प्रदान करते हैं, जिनके लिए हम कोई मूल्य नहीं प्रदान करते और इसीलिए इन्हें गणना में नहीं रखते। उदाहरण के लिए हवा को शुद्ध करना और सांस लेने योग्य बनाना एक ऐसी प्राकृतिक सेवा है जो वन हमें मुफ्त में उपलब्ध करते हैं और जिसका कोई कृत्रिम विकल्प इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए नहीं है। वनों के क्षय से जनजातियों और आदिवासियों का जीवन प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है और बाकी लोगों का अप्रत्यक्ष रूप से। वर्तमान समय में वनों से संबंधित कई शोध हुए हैं और वनावरण को बचाने हेतु कई उपाय और प्रबंधन मॉडल सुझाए गए हैं।

वनों के प्रमुख उपयोग एवं वन-विनाश के कारण व समस्याएँ

वनों के कुछ प्रमुख उपयोग एवं वन-विनाश के कारण व समस्याएँ हैं।

1. घरेलू एवं व्यापारिक उद्देश्यों की पूर्ति तथा उत्पन्न समस्याएँ

लकड़ी की प्राप्ति के लिए पेड़ों की कटाई वनों के विनाश का प्रमुख कारण है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या, औद्योगिक एवं नगरीकरण में तीव्र वृद्धि के कारण लकड़ी की मांग में दिन प्रति दिन वृद्धि हो रही है। इसके परिणामस्वरूप वृक्षों की कटाई में भी निरंतर वृद्धि हो रही है। भूमध्यरेखीय सदाबहार वनों का प्रतिवर्ष 20 मिलियन हेक्टेयर की दर से कटान हो रहा है। विकासशील एवं अविकसित देशों में ग्रामीण जनता द्वारा नष्टप्रायः अवक्रमित वनों से पशुओं के लिए चारा एवं जलाने की लकड़ी का अधिक से अधिक संग्रह करने से बचा-खुचा वन भी नष्ट होता जा रहा है।

2. कृषि भूमि तैयार करना

क. मुख्य रूप से विकासशील देशों में मानव जनसंख्या में तेजी से हो रही वृद्धि के कारण यह आवश्यक हो गया है कि वनों के विस्तृत क्षेत्रों को साफ करके उस पर कृषि की जाए, ताकि बढ़ती जनसंख्या के लिए अनाज उत्पन्न किया जा सके। इस प्रवृत्ति के कारण सवाना घास प्रदेश का व्यापक स्तर पर विनाश हुआ है, क्योंकि सवाना वनस्पतियों को साफ करके विस्तृत क्षेत्र को कृषि क्षेत्र में बदला गया है।

ख. शीतोष्ण कटिबंधीय घास के क्षेत्रों (यथा सोवियत रूस के स्टेपी, उत्तरी अमेरिका के प्रेयरी, दक्षिणी अमेरिका के पंजाज, दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड तथा न्यूजीलैंड के डाउंस) की घासों एवं वृक्षों को साफ करके उन्हें वृहद् कृषि प्रदेशों में बदलने का कार्य बहुत पहले ही पूर्ण हो चुका है।

ग. रूमसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों के वनों को बड़े पैमाने पर साफ करके उन्हें उद्यान, कृषि भूमि में बदला गया है। इसी तरह दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के मानसूनी क्षेत्रों में तेजी से बढ़ती जनसंख्या की भूख मिटाने के लिए कृषि-भूमि का विस्तार करने के लिए वन क्षेत्रों का बड़े पैमाने पर विनाश किया गया है।

3. अतिचारण :

ऊष्ण तथा उपोष्ण कटिबंधीय एवं शुष्क तथा अर्द्ध-शुष्क प्रदेशों के सामान्य घनत्व वाले वनों में पशुओं को चराने से वनों का विनाश हो रहा है। यह ज्ञात है कि इन क्षेत्रों में विकासशील एवं अविकसित देशों में दुधारू पशु विरल तथा खुले वनों में भूमि पर उगने वाली झाड़ियों, घासों तथा शाकीय पौधों को खा जाते हैं, साथ ही साथ ये अपने खुरों से भूमि को इतना रौंद देते हैं कि उगते पौधों को भी हानि होती है। अधिकांश देशों में भेड़ों के बड़े-बड़े झुंडों ने तो घासों को पूर्णतया सफाया ही कर दिया है, जिसके फलस्वरूप पौधों की प्रजातियाँ लगातार समाप्त हो रही हैं।

4. वनों में लगने वाली अग्नि :

क. प्राकृतिक कारणों से या मानव-जनित कारणों से वनों में आग लगने से वनों का तीव्र गति से तथा बहुत कम समय में विनाश होता है। वनाग्नि के प्राकृतिक स्रोतों में वायुमण्डलीय बिजली सर्वाधिक प्रमुख है। मनुष्य भी जाने एवं अनजाने रूप में वनों में आग लगा देता है।

ख. मनुष्य अपने निहित स्वार्थों के लिए भी वनों को जलाता है। कृषि भूमि में विस्तार के लिए, झूमिंग कृषि के तहत कृषि कार्य के लिए घास की अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए आदि। वनों में आग लगने का कारण वनस्पतियों के विनाश के अलावा भूमि कड़ी हो जाती है, परिणामस्वरूप वर्षा के जल जमीन में अंतः संचरण बहुत कम होता है तथा धरातलीय बाह्य जल में अधिक वृद्धि हो जाती है, जिसके कारण मृदा अपरदन में तेजी आ जाती है। वनों में आए दिन आग लगने से जमीन पर पत्तियों के ढेर नष्ट हो जाते हैं, जिसके कारण ह्यूमन तथा पोषक तत्वों की भारी कमी हो जाती है। कभी-कभी तो ये पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं।

ग. वनों में आग के कारण मिट्टी, पौधों की जड़ों तथा पत्तियों के ढेरों में रहने वाले सूक्ष्म जीव मर जाते हैं। स्पष्ट है कि वनों में आग लगने या लगाने से न केवल प्राकृतिक वनस्पतियों का विनाश होता है तथा पौधों का पुनर्जनन अवरुद्ध हो जाता है वरन् जीवीय समुदाय की भी भारी क्षति होती है, जिसके कारण पारिस्थितिकीय असंतुलन उत्पन्न हो जाता है।

5. वनों का चारागाहों में परिवर्तन:

विश्व के रुमसागरीय जलवायु वाले क्षेत्रों एवं शीतोष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों, खासकर उत्तरी एवं दक्षिणी अमेरिका तथा अफ्रीका में डेयरी फार्मिंग के विस्तार एवं विकास के लिए वनों को व्यापक स्तर पर पशुओं के लिए चारागाहों में बदला गया है।

6. बहुउद्देशीय नदी-घाटी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के समय विस्तृत वन विनाश

बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाओं के कार्यान्वयन के समय विस्तृत वन क्षेत्र की हानि होती है, क्योंकि बांधों के पीछे निर्मित वृहद् जल भंडारों में जल का संग्रह होने पर वनों से आच्छादित विस्तृत भू-भाग जलमग्न हो जाता है, जिस कारण न केवल प्राकृतिक वन संपदा समूल नष्ट हो जाती है, वरन् उस क्षेत्र का पारिस्थितिकी संतुलन ही बिगड़ जाता है।

7. स्थानान्तरणीय या झूमिंग कृषि:

झूमिंग कृषि दक्षिणी एवं दक्षिणी-पूर्वी एशिया के पहाड़ी क्षेत्रों में वनों के क्षय एवं विनाश का एक प्रमुख कारण कृषि की इस प्रथा के अंतर्गत पहाड़ी ढालों पर वनों को जलाकर भूमि को साफ किया जाता है। जब उस कृषि की उत्पादकता घट जाती है तो उसे छोड़ दिया जाता है।

वन संसाधन का संरक्षण

मनुष्य इस पृथ्वी का सबसे सफलतम प्राणी है और उत्पत्ति के समय से ही यह अपने अस्तित्व को बचाए रखने के लिए प्रयासरत है। इस प्रयास में इसने सबसे अधिक नुकसान वन एवं वन संपदा को पहुँचाया है। इसने अपने लिए भोजन जुटाने, रहने के लिए मकान के निर्माण, दवा निर्माण के लिए कारखाने खोलने, शृंगार, वस्त्र निर्माण, आवागमन हेतु मार्ग बनाने, खेती के लिए जमीन जुटाने, सिंचाई के लिए नहर बनाने, विद्युत तथा आवागमन जैसे दूसरे कई महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा करने अधिक से अधिक वनों की कटाई करके इनको नष्ट करने का प्रयास किया है।

वनों की उपयोगिता को मध्य नजर रखते हुए हमें इसके संरक्षण हेतु निम्नलिखित उपाय अपनाने की आवश्यकता है।

1. वनों के पुराने एवं क्षतिग्रस्त पौधों को काटकर नए पौधों को लगाना चाहिए।
2. नए वनों का निर्माण वनारोपण अथवा वृक्षारोपण।
3. आनुवंशिकी के आधार पर ऐसे वृक्षों को तैयार करना, जिससे वन संपदा का उत्पादन बढ़े।
4. पहाड़ एवं परती जमीन पर वनों को लगाना।
5. सुरक्षित वनों में पालतू जानवरों के प्रवेश पर रोक लगाना।
6. वनों को आग से बचाना।
7. जले वनों की खाली परती भूमि पर नए वन लगाना।
8. रोग-प्रतिरोधी तथा कीट-प्रतिरोधी वन वृक्षों को तैयार करना।
9. वनों में कवनकनाशकों तथा कीटनाशकों का प्रयोग करना।
10. वन कटाई पर प्रतिबन्ध लगाना।
11. आम जनता में जागरूकता पैदा करना, जिससे वह वनों के संरक्षण पर ध्यान दें।
12. वन तथा वन्यजीवों के संरक्षण के कार्य को जन-आंदोलन का रूप देना।
13. सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
14. शहरी क्षेत्रों में सड़कों के किनारे, चौराहों तथा व्यक्तिगत भूमि पर पादप रोपण को प्रोत्साहित करना।

अप्रत्यक्ष रूप से कई उद्योगों में कच्चे माल व पदार्थ के रूप में पेड़ों के तने व छाल आदि काम आते हैं। कागज उद्योग, वस्त्र उद्योग, रबर पेंट उद्योग, खेल का सामान बनाने वाले उद्योग आदि सभी वनों से प्राप्त सामग्री पर आधारित हैं। इन सभी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के अलावा वन प्राकृतिक संतुलन बनाए रखने का भी कार्य करते हैं। वे हानिकारक गैसों का अवशोषण करते हैं, मृदा-अपरदन को रोकते हैं, वर्षा कराने में सहायक होते हैं, पृथ्वी के तापमान को नियंत्रित रखने में अपनी भूमिका अदा करते हैं इत्यादि।

भारत में वनों की स्थिति

वन नवीनीकरण संसाधन हैं और आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। पर्यावरण की गुणवत्ता सुधारने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। संपूर्ण देश में 633.4 लाख हैक्टेयर क्षेत्र को वन क्षेत्र अधिसूचित किया गया है। यह कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 19.27 प्रतिशत वास्तविक वन क्षेत्र है। इसमें से सघन वन 11 प्रतिशत, खुला वन 8 प्रतिशत और अन्य वनस्पति क्षेत्र 0.15 प्रतिशत है। वन मात्र प्राकृतिक संपदा ही नहीं है वरन् इसका महत्व कहीं अधिक है। पर्यावरण जिसमें मानव जीवन संभव है, उसे बनाए रखने के लिए वनों का होना आवश्यक है। विश्व के वैज्ञानिकों के अनुसार पर्यावरण संतुलन रखने हेतु 33 प्रतिशत वन होने चाहिए, जो अब मात्र 20 प्रतिशत ही रह गए हैं।

वनोन्मूलन

भौतिकवादी सभ्यता के युग में आज वनोत्पादों की तेजी से बढ़ती मांग, कहीं कृषि विस्तार, कहीं व्यवसायिक उपयोगों के लिए कहीं, नदी घाटी परियोजनाओं के लिए बड़े-बड़े वन क्षेत्र साफ किए जा रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या के साथ-साथ उनके आवास व भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु वनों को साफ किया जा रहा है एवं जंगलों की जगह सीमेंट-कंक्रीट का जाल बिछ चुका है।

कृषि की कुछ पद्धतियाँ भी वनों के लिए स्थायी विनाश का कारण बनती हैं जैसे झूम खेती, इस पद्धति में किसी एक क्षेत्र की समस्त वनस्पति को काटकर जला दिया जाता है, जिससे उसमें उपस्थित सभी खनिज लवण व पोषक तत्व मृदा में मिल जाते हैं, जिससे उस क्षेत्र की उर्वरता में वृद्धि हो जाती है एवं उस क्षेत्र से 3-4 फसलें प्राप्त कर ली जाती हैं एवं जब उसे क्षेत्र की उर्वरता पर कमी आती है तो यह क्षेत्र ऐसे ही छोड़ दिया जाता है एवं यही क्रिया दूसरे वन क्षेत्र पर दोहराई जाती है। इस प्रकार वन क्षेत्रों का स्थाई रूप से विनाश हो जाता है। एक अनुमान के अनुसार विश्व में लगभग 3 करोड़ वर्ग मील में बसने वाले करीब 20 करोड़ आदिवासी लोग इसी पद्धति से खेती करते हैं। वनोन्मूलन के कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारण और भी हैं जैसे इमारती लकड़ी के दोहन हेतु, खनन हेतु एवं बड़ी-बड़ी बांध परियोजनाओं हेतु।

(i) इमारती लकड़ी के दोहन हेतु – प्रत्येक प्रकार की लकड़ी का मुख्य स्रोत वन ही है। वनों की लकड़ी का उपयोग भवन निर्माण, फर्नीचर निर्माण, जहाजों के निर्माण, रेलवे कोच के निर्माण, वस्त्र उद्योग, कागज उद्योग इत्यादि में कच्चे माल की तरह किया जाता है। लेकिन जिस गति से वनों का उपयोग किया जा रहा है उस अनुपात में उन्हें फिर से विकसित नहीं किया जा सकता है, जिससे वनों के क्षेत्र में कमी उत्पन्न हो जाती है। वन क्षेत्र में इस कमी से जहाँ एक ओर मांग व आपूर्ति का संतुलन बिगड़ जाता है वहीं जनजातियों के जीवन एवं जैव-विविधता के अस्तित्व पर संकट उत्पन्न हो जाता है। जहाँ वनों में कई जनजातियाँ प्राकृतिक रूप से अपनी सभ्यता व संस्कृति को संरक्षित रखते हुए कम से कम सुविधाओं में अपना जीवनयापन करती थी वहीं, वनों के विनाश के कारण, उनके प्राकृतिक जीवन पर कुप्रभाव पड़ा है व उन्हें विवश होकर अपनी संस्कृतियों, रीति-रिवाजों को छोड़ना पड़ता है। इसके फलस्वरूप कई जनजातियाँ या तो समाप्त हो गई हैं या उनका प्राकृतिक स्वरूप खत्म हो गया है एवं कई वनस्पतियाँ, जीव-जगत के कई छोटे-बड़े, अहानिकारक जीव-जंतु पूरी तरह से विलुप्त हो गए हैं। वनों के विनाश से जनजातियों का या तो पलायन हो गया है या उन्हें संक्रमण के वृहद् दौर से गुजरना पड़ रहा है जो मानव सभ्यता के लिए कष्टकारक हैं।

(ii) खनन हेतु – खनिज पदार्थ प्राकृतिक रूप से प्राप्त होने वाली सबसे मूल्यवान संपदा है। पुरातन काल से ही मानव खनन करता आ रहा है। औद्योगिक विकास व अर्थव्यवस्था के सुदृढीकरण के लिए धात्विक, अधात्विक खनिज, कोयला, लोहा, पेट्रोलियम व अन्य अयस्कों के लिए धरा को गहराई तक खोदा जाता है जिसे खनन कहते हैं।

(iii) बड़ी-बड़ी बाँध परियोजनाओं हेतु – बाँधों का निर्माण बहुउद्देशीय लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है जैसे विद्युत उत्पादन, सिंचाई हेतु जल उपलब्धता एवं पयेजल की उपलब्धता। अतः बाँध परियोजनाएं किसी भी देश के औद्योगिक विकास व अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भाखड़ा नांगल, माही, चंबल,

कृष्णा सागर, नागार्जुन सागर, हिंद आदि बड़े बाँध हैं जिनसे एक बड़े भू-भाग पर सिंचाई की जाती है तथा इनका उपयोग विद्युत उत्पादन हेतु भी किया जाता है।

इस नदी में पर्यावरण क्षति का सबसे बड़ा कारण वन विनाश है। उचित प्राकृतिक संतुलन हेतु मैदानी भागों में 20 प्रतिशत और पहाड़ी क्षेत्रों में 60 प्रतिशत वन होने आवश्यक हैं। परंतु दूर संवेदी तकनीकी आंकड़े दर्शाते हैं कि मैदानी क्षेत्रों में मात्र 11 से 12 प्रतिशत भू-भाग पर ही वन हैं। विगत 30 वर्षों में भारतीय वन क्षेत्र 20 प्रतिशत से घटकर 10 प्रतिशत रह गए हैं। रिपोर्ट के अनुसार 3-4 वर्षों में ही देश के 5,000 वर्ग किमी जंगल समाप्त हो गए हैं। वन क्षेत्र में सर्वाधिक कमी देश के पहाड़ी क्षेत्र व पूर्वोत्तर भागों में आई है। चैरापूंजी जो सर्वाधिक वर्षा हेतु प्रसिद्ध है। वर्तमान में वहाँ मात्र 28 प्रतिशत क्षेत्रफल में ही वन हैं और वहाँ होने वाली वर्षा की मात्रा में निरंतर कमी आती जा रही है। विध्यांचल, अरावली एवं पश्चिमी घाट की पहाड़ियों पर भी वन क्षेत्र काफी सिकुड़ रहा है।

विगत तीन दशकों के दौरान भारत में सड़क निर्माण के लिए 73,000 हैक्टेयर, उद्योगों के लिए 14.6 लाख हैक्टेयर तथा अन्य कार्यों के लिए 99 लाख हैक्टेयर वनों को साफ किया गया है। बहुउद्देशीय नदी घाटी योजनाओं और छोटे बांधों के निर्माण के लिए भी वृहद् स्तर पर भी वन-विनाश किया गया है, जबकि कुछ भाग जलमग्न भी हुआ है। अकेले नर्मदा सागर परियोजना और टिहरी बांध परियोजना में क्रमशः 40,322 हैक्टेयर तथा 3600 हेक्टेयर वन क्षेत्र का विनाश किया गया है, इसलिए यह बड़े बांध सड़कें, रेल मार्ग, शहर आदि एक और महत्वपूर्ण हैं तो दूसरी ओर पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से अभिशाप है।

दावानल

मानव द्वारा वनों का विनाश, झूम खेती और वनों की अंधाधुंध कटाई के कारण वातावरण में गर्मी बढ़ जाने तथा ऋतु चक्र के अस्त-व्यस्त हो जाने के कारण वनों में आग लग जाने की घटना सामने आती रहती है। विश्व के अधिकांश देश इस समस्या से कभी न कभी ग्रसित होते रहे हैं। वनों में हर साल लगने वाली आग से वन क्षेत्र की जैव विविधता और उत्पादकता का ह्रास तो होता ही है और पर्यावरण को काफी नुकसान पहुँचता है।

दावानल का प्रभाव

दावानल के मानव और पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव इस प्रकार हैं।

1. वनाग्नि से तो वृक्षों को नुकसान हो ही रहा है लेकिन इससे पर्यावरण असंतुलन का होना भविष्य के लिए गंभीर संकेत है।
2. उत्तराखंड व हिमाचल प्रदेश के व क्षेत्र भयंकर वनाग्नि के कारण तबाह हो गए, जिससे करोड़ों रुपए की लकड़ी, दुर्लभ प्रजातियाँ, जड़ी-बूटी व जीव-जंतुओं की क्षति हुई जिसकी भरपाई कभी नहीं की जा सकती।
3. वनाग्नि के कारण जनमानस की आंखों में जलन व स्वच्छ वायु के अभाव में फेफड़े सम्बन्धी रोगों में भी वृद्धि दर्ज की गई है।
4. सबसे बड़ा संकट पेयजल पर पड़ा, क्योंकि पहाड़ों में पेयजल के स्रोत लगातार लगने वाली वनाग्नि के कारण सूखते जा रहे हैं।
5. वनों में आग लगने से ऊपरी मिट्टी भुरभुरी और सूखी हो जाती है। कृषि क्षेत्र की 7 इंच मोटी की परत 2-7 वर्षों के साथ घुलकर नष्ट होती जाती है जबकि इसके निर्माण में सैकड़ों वर्ष लगते हैं। एक इंच मोटी उर्वरक मिट्टी के निर्माण में लगभग 300-800 वर्षों का समय लगता है। ऊपरी मिट्टी में कार्बनिक जीवाणु तथा प्रचुर प्राकृतिक उर्वरता होती है यह पेड़-पौधों के जीवन के लिए आवश्यक तत्व है।

केस अध्ययन : संयुक्त वन प्रबंधन

संयुक्त वन प्रबंधन कार्यक्रम, 1988 की राष्ट्रीय वन नीति पर आधारित है जिसमें जीविका के लिए गरीब ग्रामीणों के वन स्रोतों पर निर्भर रहने की बात साफतौर पर स्वीकार की गई है। इस नीति में वनभूमि के विकास और उसके संरक्षण में जन-सहभागिता के महत्व को स्वीकार किया गया है। पिछले 150 वर्षों से देश का लगभग 23 प्रतिशत भौगोलिक भाग (3290 लाख हेक्टेयर) जिसे वन भूमि माना जाता है, नियोजित और वैज्ञानिक वानिकी के बहाने सरकार के नियंत्रण में है। इस दौरान ध्यान केवल इमारती लकड़ी के उत्पादन और जरूरतों के अनुरूप उसका शोषण पर हो रहा। वन भूमि पर उद्योगों की जरूरतों के अनुरूप पौधों की किस्में लगाने को बढ़ावा दिया गया। इसके लिए मिश्रित जाति के वनों का कटाव भी किया गया जो 1947 में आजादी के बाद से आज भी यह जारी है।

इससे वनों का ह्रास और ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और बेरोजगारी बढ़ी। वन संपदा पर अधिकार के मुद्दे को लेकर और स्थानीय समुदाय को आजीविका के लिए लंबे समय से चले आ रहे स्रोतों से अलग कर देने से सामाजिक संघर्ष

बढ़ा। वनों का ह्रास बिना रुके जारी रहा और वनों पर आधारित उद्योगों के विकास से यह समस्या और बढ़ी। कृषि भूमि में कमी (वर्ष 1951 से 1980 के बीच) 2.623 मिलियन हेक्टेयर वन भूमि सरकारी तौर पर कृषि के लिए स्थानान्तरित की गई। अनाधिकृत कब्जों, विकास गतिविधियों के लिए वन भूमि का प्रयोग और उद्योगों को वनों से कच्चा माल कम कीमत पर मिलते रहने से वनों के ह्रास में और तेजी आई। यह काम गरीब ग्रामीणों के हितों को ताक पर रखकर होता है।

2.4.2 जल संसाधन

मानव जीवन के लिए स्वच्छ एवं शुद्ध जल महत्वपूर्ण ही नहीं वरन् आवश्यक भी है क्योंकि मानव रक्त का 80 प्रतिशत भाग जल होता है और यही जल रक्त परिसंचरण द्वारा पोषक तत्वों को विभिन्न अंगों तक पहुंचाने में सहायता प्रदान करता है। इसलिए मानव और जल का उतना ही पुराना एवं गहरा सम्बन्ध है जितना कि मानव और प्रकृति का। औद्योगिक एवं कृषि विकास सहित समग्र आर्थिक विकास के संदर्भ में संपूर्ण जैविक जगत के लिए जल का महत्व अब और भी अधिक बढ़ गया है। मानव, पशु-पक्षियों, वनस्पतियों के जीवित रहने तथा उनकी संवृद्धि हेतु तो जल की आवश्यकता है ही, अनेक प्रकार के औद्योगिक कार्यों तथा कृषि के लिए भी जल एक अनिवार्य अपरिहार्यता है। पारिस्थितिकी संतुलन में भी जल एक आवश्यक संघटक है।

पृथ्वी पर उपलब्ध जल, संसाधन के रूप में कुछ खास दशाओं में एक नवीनीकरण संसाधन है। जल का पारिस्थितिक तंत्र में पुनर्चक्रण होता रहता है, जिसे जल चक्र कहते हैं। अतः जल एक प्राकृतिक प्रक्रिया के तहत शोधित और मानव उपयोग योग्य बनता रहता है। नदियों का जल भी मानव द्वारा डाले गए कचरे की एक निश्चित मात्रा को स्वतः जैविक प्रक्रियाओं द्वारा शुद्ध करने में समर्थ है। लेकिन जब जल में प्रदूषण की मात्रा इतनी अधिक हो जाए कि वह स्वतः पारिस्थितिक तंत्र की सामान्य प्रक्रियाओं द्वारा शुद्ध न किया जा सके और मानव के उपयोग योग्य न रह जाए तो ऐसी स्थिति में यह नवीकरणीय नहीं रह जाता।

एक उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो उत्तरी भारत के जलोढ़ मैदान हमेशा से भूजल में सम्पन्न रहे हैं, लेकिन अब उत्तरी पश्चिमी भागों की सिंचाई हेतु तेजी से दोहन के कारण इनमें अभूतपूर्व कमी दर्ज की गई है। भारत में जलभरों और भूजल की स्थिति पर चिंता जाहिर की जा रही है। जिस तरह भारत में भूजल का दोहन हो रहा है भविष्य में स्थितियाँ काफी खतरनाक हो सकती हैं। वर्तमान समय में 29 प्रतिशत विकास खंड या तो भूजल के दयनीय स्तर पर हैं जो चिंतनीय हैं और कुछ आंकड़ों के अनुसार 2025 तक लगभग 60 प्रतिशत ब्लॉक चिंतनीय स्थिति में आ जाएंगे।

ध्यातव्य है कि भारत में 60 प्रतिशत सिंचाई जल और लगभग 85 प्रतिशत पेय जल का स्रोत भूजल ही है, ऐसे में भूजल का तेजी से गिरता स्तर एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में उभर रहा है।

वर्तमान समय में जल संसाधन की कमी, इसके अवनयन और इससे सम्बन्धित तनाव और संघर्ष विश्व राजनीति और राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। जल के कारण उत्पन्न विवाद राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण विषय बन चुका है।

मानव गतिविधियाँ इन कारकों पर एक बड़े पैमाने पर प्रभाव डाल सकती हैं। मनुष्य अक्सर जलाशयों का निर्माण द्वारा बेसिन की भण्डारण क्षमता में वृद्धि और आद्रभूमि के जल को बहाकर बेसिन की इस क्षमता को घटा देते हैं। मनुष्य अक्सर अप्रवाह की मात्रा और उस की तेजी को फर्शबंदी और जलमार्ग निर्धारण से बढ़ा देते हैं।

मीठे जल के स्रोत

अ. धरातलीय जल : धरातलीय जल या सतही जल पृथ्वी की सतह पर पाया जाने वाला पानी है जो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में ढाल का अनुसरण करते हुए सरिताओं या नदियों में प्रवाहित हो रहा है अथवा पोखरों, तालाबों और झीलों या मीठे पानी की आर्द्र-भूमियों में स्थित है। किसी जलसंभर में सतह के जल की प्राकृतिक रूप से वर्षण और हिमनदों के पिघलने से पूर्ण होती है और वह प्राकृतिक रूप से ही महासागरों में निर्वाह, सतह से वाष्पीकरण और पृथ्वी के नीचे की ओर रिसाव के द्वारा खो जाता है। किसी भी समय पानी की कुल उपलब्ध मात्रा पर ध्यान देना भी जरूरी है। मनुष्य द्वारा किए जा रहे जल उपयोगों में से बहुत सारे वर्ष में एक निश्चित और अल्प अवधि के लिए ही होते हैं। उदाहरण के लिए अनेक खेतों को बसंत और ग्रीष्म ऋतु में पानी की बड़ी मात्रा की आवश्यकता होती है और सर्दियों में बिल्कुल नहीं। ऐसे खेत को पानी उपलब्ध करने के लिए सतह जल के एक विशाल भण्डारण क्षमता की आवश्यकता होगी जो साल भर पानी इकट्ठा करे और उस छोटे समय पर उसे प्रवाह कर सके जब उसकी

आवश्यकता हो। वहीं दूसरी ओर कुछ अन्य उपयोगों को पानी की सतत् आवश्यकता होती है, जैसे कि विद्युत संयंत्र जिस को ठंडा करने के लिए लगातार पानी चाहिए। ऐसे बिजली संयंत्र को पानी देने के लिए सतह पर प्रवाहित जल की केवल उतनी ही मात्रा को भंडारित करने की आवश्यकता होगी कि वह नदी में पानी के कम होने की स्थिति में भी बिजली संयंत्र को शीतलन के लिए पानी उपलब्ध करा सके।

ब. भूजल : भूजल या भूमिगत जल मीठे जल का हिस्सा है, जो मिट्टी और चट्टानों के रंधाकाशों में स्थित होता है। यह जल स्तर के नीचे जलभरे के भीतर बहने वाला जल भी है। भूजल के इस प्रवाह को अधोप्रवाह कहा जाता है। कभी-कभी सतह के ठीक नीचे के जल को भूजल तथा अत्यधिक गहराई में पाए जाने वाले जल को भूगर्भिक जल या जीवाश्म जल भी कहते हैं।

भूजल को यदि एक विशाल भंडार माना जाए तो इस भंडार में जल का आगमन या इसको पानी की उपलब्धता धरातल की सतह से ऊपर के समही जल के नीचे की ओर रिसाव द्वारा होती है और इससे जल का निष्कासन अधोप्रवाह द्वारा समुद्रों में या फिर अत्यधिक गहरे जीवाश्म जल के रूप में होता है। अतः भूजल भी कई मायनों में धरातलीय जल जैसा ही होता है: जल तंत्र में आदान-प्रदान और भंडारण के संदर्भ में यदि इसकी तुलना धरातलीय जल से की जाए तो महत्वपूर्ण अंतर यह है कि गमनागमन की धीमी गति होने के कारण मानव आसानी से भूजल का लंबे समय तक बिना गंभीर परिणामों के गैर दीर्घकालिक उपयोग कर सकते हैं। हालांकि यह भी ध्यातव्य है कि भूजल एक बार प्रदूषित हो जाने पर इसके प्राकृतिक चक्रण द्वारा साफ होने की प्रक्रिया और भी धीमी है।

जल के उपयोग

मीठे जल या ताजे पानी के उपयोग को नवीकरणीय और अनवीकरणीय प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। यदि जल तुरंत एक और उपयोग के लिए उपलब्ध नहीं हो तो यह उपयोग अनवीकरणीय उपयोग होगा। भूतल की नीचे की ओर रिसाव और वाष्पीकरण में होने वाली क्षति एवं किसी उत्पादन में सम्मिलित जल (जैसे कृषि उपज) को नवीकरणीय माना जाता है। वह जल भी जिसे शोधित कर सतह के जल के रूप में लौटाया जा सके नवीकरणीय माना जाता है।

सारणी

जल की उपलब्धता

क्र.सं.	जल का वितरण	प्रतिशत
1.	महासागरों का जल	97.1
2.	सतही जल	2.26
3.	(क) ध्रुवीय बर्फ व ग्लेशियर का जल	2.24
	(ख) पेयजल की झीलें	0.009
	(ग) खारे पानी की झीलें व सागरों का जल	0.008
	(घ) झरों का जल	0.0001
4.	महाद्वीपों का भू-जल	0.61

पृथ्वी के जलमंडल में कुल मिलाकर 1,460,106,000 घनकिलोमीटर पानी है। इस संपूर्ण उपलब्ध जल का 97.1 प्रतिशत जल महासागरों एवं अर्दशीय सागरों में एकत्रित है। हिम के रूप में विशेषकर ध्रुवीय पट्टियों में 2.26 प्रतिशत और द्रव्य के रूप में उपलब्ध पेयजल 0.7 प्रतिशत में से 0.61 प्रतिशत भूमिगत जल के रूप में है। प्रतिवर्ष सूर्य की गर्मी से समुद्र का 3,40,000 घन किलोमीटर जल, धरती और आकाश के बीच तैरता रहता है। यह वाष्पित जल बाद में वर्षा, हिम तथा ओलों के रूप में नीचे बरस पड़ता है।

विश्व के क्षेत्रफल का लगभग 70 प्रतिशत भाग जल से परिपूर्ण है लेकिन पीने योग्य मीठा जल मात्र 3 प्रतिशत है, शेष भाग खारा जल है। इसमें से भी मात्र एक प्रतिशत मीठे जल का ही वास्तव में हम उपयोग कर पाते

हैं। पृथ्वी पर उपलब्ध यह संपूर्ण जल निर्दिष्ट जलचक्र में चक्कर लगाता रहता है। सामान्यतः मीठे जल का 52 प्रतिशत झीलों और तालाबों में 38 प्रतिशत मृदा में, 8 प्रतिशत वाष्प, 1 प्रतिशत नदियों और 1 प्रतिशत वनस्पति में निहित है।

जल स्रोत

प्रकृति में जल विभिन्न प्रकार से उपलब्ध होता है।

1. **वर्षा जल** : वर्षा जल प्रकृति में उपलब्ध जल में से शुद्धतम प्रकार है। यह समुद्र एवं अन्य सतही जल स्रोतों से वाष्पीकरण एवं संघनन से उपलब्ध होता है। वाष्पीकरण सौर ऊर्जा से तथा गति वायु ऊर्जा से प्राप्त कर ऊँचाई पर संघनित होकर जल, बूंदों के रूप में अथवा भारी होने पर वर्षा रूप में पृथ्वी पर गिरता है।
2. **भूमिगत जल** : वर्षा जल भूमि में आचूषित होकर अपने साथ विभिन्न घुलित लवण जैसे पोटेशियम, सोडियम, कैल्सियम, मैग्नीशियम आदि के साथ भूमिगत जल स्रोतों की ओर गति करता है। यही कारण है कि भूमिगत जल स्रोतों का अपना एक विशेष स्वाद होता है।
3. **नदी जल** : वर्षा तथा बर्फ के पिघलने से जल पहाड़ों में निरंतर धारा के रूप में मैदानी क्षेत्र में अनवरत गति से बहता है।
4. **समुद्र जल** : पहाड़ों से निकलने वाली नदियां अंततोगत्वा समुद्र में विलीन होकर सागरों, महासागरों में मिलती हैं।

भारत में जल के स्रोत

भारत में प्रत्येक वर्ष लगभग 4,000 अरब घन मीटर वर्षा और हिमपात होता है, जिसमें से 1,869 अरब घन मीटर बरसाती जल उपयोग के लिए उपलब्ध रहता है और इसमें से 690 अरब घन मीटर का ही उपयोग हो पाता है। लगभग 1,179 अरब घन मीटर जल वर्षा के दिनों में बहकर समुद्रों में पहुँचता है। यदि देश में उपलब्ध 432 अरब घन मीटर भूतलीय जल के साथ 690 अरब घन मीटर वर्षा के जल को भी सम्मिलित किया जाए तो भारत के 1 अरब से अधिक आबादी के लिए जल की कुल वास्तविक उपलब्धता 1,112 अरब घन मीटर होती है।

यदि जल संरक्षण एवं जनसंख्या वृद्धि दर की स्थिति यही रही तो वर्ष 2025 में प्रति व्यक्ति 1000 क्यूबिक मीटर से कुछ ज्यादा ही पानी उपलब्ध होगा। यह एक खतरनाक स्थिति है। इसी के साथ भारत में जहाँ एक ओर जल संकट और जल प्रदूषण की समस्या है वहीं दूसरी ओर निम्न समस्याएँ भी सामने आती हैं।

बड़े बांधों की त्रासदी

नदियों पर बांध बनाकर विद्युत उत्पादन और सिंचाई की जाती है और भारत ने स्वाधीनता के पश्चात् इस दिशा में अभूतपूर्व प्रगति की है। बांध देश की प्रगति के लिए लाभदायक हैं, किंतु उनका बड़ा स्वरूप पर्यावरण के लिए घातक होता है, इनका निर्धारण पर्यावरण को ध्यान में रखकर किया जाए तो इनकी त्रासदी से बचा जा सकता है।

टिहरी बांध परियोजना

(Tehri Dam Project)

- | | | |
|-----------------------------------|---|--|
| 1. स्थान | — | टिहरी, जिला टेहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड |
| 2. सम्मिलित नदियाँ | — | भागीरथी, जीलगांगा |
| 3. बांध की भरण क्षमता (एफ.आर.एल.) | — | 854.5 फीट (विश्व में ऊँचाई में पाँचवां) (260.5) मी. |
| 4. आवाह क्षेत्र या स्रवण क्षेत्र | — | 7500 वर्ग किलोमीटर |
| 5. जल प्लावित क्षेत्र | — | जंगल 36,000 हैक्टेयर, कृषि योग्य भूमि 1600 हैक्टेयर, कुल — 37,600 हैक्टेयर. |
| 6. नागरिकों का विस्थापन | — | टिहरी कस्बा और गांवों से 70,000 (1981) 86,000 (1987), कुल 122 गांव एवं टेहरी कस्बा डूब में |
| 7. जल विद्युत उत्पादन | — | 600 MV (1972) |

		1000 MV (1981)
		2000 MV (1989)
8. सिंचाई	—	2.7 लाख हैक्टियर
9. खर्च राशि	—	रु. 126.8 करोड़ (1967)
		रु. 197.9 करोड़ (1977)
		रु. 3000 करोड़ (1989)

स्रोत – योजना (अंग्रेजी) जून, 1990 एव राज. पत्रिका 23 सित. 1990

भारत में अनेक नदियों जैसे भाखड़ा-नांगल, तुंगभद्रा, हीराकुंड, दामोदर, कोसी, रिहंद, चंबल, मयराक्षी बेतवा, भद्रावती, कृष्णा आदि पर बड़े बांधों का निर्माण किया गया है, जहाँ एक ओर उनसे बड़े भू-भाग पर सिंचाई उपलब्ध हो सकी है और आर्थिक प्रयास को गति मिली है वहीं दूसरी ओर उन्होंने पर्यावरण को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित किया है। टेहरी बांध परियोजना एवं नर्मदा घाटी के सरदार सरोवर और नर्मदा सागर बांधों को लेकर संपूर्ण भारत में इन बांधों से होने वाली पर्यावरणीय हानि पर चिंता व्याप्त रही है।

टिहरी बांध परियोजना का पर्यावरण पर प्रभाव

टिहरी बांध परियोजना से सर्वाधिक क्षति पर्यावरण को पहुँच रही है। यह संपूर्ण क्षेत्र पर्यावरण की दृष्टि से उत्तम माना जाता है, लेकिन बड़े बांधों के कारण पर्यावरण ढांचा असंतुलित हो गया है। टिहरी बांध परियोजना के पर्यावरण पर दुष्प्रभाव इस प्रकार देखे जा सकते हैं—

1. टिहरी बांध के कारण सर्वाधिक हानि वनों के विनाश से हुई है। इस परियोजना के अंतर्गत आने वाला संपूर्ण वन क्षेत्र ही नष्ट नहीं हो रहा है वरन् दुर्लभ एवं विलुप्त होते जंतुओं एवं वनस्पतियों की प्रजातियाँ, जो इस क्षेत्र में पाई जाती हैं, की पूर्ण विलुप्ति भी होने के कगार पर है।
2. यह बांध अपने जलाशय के अंतर्गत 42.5 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र का अधिग्रहण कर रहा है। इस अधिगृहीत क्षेत्र में 1.6 हेक्टेयर भूमि कृषिपयोगी है। संपूर्ण टिहरी शहर और लगभग 23 गांव पूर्ण रूप से एवं 73 गांव आंशिक रूप से प्रभावित हुए हैं।
3. इन गांवों के निवासियों को विभिन्न स्थानों पर बसाया जा रहा है। विस्थापितों के पुनर्वास हेतु लगभग 9000 एकड़ भूमि की आवश्यकता है, जिसमें से अधिकांश का अधिग्रहण किया जा चुका है। इन लोगों को टिहरी, हरिद्वार तथा ऋषिकेश के आसपास बसाया जा रहा है जिसके कारण भारी संख्या में वनों को काटना पड़ा। कृषि के लिए इन लोगों को जो भूमि प्रदान की गई है। उसे कृषि योग्य भूमि बनाने में वन-विनाश स्वाभाविक है।
4. टिहरी बांध के कारण लगभग 2326 परिवारों के लगभग एक लाख लोगों को अपनी भूमि से बिछुड़ने का दर्द सहना पड़ रहा है। इससे पर्यावरण का संतुलन भी बिगड़ रहा है, क्योंकि किसी भी गांव की सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था, स्वस्थ पर्यावरण को प्रश्रय देती है। पहाड़ के गांवों में, खेतों में और सुरक्षित वन क्षेत्रों में वृक्ष बहुतायत पाए जाते हैं, लेकिन टिहरी बांध क्षेत्र के विस्थापितों को जिन स्थानों पर रहना पड़ रहा है वहाँ उनके पास न तो खेती है, न अपने वृक्ष हैं और न ही गांव का स्वरूप व संरक्षित व सुरक्षित वन है।
5. बांध के कारण जलाशय के पानी के स्तर में निरंतर परिवर्तन होते रहेंगे, जिससे दीवार से नीचे नदी के बहाव से वृक्ष विहीन घाटियों के ढलान भी धराशयी होंगे तथा उपजाऊ सीढ़ीदार खेत भी ध्वस्त होंगे। भूस्खलन में तेजी आएगी जिससे कि तीव्र ढाल बनेंगे।
6. टिहरी बांध में जल्दी गाद भर जाने की आशंका व्यक्त की जा रही है। गाद भरने पर यह संपूर्ण क्षेत्र मरुस्थल का रूप ले लेगा जोकि धीरे-धीरे अपना विस्तार करेगा। वनों के तीव्र विदोहन से इस संभावना का खतरा अधिक बढ़ जाता है। बांध के किसी भी तरह के नुकसान से गुजरने पर तो पर्यावरण असंतुलित होने की संभावना है।

बांध की ऊँचाई को कम करें, उसके स्थान पर छोटे-छोटे बांध बनाए जा सकते हैं जिससे भयावह विनाश से बचा जा सकता है। विकास आवश्यक है, लेकिन वैज्ञानिक युग में विकास के साथ-साथ विनाश की परछाई भी मौजूद रहती है। टिहरी बांध पर इस तरह का साया ज्यादा ही गहरा है। इसलिए खतरे/विनाश की संभावना को जितना कम किया जा सके उतना ही विज्ञान, पर्यावरण, गढ़वाल घाटी के नागरिकों तथा भावी पीढ़ी के लिए हितकर होगा।

बड़े बांधों के पर्यावरण पर प्रभाव निम्न हैं

1. पारिस्थितिक तंत्र में विसंगति आने से उस क्षेत्र के मानव को अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ता है। इसका प्रमुख कारण विशाल वन संपदा का जलमग्न हो जाना, वन्य-जीवों एवं पक्षियों का समाप्त होना है।
2. इसके निर्माण से भू-संतुलन पर असर पड़ने से भूकंप आने की संभावना में वृद्धि हो जाती है।
3. बांधों में अत्यधिक मिट्टी का जमाव होने से वे भरने लगते हैं और उनमें जल भराव क्षमता कम हो जाती है।
4. नहरों से सिंचाई में जल एकत्रीकरण एवं लवणता में वृद्धि हो जाती है।
5. बांध का स्थिर जल अनेक जल-उद्भूत बीमारियों को निकटवर्ती क्षेत्र में जन्म देता है।
6. जलमग्न होने से काफी लोग विस्थापित हो जाते हैं तथा नए क्षेत्रों में उन्हें कठिनाई आती है। इससे अनेक जन-जातियाँ अपने पर्यावरण से अलग हो जाती हैं।
7. प्रारंभ में इन बांधों पर खर्च राशि का अनुमान कम होता है, किंतु इनके निर्माण में निर्धारित राशि से कई गुना अधिक व्यय होने से लाभ कम हो जाता है।

इन्हीं पर्यावरणीय हानि को देखते हुए पर्यावरणविदों ने छोटे बांधों के निर्माण पर बल दिया है। बांधों के निर्माण में पर्यावरण के पक्ष को महत्व देना आवश्यक है। इन बांधों के सम्बन्ध में शासन और पर्यावरणविदों में मतभेद हैं, बड़े बांधों के तात्कालिक लाभ होंगे, लेकिन दूरगामी परिणामों को भी ध्यान में रखना होगा।

बाढ़

विश्व के उष्णकटिबंधीय देशों में शायद अन्य कोई देश बाढ़ से इतना प्रभावित रहता हो, जितना भारत। भारत में एक ओर भयंकर बाढ़ का सामना करना पड़ता है तो दूसरा भाग भयंकर सूखे से प्रभावित रहता है। विगत समय में एक ओर जहाँ उड़ीसा भयंकर बाढ़ से त्रस्त थे तो दूसरी ओर राजस्थान और कर्नाटक सूखे की मार झेल रहे थे। इन सब परिस्थितियों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण भारत का एक मानसूनी प्रदेश होना है। भारत के कुल 32 करोड़ 80 लाख हेक्टेयर भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 4 करोड़ 10 लाख हेक्टेयर भाग बाढ़ की आशंका वाला माना जाता है। देश में अधिकांश बाढ़ दक्षिण-पश्चिम मानसून के मौसम में आती है, क्योंकि इसी मौसम में साल में होने वाली कुल वर्षा की लगभग 80 प्रतिशत बारिश होती है।

बाढ़ के कारण

बाढ़ को प्राकृतिक और मानवीय दोनों ही कारक प्रभावित करते हैं। बाढ़ के प्रमुख कारण निम्नानुसार है।

भौतिक कारण

1. जल के बहाव की अनुकूल व्यवस्था का नहीं होना।
2. नदी के अतिरिक्त जल के संग्रह की व्यवस्था की कमी।
3. सड़कों व रेल मार्गों को बनाते समय ढाल व जल-प्रवाह का ध्यान न रखना।
4. अतिरिक्त जल को बांधों के रूप में संग्रहित करने की पूर्ण व्यवस्था का अभाव।
5. बांधों के द्वारा नदी में गाद वृद्धि से नदी का छिछला हो जाना और बाढ़ का संकट पैदा होना।
6. जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण भूमि का कृषि कार्यों के लिए अत्यधिक उपयोग किया जाना।
7. नदी के किनारे की भूमि पर मानव का असीमित अतिक्रमण होना जिससे बाढ़ से होने वाला नुकसान बढ़ जाता है।
8. निम्न क्षेत्रों को उपयोग में लाना, जो पहले नदियों के अतिरिक्त जल का गहण करके उनकी बाढ़ों की भीषणता को कम करते थे।
9. वनों की अंधाधुंध कटाई जिससे मृदा अपरदन द्वारा नदी के निचले भागों में अवसादों के जमा होने से नदी का छिछला हो जाना।

इस प्रकार बाढ़ भीषणता के लिए भौतिक या प्राकृतिक कारण की अपेक्षा मानवीय कारक ही अधिक उत्तरदायी है।

बाढ़ के प्रभाव

भारत में बाढ़ से अत्यधिक जन-धन की हानि होती है। सितंबर 2000 में पश्चिम बंगाल में आयी बाढ़ से लगभग 1000 लोग मारे गए और करोड़ों रुपए की हानि हुई थी। बाढ़ के प्रभाव इस प्रकार हैं।

1. बाढ़ के कारण मनुष्य, पशु-पक्षी बाढ़ के ग्रास बन जाते हैं।
2. बाढ़ आने पर आवासीय बस्तियाँ और गाँव जलमग्न हो जाते हैं।
3. बाढ़ के पश्चात् विभिन्न क्षेत्रों में जल प्रदूषण से सम्बन्धित बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।
4. बाढ़ के कारण कृषि का विनाश होता है और वनस्पति समाप्त होकर मृदा अपरदन तीव्र हो जाता है।

बाढ़ से बचाव के उपाय

बाढ़ से होने वाली जन-धन हानि को रोकने अथवा कम करने हेतु निम्न उपायों को अपनाया जाना चाहिए।

1. वृक्षों की कटाई पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए।
2. जल संग्रहण क्षेत्रों में वृक्षारोपण किया जाना चाहिए।
3. जलग्रहण क्षेत्रों में होने वाली अपरदन क्रिया को नियंत्रित किया जाना चाहिए।
4. नदियों व नालों पर अवरोधक बांध बनाकर उनके जल को उपयोग में लिया जाए।
5. अंतःबेसिन जल स्थानांतरण की योजना को क्रियान्वित किया जाए जिससे अतिरिक्त जल को दूसरे बेसिनों को जलापूर्ति काम में लिया जा सके।
6. जल को स्थानीय जरूरतों एवं भौगोलिक स्थितियों के अनुसार वंचित किया जाए, ताकि जल संतुलित समयानुसार से प्रभावित हो और बाढ़ न आ पाए।
7. वर्षा के अतिरिक्त जल के निकास की पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण जल प्रबंध योजनाएं सफल नहीं हो पाती जिसके कारण बाढ़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

सूखा और अकाल

अकाल सहस्राब्दी की भयानक घटना है जिसने संपूर्ण पर्यावरण को प्रभावित किया है। ऐसी प्राकृतिक आपदाओं का जन्म वर्षा के अभाव में होता है। ऐसी स्थिति में भयंकर जल संकट के साथ ही पशुओं के लिए चारे की भी समस्या पैदा हो जाती है।

अकाल का आशय

“सूखा जब अधिक तीव्र होकर भयावह स्वरूप में आ जाता है तो अकाल की स्थिति बन जाती है।” सूखे के कारण विभिन्न प्रकार की जैव विविधता प्रभावित होती है। पशुओं के अलावा पक्षी तथा भूमिगत जीव भी काल कवलित हो जाते हैं। कृषि के विनाश होने के साथ-साथ विभिन्न प्रकार की वनस्पति भी नष्ट हो जाती है। लगातार न्यून वर्षा के दौर चलने के कारण सूखे की पुनरावृत्ति राजस्थान तथा समीपवर्ती राज्यों में होती रहती है।

सिंचाई आयोग के अनुसार शुष्क क्षेत्र वह है ‘जहाँ वर्षा 10 सेमी. से कम होती है और उसमें भी 75 प्रतिशत वर्षा अगली वर्षा तक प्राप्त नहीं होती है।’ इस प्रकार मौसम विभाग उस अवस्था को सूखा मानता है, जब वर्षा सामान्य की 50 प्रतिशत अथवा कम हो। सूखे के निर्धारण हेतु विभिन्न देशों में अलग-अलग मापदंड अपनाए हैं। भारतीय मानसून एक ओर मूसलाधार वर्षा के लिए प्रसिद्ध है तो दूसरी ओर कम वर्षा के लिए। अकाल के कारण कृषि उत्पादन नहीं हो पाता और पेयजल का संकट भी उपस्थित हो जाता है।

भारत के अनेक भागों में अकाल पड़ते हैं। भारत अत्यधिक भयंकर अकालों में 1899 का ‘छप्पनिया अकाल’ तथा 1917 का अकाल प्रसिद्ध है जिसमें लाखों लोग अकाल के ग्रास बन गए।

अकाल के कारण

सूखा एक प्राकृतिक आपदा है, जिसका प्रत्यक्ष संबंध जलवायु से है। सूखे को विभिन्न दृष्टिकोण से परिभाषित किया गया है। ‘ड्राउट’ जलाभाव अथवा ‘सूखा’ उस स्थिति का प्रतीक है, जिसमें अनावृष्टि के कारण भूमि की सतह पर एवं भूगर्भ में पानी का नितांत अभाव उत्पन्न हो जाता है। सूखा वह प्राकृतिक आपदा है, जिसका संबंध न्यून वर्षा या वर्षा न होने तथा जल के उपलब्ध न होने से है। इसके अतिरिक्त कारण इस प्रकार है।

अकाल के प्राकृतिक कारण

1. पर्यावरण में असंतुलन उत्पन्न होने के कारण।
2. वनों के अभाव और वनों के निरंतर ह्रास के कारण।
3. राज्य में अनिश्चित, असमान और अपर्याप्त मानसून वर्षा।
4. राज्यों में लगातार फैलता मरुस्थल अर्थात् मरुस्थलीकरण।
5. टिड्डी दलों का आक्रमण एवं अन्य फसल विनाशकारी के कारण।

मानवीय अथवा आर्थिक कारण

1. वनों में अनियंत्रित पशुचारण से।
2. बढ़ते जनसंख्या वृद्धि के दबाव से।
3. स्थायी एवं उपयोगी जल नीति का अभाव होने से।
4. वनों की रक्षा एवं वृक्षरोपण के प्रति लोगों में उदासीनता के कारण।
5. सूखा से निपटने की दीर्घकालीन योजनाओं के नहीं होने के कारण।
6. कृषि वैज्ञानिकों एवं आधुनिक तकनीकी (पद्धतियों) का विकास न होने से।
7. प्राकृतिक जल भंडारों (जैसे तालाब, बांध, नदी आदि) के अनियोजित उपयोग से।

2.4.3 खनिज संसाधन

खनिज प्रकृति प्रदत्त मूल्यवान संपदा है, जिसका उपयोग मानव सभ्यता के विकास के लिए प्राचीन समय से ही कर रहा है। औद्योगिकी एवं तकनीकी प्रगति से इस उपयोग को चरम सीमा तक पहुँचा दिया। फलस्वरूप खनिज खनन से खनिजों की प्राप्ति तो हुई किंतु उसने पर्यावरण संकट को और अधिक गहरा दिया और साथ ही खनिज खनन पर्यावरण अवकर्षण का एक प्रमुख कारण बन गया।

पृथ्वी की चट्टानों में विभिन्न रासायनिक तत्वों से अकार्बनिक प्रक्रम द्वारा खनिजों का निर्माण होता है। इसका सम्बन्ध भूगर्भिक संरचना से होता है। सम्पूर्ण खनिजों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है—

1. **अधात्विक खनिज** — इसके अंतर्गत फ़ैल्सपार, डोलोमाइट, क्रोमाइट, ग्रेफाइट, टेलक, पाइरोलाइट, सोप-स्टोन, एस्बेस्टोस, अन्नक, जिप्सम, फ्लोराइट सभी प्रकार के इमारती पत्थर, बहुमूल्य खनिज आदि सम्मिलित हैं।
2. **धात्विक खनिज** — इनमें लौह तथा लौह मिश्रित धातु, अलौह धातुएँ तांबा, सीसा, एल्यूमिनियम एंटीमनी, चांदी सोना, प्लेटिनम, यूरेनियम, केडमियम आदि सम्मिलित हैं।
3. **खनिज ईंधन** — इसमें कोयला एवं पेट्रोलियम सम्मिलित हैं।

इन सभी खनिजों को प्राप्त करने हेतु खनन किया जाता है। विश्वभर में सभी खनिजों का अधिकतम खनन की प्रवृत्ति में वृद्धि हो रही है। परिणामस्वरूप एक ओर खनिजों के भंडार में कमी आ रही है तो दूसरी ओर इससे पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव पड़ रहा है।

भारत में खनिज संसाधन

विशाल आकार तथा विविध प्रकार की भू-वैज्ञानिक संरचनाओं के कारण भारत में औद्योगिक दृष्टि से महत्वपूर्ण खनिजों के बहुत बड़े और उत्तम कोटि के भंडार पाए जाते हैं। अनेक प्रकार के उच्च कोटि की गुणवत्ता वाले निम्न खनिज पाए जाते हैं: मिश्रधातु खनिज जैसे मैंगनीज, क्रोमाइट और टिटैनियम के काफी बड़े भंडार; गालक खनिज जैसे चूने का पत्थर डोलोमाइट, जिप्सम आदि, ऊष्णसह जैसे मैग्नेसाइट, क्यानाइट और सिलिमेनाइट। लेकिन भारत में कुछ अलौह खनिजों जैसे— तांबा, सीसा, जस्ता, टिन, ग्रेफाइट, टंग्स्टन और पारे की अपेक्षाकृत कमी है। बॉक्साइट और अन्नक का पर्याप्त भंडार है। भारत में रासायनिक उर्वरक उद्योगों में काम आने वाले खनिजों जैसे गंधक, पोटैश और शैल फास्फेट की भी कमी है। बिटूमिनस कोयले के भारत में विशाल भंडार हैं, लेकिन देश में कोकिंग कोयले और पेट्रोलियम का अभाव है। फिर भी परमाणु खनिजों जैसे— यूरेनियम और थोरियम के संदर्भ में भारत की स्थिति काफी सुदृढ़ है।

हीरा — भारत में हीरा एकमात्र मध्य प्रदेश के पन्ना क्षेत्र में मिलता है। हीरे के भंडार वाली इस पन्ना पट्टी में पन्ना, छतरपुर और सतना जिले आते हैं।

पर्यावरण का होने वाला नुकसान

वर्तमान परिस्थिति के अनुसार खनन के कार्यों को पर्यावरण ह्रास के प्रमुख स्रोतों में गिना जाता है। खनन के कारण भूमि की उपलब्धता में कमी, भूमि की औद्योगिक उपयोग तथा औद्योगिक अपशिष्ट के कारण भूमि, वायु और जल का प्रदूषण, ये सब इन अनवीकरणीय संसाधनों के पर्यावरण संबंधी प्रभाव हैं। इस समस्या पर संपूर्ण विश्व जागरूक है और प्राकृतिक वातावरण की हानि को रोकने के लिए सरकारी कार्यवाही के अनेक अंतर्राष्ट्रीय समझौतों को जन्म दिया है। इसके कारण पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकने वाली गतिविधियों और घटनाओं की रोकथाम के लिए कानून भी बनाए गए हैं। खनन के कारण पर्यावरण का होने वाला नुकसान संक्षेप में इस प्रकार हैं—

1. खानों में बमों से छेद करने तथा बारूद से उड़ाने, खानों की ढुलाई एवं सड़क से परिवहन और छीजन, कचरे के ढेरों के कारण होने वाला वायु प्रदूषण होता है।
2. अगर अयस्क/खनिज खानों से निकलने वाले मल में आणविक अथवा अन्य नुकसानदेह तत्व हैं तो उनसे होने वाला जल प्रदूषण होता है।
3. खनन के कारण उपलब्ध जल क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन जैसे कि सतही बहाव, भूमिगत जल की उपलब्धता में परिवर्तन और जल स्तर और नीचे चला जाता है।
4. भूमि कटाव, धूल और नमक से भूमि के स्वरूप में परिवर्तन।
5. खानों और उसके समीपस्थ बस्तियों और वन्य क्षेत्रों में शोर और प्रदोलन की समस्या।
6. भूमि की स्वरूप और दशा में परिवर्तन।
7. वनों के विनाश के कारण पेड़-पौधों और जीव-जंतुओं को होने वाला नुकसान और अनुपचारित कचरे के ढेर के कारण क्षेत्र की सुंदरता का नाश।

केस अध्ययन :

पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम के अंतर्गत जनवरी, 1994 में जारी अधिसूचना (यथा संशोधित मई, 1994) के अनुसार प्रमुख खनिजों की उन सभी खानों के लिए जिनके खनन पट्टे का क्षेत्रफल 5 हेक्टेयर से अधिक है, जिसे और बढ़ाने का प्रस्ताव है। पर्यावरण और वन मंत्रालय से मंजूरी प्राप्त करना आवश्यक है। इस उद्देश्य के लिए प्रार्थी को एक विस्तृत प्रार्थना-पत्र देना होगा जिसके साथ उसे खनन व्यवहार्यता रिपोर्ट, पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन की प्रारंभिक सूचना, विश्लेषण आंकड़े, पर्यावरण प्रबंध योजना और एक प्रश्नावली का जवाब संलग्न करना होगा।

2.4.4 खाद्य संसाधन

मानव की तीन आधारभूत आवश्यकताओं (भोज्य, वस्त्र एवं आश्रय) में भोजन या आहार प्रमुख है। भोजन प्राप्ति के लिए मनुष्य प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वनस्पति तथा जंतुओं पर आश्रित है। अन्न, वनस्पति, फल, दुग्ध पदार्थ, मांस-मछली आदि खाद्य संसाधन कहलाते हैं। भोजन के अभिन्न अंग नमक की प्राप्ति चट्टानों, समुद्रों व झीलों से होती है। विश्व जनसंख्या को लगभग 80 भोजन कृषि फसलों से, 18 प्रतिशत दूध, मांस आदि से तथा 2 प्रतिशत मछलियों से प्राप्त होता है। अर्थात् खाद्यान्न ही भोजन का मुख्य स्रोत है।

कुछ राष्ट्रों को छोड़कर अधिकांश में खाद्य संसाधनों की मांग की तुलना में उत्पादन बहुत कम है। इसकी पूर्ति अन्य देशों से आयात द्वारा की जाती है। भोजन की पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता के साथ ही उसमें विभिन्न पोषक तत्वों की वांछित मात्रा में उपस्थिति भी आवश्यक है।

विश्व खाद्य समस्याएँ

मनुष्य को जीवित व स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक भोजन की आपूर्ति न होने पर भुखमरी व कुपोषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वर्तमान में विश्व की लगभग 80 करोड़ जनसंख्या कुपोषण व भुखमरी की शिकार हैं, जिसमें 20 करोड़ बच्चे हैं। विश्व खाद्य समस्या के लिए प्रमुखतः निम्न कारक उत्तरदायी हैं:

(i) **जनसंख्या वृद्धि** — विश्व खाद्य समस्या का मूल कारण तीव्र जनसंख्या वृद्धि है। प्रति हेक्टेयर उपज में वृद्धि करके तथा अधिकाधिक भू-भाग कृषि के कारण खाद्यान्नों की मांग व आपूर्ति के अंतर को पाटा न जा सका। अधिकांश विकासशील देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर नहीं हैं। इन देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर सर्वाधिक है। अतः प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपलब्धता घटती जा रही है। वर्ष 1960 से वर्ष 2000 के मध्य विश्व स्तर पर प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन में 25 प्रतिशत की कमी आई, जो वर्ष 2025 तक 30 प्रतिशत कम होने की आशंका व्यक्त की गई है।

(ii) **भौगोलिक सीमाएँ** — किसी क्षेत्र में अनुकूल भौगोलिक दशाएँ होने पर ही खाद्यान्न कृषि की जा सकती है। मिट्टी, वर्षा, तापमान, भूमि का ढाल, आर्द्रता आदि समस्त अनुकूल दशाएँ सर्वत्र नहीं पाई जातीं। कहीं मिट्टी

अनुपजाऊ है, तो कहीं तापमान कम है, कहीं वर्षा अधिक है, तो समतल भूमि का अभाव है। चावल के लिए 20^0-25^0 सेटीग्रेड तापमान चाहिए तो गेहूँ के लिए 10^0-16^0 सेटीग्रेड की सीमा है। इस प्रकार खाद्यान्न उत्पादन अनुकूल भौगोलिक दशाओं तक सीमित है।

(iii) विविधता का अभाव – मात्र भौगोलिक दशाओं के कारण ही नहीं अपितु वाणिज्यिक उद्देश्य से कृषि उत्पादन में विविधता की कमी भी खाद्यान्न समस्या के लिए उत्तरदायी है। कृषि के वाणिज्यिक स्वरूप के कारण विविधता घटती है। अधिक आर्थिक लाभ के लिए विभिन्न देशों में गन्ना, रबर, चुकंदर, कपास आदि नकदी फसलों के एकाधिकार वाले क्षेत्र देखे जा सकते हैं। खाद्य समस्या के समाधान के लिए कृषि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही खाद्यान्न, दलहन, तिलहन, चारा एवं नकदी फसलों की विविधता व संतुलन भी आवश्यक है। उदाहरणार्थ, भारत में वर्ष 1950 से वर्ष 2003 के मध्य खाद्यान्न उत्पादन में लगभग 4 गुना वृद्धि हुई, जबकि दालों का उत्पादन मात्र तीन गुना बढ़ा।

(iv) पोषक तत्वों का अभाव – खाद्य समस्या का एक पक्ष भोजन में पोषक तत्वों की कमी है। संतुलित भोजन में प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेट, खजिन आदि पोषक तत्व पर्याप्त मात्रा में होने चाहिए। इसके लिए भोजन में खाद्यान्न के साथ ही हरी सब्जी, दाल, फल, दूध, घी, तेल आदि पदार्थ भी आवश्यक हैं। विकासशील देशों की अधिकांश जनसंख्या असंतुलित भोजन के कारण कुपोषण की शिकार है। नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण जनसंख्या में कुपोषण की दर अधिक है। अफ्रीका व एशिया के भुखमरी से ग्रस्त क्षेत्रों में संतुलित भोजन की बात भी बेमानी लगती है। एक अध्ययन के अनुसार विश्व में 12 प्रतिशत मौतें मात्र कुपोषण के कारण होती हैं। विटामिन 'ए' की कमी के कारण विकासशील देशों में प्रतिवर्ष 3 लाख बच्चे अंधता के शिकार होते हैं। लौह तत्व की कमी के कारण आधी गर्भवती महिलाएँ एनीमिया से ग्रस्त होती हैं।

(v) उत्पादकता में अंतर – तकनीकी एवं प्राविधिक स्तर में भिन्नता के कारण भौगोलिक दशाएँ समान होने पर भी विभिन्न देशों में प्रति हेक्टेयर उपज में अत्यधिक अंतर पाया जाता है। कृषि की उन्नत तकनीकी के अभाव में कम उत्पादन होता है व खाद्यान्न समस्या उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ चावल का प्रति हेक्टेयर उत्पादन भारत में 1804 किलोग्राम, चीन में 3,274 किलोग्राम, मिस्र में 4,998 किलोग्राम तथा जापान में 5,838 किलोग्राम है।

(vi) क्रयशक्ति व आर्थिक स्तर – विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों की जनसंख्या का आर्थिक स्तर निम्न है, अतः क्रय क्षमता कम होती है। खाद्य पदार्थों की आपूर्ति के लिए क्रय क्षमता आवश्यक है। उदाहरणार्थ तेल निर्यातक अरब राष्ट्रों में खाद्यान्न उत्पादन नगण्य है, किंतु विश्व बाजार से किसी भी कीमत पर पोषक खाद्य पदार्थ क्रय कर सकते हैं। दूसरी ओर अनेक विकासशील देशों में खाद्यान्न उपलब्ध होते हुए भी गरीबी के कारण भुखमरी व कुपोषण की समस्या है। जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे जोत आकार के कारण कृषक पर्याप्त उत्पादन नहीं ले पाता है, वहीं नगरीय क्षेत्रों में कम वेतन व बढ़ती कीमतों के कारण पोषक खाद्य पदार्थ गरीब परिवारों की पहुँच के बाहर हैं।

(vii) प्राकृतिक आपदाएँ – भारत सहित अनेक देशों में कृषि की जलवायु पर निर्भरता बहुत अधिक है। मानसून सामान्य न रहने पर फसली क्षेत्र व खाद्यान्न उत्पादन घट जाता है। सूखा, बाढ़, अकाल, पाला, शीतलहर, चक्रवात, ओलावृष्टि, टिड्डी हमला आदि आपदाओं से फसलों नष्ट हो जाती हैं व खाद्य समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(viii) आहार प्रतिरूप – विश्व जनसंख्या के आहार प्रतिरूप में काफी भिन्नता है। सामान्यतः खाद्यान्न ही भोजन का प्रमुख भाग है। विश्व स्तर पर मात्र 02 प्रतिशत भोजन की आपूर्ति मछलियों से होती है। समुद्र तटीय भागों में मछली मुख्य भोजन है। भारत सहित अनेक देशों में समुद्री भोजन की मात्रा 01 प्रतिशत से भी कम है। खाद्यान्नों पर निर्भरता घटाने के लिए आहार में समुद्री भोजन की मात्रा बढ़ानी होगी।

(ix) अन्य कारण – मृदा अपरदन, लवणीयता, प्रदूषण आदि कारणों से मृदा की उर्वरता में ह्रास हुआ है तथा उत्पादन घटा है। खाद्यान्नों के संग्रहण, भंडारण एवं वितरण की समुचित व्यवस्था नहीं होने पर भी खाद्य आपूर्ति प्रभावित होती है। प्रतिवर्ष करोड़ों रुपए का अनाज चूहे चट कर जाते हैं। नगरीय क्षेत्रों के तीव्र प्रसार के कारण उपजाऊ कृषि भूमि नष्ट हो रही है। कृषि भूमि पर बढ़ते हुए पशु दबाव से खाद्यान्न उत्पादन प्रभावित होता है।

विश्व खाद्य समस्या के समाधान के लिए जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण, कृषि उत्पादों में विविधता, उन्नत कृषि तकनीक का स्थानांतरण, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन, समुद्री भोजन में वृद्धि आदि उपाय किए जाने चाहिए। संयुक्त राष्ट्र की संस्था खाद्य एवं कृषि संगठन, विश्व स्तर पर खाद्य पदार्थों के उत्पादन एवं वितरण की क्षमता में वृद्धि तथा ग्रामीण जनसंख्या की दशा में सुधार हेतु संलग्न है। प्रतिवर्ष 16 अक्टूबर विश्व खाद्य दिवस के रूप में मनाया जाता है।

आधुनिक कृषि के प्रभाव

मानव द्वारा स्थायी कृषि प्रारंभ करने से लेकर आधुनिक काल तक कृषि के तौर-तरीकों में निरंतर परिवर्तन होता रहा है। आधुनिक काल में जनसंख्या की तीव्र वृद्धि से उत्पन्न खाद्यान्न संकट से जूझते विश्व समुदाय ने कृषि के परंपरागत स्वरूप में परिवर्तन कर वैज्ञानिक तरीकों से खेती प्रारंभ की। खाद्यान्न के साथ ही उद्योगों के कच्चे माल की मांग भी इस परिवर्तन का एक कारण था। कृषि उत्पादन में वृद्धि के लिए एक ओर अधिकाधिक भूमि को कृषि के अंतर्गत लाया गया, तो दूसरी ओर प्रति हेक्टेयर उपज बढ़ाने के उपाय किए गए अर्थात् कृषि के क्षेत्रफल एवं गहनता में वृद्धि की गई।

भारत के संदर्भ में देखें तो विभाजन के कारण अनेक अच्छे कृषि उत्पादन क्षेत्र पाकिस्तान में चले जाने से खाद्यान्न संकट और गंभीर हो गया। वर्ष 1950 में प्रारंभ की गई प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रमुख लक्ष्य खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना रखा गया। योजना के कुल व्यय का लगभग एक तिहाई भाग कृषि विकास पर व्यय किया गया। दूसरी एवं तीसरी योजना में भी कृषि उत्पादन बढ़ाने पर बल जारी रहा, किंतु खाद्यान्न समस्या का समाधान न हो सका। विदेशों से खाद्यान्न के आयात पर हमारी निर्भरता बनी रही।

कृषि के समग्र विकास के लिए नई कृषि नीति तैयार की गई। इसका उद्देश्य उन्नत बी, रासायनिक उर्वरक, नवीन सिंचाई के साधन व आधुनिक यंत्रों के प्रयोग से कृषि उत्पादन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना था। इसी को हरितक्रांति कहा गया। हरित क्रांति से अभिप्राय कृषि में उन्नत साधनों एवं विधियों का प्रयोग कर कृषि उत्पादन बढ़ाना है। इसके अंतर्गत निम्न कदम उठाए गए।

1. कृषि फार्मों पर अधिक उपज देने वाले उत्तम किस्म के बीज तैयार किए गए, जिनके प्रयोग से कृषि उत्पादन बढ़ा। बुवाई से पूर्व बीजों का उपचार किया जाने लगा।
2. उत्पादन में वृद्धि के लिए बड़े पैमाने पर रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाने लगा।
3. पौध संरक्षण के अंतर्गत भूमि तथा फसलों पर कीटनाशी रसायनों का प्रयोग होने लगा।
4. कृषि विकास में पंचायतों का अधिकाधिक सहयोग लेते हुए गहन कृषि जिला कार्यक्रम अपनाया गया। इसमें भूमि सुधार व उन्नत तकनीक को बढ़ावा दिया गया।
5. सिंचाई की सुविधा का विस्तार करने के लिए बांधों के निर्माण के साथ ही अन्य साधनों का विकास किया गया। फव्वारा सिंचाई व बूंद-बूंद सिंचाई जैसी नवीन विधियों का प्रयोग प्रारंभ हुआ।
6. मृदा अपरदन पर नियंत्रण के लिए भू-संरक्षण कार्यक्रम तथा मृदा परीक्षण की सुविधाओं का विस्तार किया गया।
7. कृषि अनुसंधान सेवा का गठन कर देश भर में कृषि विज्ञान केंद्र खोले गए। कृषि विश्वविद्यालयों ने विस्तार सेवाएं प्रारंभ की।
8. बहु-फसली प्रणाली के विकास हेतु सिंचित क्षेत्रों में खाद तथा उन्नत बीजों से वर्ष में दो या तीन फसलें लेने की शुरुआत हुई।
9. कृषि उपजों के संग्रहण, भंडारण एवं विपणन तथा कृषकों को ऋण व अनुदान प्राप्त करने के लिए कृषि उपज मंडियों, सहारी समितियों व साख समितियों का विस्तार किया गया। इसके अंतर्गत संपर्क सड़कों का निर्माण भी किया गया।

आधुनिक कृषि विधियां अपनाने से देश में हरित क्रांति हुई। खाद्यान्न उत्पादन कई गुना बढ़ गया तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई। अब भारतीय खाद्य निगम के पास अनाजों का अतिरिक्त भंडार रहने लगा। कृषि के आधुनिक तरीके अपनाने से उत्पादन में तो निरंतर वृद्धि हुई, किंतु पर्यावरण को अत्यधिक क्षति हुई। कृषि क्षेत्र में विस्तार से वनों व चरागाहों का संकुचन हुआ। सघन कृषि से भूजल स्तर व मृदा उत्पादकता में ह्रास हुआ। कीटनाशकों व रासायनिक उर्वरकों के असीमित प्रयोग से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हो गई।

पर्यावरण के पारिस्थितिकी तंत्र के अंतर्गत जैविक और अजैविक घटक परस्पर क्रिया करते हैं। पृथ्वी की सतह पर पेड़-पौधे उगते हैं। इनके नष्ट होने से मृदा बनती है। जिसके अंतर्गत अकार्बनिक पदार्थ जैविक पदार्थ जैसे— जल, हवा और सूक्ष्म जीव पाए जाते हैं। देश में बढ़ती जनसंख्या दबाव के कारण मूलभूत खाद्य आवश्यकताओं की मांग बढ़ती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्पादन को बढ़ाने के लिए कीट रासायनिकों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। देश में वर्तमान में लगभग 64 कारखाने कृषि संबंधी रसायनों के उत्पादन में संलग्न हैं।

खाद्य पदार्थों पर कीटनाशकों का प्रभाव

कीटनाशकों का प्रयोग फसलों की रक्षा के साथ-साथ पालतू पशुओं और मनुष्यों में बीमारियों के प्रसार करने वाले जीवों को रोकने के लिए हो रहा है। भारत में मलेरिया की रोकथाम के लिए डी0डी0टी0 का प्रयोग हो रहा है

जो मानव के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। वर्तमान में आर्गेनोक्लोरिन्स (डी0डी0टी0 एल्लिड्रिन, इल्डोसल्फान, बी0एच0सी0) आर्गेनाफोस्फेट, कार्बोनेट्स, पाइरेप्राइड्स और ट्राइजिन्स जैसे कीटनाशक प्रचलन में हैं।

पी0एफ0ए0 (पिवेन्शन ऑफ फूड एडलटरेशन) ने जब भारत में विभिन्न बारह राज्यों के गांवों और शहरों से आने वाले गाय के दूध के 2205 नमूनों पर शोध किया, तो पाया कि उसमें 85 से 87 प्रतिशत डी0डी0टी0 और एच0सी0एच0 जैसे जहरीले कीटनाशक मौजूद थे। महाराष्ट्र की गायें सबसे अधिक पेस्टीसाइड युक्त 74 प्रतिशत दूध देती हैं। दूध में अन्य धातुएँ जैसे आर्सेनिक, कैडमियम, लेड, कॉपर, जिंक भी काफी मात्रा में मौजूद थीं। जो हृदय रोग, कैंसर अन्य खतरनाक रोग जैसे नर्वस सिस्टम को ध्वस्त करने और आंखों की रोशनी कम कर देने के लिए भी जिम्मेदार होती हैं।

खाद्य पदार्थों में कीटनाशकों की स्थिति

खाद्य पदार्थ	नमूने	पेस्टीसाइड (प्रतिशत)	प्रदूषित दूध (गाय, भैंस, बकरी)
मक्का	2074	26	महाराष्ट्र 74
दूध, गाय/भैंस	2205	85.87	गुजरात 79
सब्जी	199	26	आंध्र प्रदेश 57
फल	440	32	हिमाचल प्रदेश 56
अन्य खाद्य पदार्थ (बाजरा, बादाम, लाल मिर्च)	140	28	पंजाब 51

“इसके छिड़काव के बाद भी लंबे समय तक इसका प्रभाव वातावरण में रहता है। डी0डी0टी0 उस प्लास्टिक की तरह होता है, जो वर्षों बाद भी जीवित ही रहता है। इसके प्रभाव न तो कम रहते हैं और न ही खत्म होते हैं।”

डी0डी0टी0 युक्त घास खाने से गाय-भैंसों के दूध में डी0डी0टी0 मौजूद होता है और यदि गर्भवती महिला इस तरह के दूध का सेवन करती हैं, तो उसमें रोग प्रतिरोधक क्षमता बहुत कम होती है। ‘एम्स’ की रिपोर्ट के अनुसार— दिल्ली में नवजात बच्चों का वजन कम होता जा रहा है। अब यह वजन औसत 2.5 किलोग्राम या उससे कम वजन के ही बच्चे पैदा होते हैं, जबकि यह वजन तो 4 किलोग्राम तक होना चाहिए। ‘एम्स’ की ही डॉ0 विनीता त्यागी का मानना है कि ‘दिल्ली में अनचाहे गर्भपात की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। इसका कारण सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के अलावा वे खाद्य पदार्थ भी जिम्मेदार हैं, जो प्रदूषित होते हैं।”

विशेषज्ञ ई0सी0 खोसला का मानना है— “आज हवा, पानी, भोजन जो हम ले रहे हैं, वह कहीं-न-कहीं से प्रदूषित रूप में ही हमारे शरीर में जाता है। एक ओर धातुओं के द्वारा यह प्रदूषण फैलता है, दूसरी तरफ विषैले रसायनों के उपयोग से, जो डिब्बा बंद खाद्य पदार्थों, हवा, पानी, वाहनों के धुएँ आदि में होते हैं और खेती, सिंचाई, जानवरों आदि के माध्यम से हमारे भोजन में आकर शरीर में पहुँचते हैं। प्रदूषित भोजन के द्वारा सीसा, पारा, कैडमियम, जैली आदि धातुएँ हमारे शरीर की वसा में बढ़ने लगती हैं और जब निर्धारित मात्रा से ज्यादा हो जाती हैं, तो गुर्दे, लिवर, अंतड़ियों, मस्तिष्क आदि को नुकसान पहुंचाने लगती हैं।” आहार विशेषज्ञ डॉ0 अमरेंद्र घोस के विचारों में— “पारे की मात्रा ज्यों ही अधिक होती है, व्यक्ति का शरीर मुड़ने लगता है, दर्द इतना तेज होता है कि व्यक्ति की जान भी जा सकती है।”

कीटनाशकों का प्रभाव

कीटनाशकों का वनस्पति, जीव-जंतुओं और भूमि पर निम्न प्रभाव पड़ता है—

1. इन कृषि रसायनों के प्रयोग से मृदा, जल और वायु प्रदूषित होती है। कृषि की पैदावार बढ़ाने के लिए प्रयोग में लिए गए कृषि रसायन फल, फूलों और सब्जियाँ आदि में शेष रह जाते हैं और स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।
2. कृषि रसायनों के निरंतर प्रयोग से कीटों में इनके विरुद्ध अवरोध शक्ति उत्पन्न हो जाती है और उन्हें समाप्त करने के लिए अधिक मात्रा में अथवा शक्तिशाली कीटनाशकों की आवश्यकता होती है, जिससे मृदा में उपस्थित परजीवी कीट समाप्त होने की संभावना होती है।

- अत्यधिक कीटनाशकों के प्रयोग से हानिकारक कीटों को नष्ट किया जाता है, लेकिन साथ ही इन कीटों को भक्षण करने वाले कीट भी समाप्त हो जाते हैं। परजीवी कीटों के समाप्त होने से पर्यावरण का संतुलन बिगड़ जाता है।

सुझाव

- खाद्य उत्पादन के अंतर्गत कीटों से होने वाली हानि से बचने के लिए अन्य उपायों को उपयोग में लाना चाहिए जैसे कीट भक्षियों द्वारा संख्या कम करना, हानिकारक कीटों के अंडों को नष्ट करना, कीटरोधी फसलें उगाना, कीटों को धोखे में डालने वाले विशिष्ट गंधयुक्त फेरामोन रसायनों का प्रयोग करना और अत्यधिक हानि होने की संभावना होने पर कीटनाशकों का प्रयोग करना चाहिए।
- खाद्य उत्पादन में कीट नियंत्रण के अन्य उपायों को भी अपनाना चाहिए ताकि कीटों का प्रसार न हो सके। सही समय पर फसल की बुवाई उचित मात्रा में खाद्य और पानी, समय पर फसल की कटाई, मुख्य फसल के साथ दूसरी फसलों को उगाना।
- ऐसे सूक्ष्म जीवों का प्रयोग अधिक किया जाना चाहिए जो खरपतवार को नष्ट करते हैं जैसे— डिवाइन और कोलंगो आदि।
- खाद्य पदार्थों के उत्पादन में जैविक खाद्य का प्रयोग करना चाहिए। जैविक खाद्य से कवक और फफूंदी उत्पन्न होती है जो सूत्रकर्मी को रोकने में सहायक होती है।

2.4.5 ऊर्जा संसाधन

ऊर्जा संसाधन आर्थिक विकास और जीवन स्तर को बेहतर बनाने के लिए एक आवश्यक साधन है। समाज में ऊर्जा की बढ़ती हुई जरूरतों को उचित लागत पर पूरा करने के लिए ऊर्जा के पारंपरिक साधनों के विकास की जिम्मेदारी सरकार की है। देश में ऊर्जा सुलभता की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान के लिए परमाणु ऊर्जा के विकास को लगातार बढ़ावा दिया जा रहा है।

सूर्य, पृथ्वी पर ऊर्जा का आधारभूत स्रोत है। कोयला, पेट्रोलियम एवं प्राकृतिक गैस जीवाश्म ईंधन हैं और अनवीकरणीय संसाधन भी हैं। सूर्य की रोशनी, पवन, जल, बायोमास, भूतापीय ऊष्मा ही कुछ ऊर्जा के नवीकरणीय संसाधन हैं। इनमें से जीवाश्म ईंधन, पानी और परमाणु ऊर्जा परंपरागत संसाधन हैं, जबकि सौर, जैव, पवन, समुद्री, हाइड्रोजन एवं भूतापीय ऊर्जा अपरंपरागत या वैकल्पिक ऊर्जा संसाधन हैं। अन्य स्तर पर हमारे पास वाणिज्यिक ऊर्जा स्रोत जैसे कोयला, पेट्रोलियम, विद्युत हैं तथा लकड़ी, ईंधन, गाय का गोबर तथा कृषि अपशिष्ट जैसे गैर-वाणिज्यिक संसाधन भी हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा की मांग दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। वर्तमान में ऊर्जा का उपयोग मुख्य रूप से खाना बनाने, प्रकाश की व्यवस्था करने और कृषि कार्य में किया जा रहा है। 75 प्रतिशत ऊर्जा की खपत खाना बनाने और प्रकाश करने हेतु उपयोग में लाया जा रहा है। ऊर्जा प्राप्त करने के लिए बिजली के अतिरिक्त स्थानीय स्तर पर उपलब्ध जैव ईंधन एवं केरोसिन आदि का भी उपयोग ग्रामीण परिवारों द्वारा बड़े पैमाने पर किया जाता है। कृषि क्षेत्र में ऊर्जा का उपयोग मुख्यतः पानी निकालने के काम में किया जाता है। इन कार्यों में बिजली और डीजल भी उपयोग में लाया जा रहा है। खाना पकाने, पानी की सफाई, कृषि, शिक्षा, परिवहन, रोजगार सृजन एवं पर्यावरण को बचाए रखने जैसे दैनिक गतिविधियों में ऊर्जा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में उपयोग होने वाले लगभग 80 प्रतिशत ऊर्जा बायोमास से उत्पन्न होता है। इससे गांव में पहले से बिगड़ रही वनस्पति की स्थिति पर और दबाव बढ़ता जा रहा है। गैर उन्नत चूल्हा, लकड़ी इकट्ठा करने वाली महिलाएँ एवं बच्चों की कठिनाई को और अधिक बढ़ा देती है। सबसे अधिक खाना पकाते समय इस घरेलू चूल्हों से निकलने वाला धुआं महिलाओं और बच्चों के श्वसन तंत्र को काफी हद तक प्रभावित करता है।

ऊर्जा के प्रकार :

(अ) परंपरागत ऊर्जा के स्रोत: जलावन, उपले, कोयला, पेट्रोलियम, प्राकृतिक गैस और बिजली।

जलावन और उपले — अनुमान के अनुसार ग्रामिण घरों की ऊर्जा की जरूरत का 70 प्रतिशत भाग जलावन और उपलों से पूरा होता है। तेजी से घटते हुए जंगलों के कारण जलावन की लकड़ियाँ इस्तेमाल करना दिनों दिन मुश्किल होता जा रहा है। उपले बनाने से बेहतर होगा यदि गोबर का इस्तेमाल खाद बनाने में किया जाये। इसलिए उपलों के इस्तेमाल को भी कम करना जरूरी है।

कोयला— अपनी वाणिज्यिक ऊर्जा जरूरतों के लिए भारत कोयले पर सबसे ज्यादा निर्भर है। संपिड़न की मात्रा, गहराई और समय के अनुसार कोयले के तीन प्रकार होते हैं जो निम्नलिखित हैं।

लिग्नाइट— यह एक निम्न दर्जे का भूरा कोयला है। यह मुलायम होता है और इसमें अधिक नमी होती है। तमिलनाडु के नैवेली में लिग्नाइट के मुख्य भंडार हैं। इस प्रकार का कोयला बिजली के उत्पादन में इस्तेमाल होता है।

बिटुमिनस कोयला— जो कोयला उच्च तापमान के कारण बना हो और अधिक गहराई में दब गया था उसे बिटुमिनस कोयला कहते हैं। वाणिज्यिक इस्तेमाल के लिए यह लोकप्रिय कोयला माना जाता है। लोहा उद्योग के लिए बिटुमिनस कोयले को आदर्श माना जाता है।

ऐंथासाइट कोयला— यह सबसे अच्छे ग्रेड का और सख्त कोयला होता है।

पेट्रोलियम: कोयले के बाद, भारत का मुख्य ऊर्जा संसाधन है पेट्रोलियम। विभिन्न कार्यों के लिए पेट्रोलियम ही ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। इसके अलावा पेट्रोलियम कई उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करता है। उदाहरण: प्लास्टिक, टेक्सटाइल, फार्मास्यूटिकल्स, आदि।

भारत में पाया जाने वाला पेट्रोलियम टरशियरी चट्टानों की अपनति और भ्रंश ट्रैप में पाया जाता है। चूना पत्थर या बलूवा पत्थर की सरंध्र परतों में तेल पाया जाता है जो बाहर भी बह सकता है। लेकिन बीच-बीच में असरंध्र परतें इस तेल को रिसने से रोकती हैं। इसके अलावा सरंध्र और असरंध्र परतों के बीच बने फॉल्ट में भी पेट्रोलियम पाया जाता है। हल्की होने के कारण गैस सामान्यतया तेल के ऊपर पाई जाती है।

भारत का 63 प्रतिशत पेट्रोलियम मुम्बई हाई से निकलता है। 18 प्रतिशत गुजरात से और 13 प्रतिशत असम से आता है। गुजरात का सबसे महत्वपूर्ण तेल का क्षेत्र अंकलेश्वर में है। भारत का सबसे पुराना पेट्रोलियम उत्पादक असम है। असम के मुख्य तेल के कुंए दिगबोई, नहरकटिया और मोरन-हुगरीजन में हैं।

बिजली— विद्युत का उत्पादन मुख्य रूप से दो तरीकों से होता है। एक तरीके में बहते पानी से टरबाइन चलाया जाता है और दूसरे तरीके में कोयला, पेट्रोलियम या प्राकृतिक गैस को ईंधन के रूप में इस्तेमाल करके टरबाइन चलाया जाता है। देश के मुख्य पनबिजली उत्पादन हैं भाखड़ा नागल, दामोदर वैली कॉरपोरेशन, कोपिली हाइडेल प्रोजेक्ट, आदि। वर्तमान में भारत में 300 से अधिक थर्मल पावर स्टेशन हैं।

(ब) गैर परंपागत ऊर्जा संसाधन:

परमाणु ऊर्जा— परमाणु की संरचना में बदलाव करके परमाणु ऊर्जा प्राप्त की जाती है। जब किसी परमाणु की संरचना में बदलाव किया जाता है तो बहुत भारी मात्रा में ऊर्जा निकलती है। इस ऊर्जा का इस्तेमाल बिजली पैदा करने में किया जाता है। परमाणु ऊर्जा के निर्माण के लिए यूरेनियम और थोरियम इस्तेमाल किया जाता है। ये खनिज झारखण्ड में और राजस्थान के अरावली पहाड़ियों में पाये जाते हैं। केरल में पाई जाने वाली मोनाजाइट रेत में भी थोरियम की प्रचुरता होती है।

सौर ऊर्जा— सौर ऊर्जा को विद्युत ऊर्जा में बदलने के लिए फोटोवोल्टाइक टेक्नॉलोजी का इस्तेमाल होता है। भुज के निकट मधापुर में भारत का सबसे बड़ा सौर ऊर्जा प्लांट है। सौर ऊर्जा भविष्य के लिए नई उम्मीदें जगाता है। इससे ग्रामीण इलाकों में जलावन और उपलों निर्भरता कम करने में मदद मिलेगी। इससे जीवाष्प ईंधन के संरक्षण में भी मदद मिलेगी।

पवन ऊर्जा— भारत को अब विश्व में पवन सुपर पावर माना जाता है। तमिलनाडु में नगरकोइल से मदुरै तक विंड फार्म भारत के सबसे बड़े विंड फार्म क्लस्टर है। पवन ऊर्जा के मामले में आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, गुजरात, केरल, महाराष्ट्र और तमिलनाडु भी अहम हैं।

बायोगैस— खरपतवार, कृषि अपशिष्ट और पशु और मानव अपशिष्ट से बायोगैस बनाई जाती है। केरोसीन, उपले और चारकोल की तुलना में बायोगैस ज्यादा कार्यकुशल है। बायोगैस प्लांट को म्युनिसिपल, को-ऑपरेटिव और व्यक्तिगत स्तर पर भी बनाया जा सकता है। गोबर गैस प्लांट से ऊर्जा के साथ साथ खाद भी मिलती है।

ज्वारीय ऊर्जा— ज्वारीय ऊर्जा के लिए बांध पानी के प्रवाह को नियंत्रित किया जाता है। इसके लिए बने रास्ते से ज्वार के समय पानी बांध के पीछे पहुंच जाता है और गेट के बंद होने से वहीं रुक जाता है। जब ज्वार चला जाता है तो गेट खोल दिया जाता है ताकि पानी वापस समुद्र की ओर जा सके। पानी के बहाव से टरबाइन चलाये जाते हैं जिससे बिजली बनती है। नेशनल हाइड्रोपावर कॉरपोरेशन के कच्छ की खाड़ी में 900 मेगावाट का एक ज्वारीय ऊर्जा प्लांट बनाया है।

भू-तापीय ऊर्जा— हम जानते हैं कि धरती के अंदर काफी गरमी होती है। कुछ स्थानों पर यह ऊष्मा दरारों से होकर सतह पर आ जाती है। ऐसे स्थानों का भूमिगत जल गर्म हो जाता है और भाप के रूप में ऊपर उठता है। इस भाप का इस्तेमाल टरबाइन चलाने में किया जाता है। भारत में प्रयोग के तौर पर भू-तापीय ऊर्जा से बिजली बनाने के दो संयंत्र लगाये गये हैं। उनमें से एक हिमाचल प्रदेश में मणिकरण के निकट पार्वती घाटी में है और दूसरा लद्दाख में पूगा घाटी में है।

ऊर्जा संकट एवं संरक्षण

भारत में ऊर्जा संकट मुख्य रूप से एक आपूर्ति का संकट है जो अपनी बढ़ती जनसंख्या की मांग को तथा तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था की मांग को पूरा नहीं कर पा रही है। जिसके परिणामस्वरूप, कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन दोनों पर ही प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। संसाधनों की सीमित प्रकृति को ध्यान में रखते हुए, प्रभावपूर्ण तरीके से गैर-परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का विकास करने के अतिरिक्त, उन्हें संरक्षित करने के कदम उठाने पड़ेंगे। ऊर्जाक्षम गैजेट्स और इलेक्ट्रीकल सामान के लिए प्रौद्योगिकी का उन्नयन किया जाना चाहिए। पारेषण हानि को न्यूनतम करने की कारवाही की जानी चाहिए और विद्युत चोरी को रोका जाना चाहिए। प्रतिस्पृद्ध और कार्यक्षमता बढ़ाने तथा अपशिष्ट को घटाने के लिए ऊर्जा क्षेत्र का निजीकरण किया जाना चाहिए। यदि ऊर्जा संकट से बचना है तो समग्र कार्यवाही करने की आवश्यकता है।

ऊर्जा संरक्षण के कुछ उपाय :

1. घरों में पानी की टंकियों में पानी पहुंचाने के लिए टावर का उपयोग करके पानी के व्यर्थ व्यय को रोककर विद्युत ऊर्जा की बचत की जा सकती है।
2. साधारण 100 वाट के बल्ब के स्थान पर कम्पैक्ट फ्लोरोसेंट लैंप (सी0एफ0एल0) का प्रयोग कर 75 से 80 प्रतिशत तक ऊर्जा की बचत की जा सकती है साथ ही साधारण बल्ब की तुलना में लगभग आठ गुना चलते हैं। जिन प्रकाश बत्तियों का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है उनके स्थान पर प्राथमिकता के आधार पर सी0एफ0एल0 लैंप का प्रयोग करना चाहिए।
3. आई0एस0आई0 चिह्नित विद्युत उपकरणों का इस्तेमाल करें।
4. शादी विवाह जैसे सामाजिक आयोजन धार्मिक आयोजन यथासंभव दिन में ही करें।
5. दिन में सूर्य के प्रकाश का अधिकतम उपयोग करें तथा गैर जरूरी पंखे, लाइट, ए0सी0 इत्यादि उपकरणों को बंद रखें। खासकर कार्यालय समय में भोजन अवकाश के दौरान कक्ष से बाहर जाते समय।
6. आवासीय परिसरों की सड़क बत्तियों के लिए फोटो इलेक्ट्रिक कंट्रोल स्विच का उपयोग करना चाहिए।
7. भवनों के निर्माण के दौरान प्लाट के चारों तरफ उपलब्ध भाग को पेड़ों/लताओं से आच्छादित करके हम भवनों को गर्म होने से बचा सकते हैं, जिससे भवनों में रहने वालों को सीलिंग फैन और कूलर इत्यादि का कम से कम उपयोग करना चाहिए।
8. कमरे की दीवार की भीतरी सतह पर हल्के रंगों का प्रयोग करें ऐसा करने से कम वाट के प्रकाश उपकरणों से कमरे को उपयुक्त रूप से प्रकाशमान किया जा सकता है।
9. कमरे के लिए हल्के रंग के पर्दों का प्रयोग करें।
10. खाना बनाने हेतु बिजली के स्थान पर सोलर कुकर व पानी गर्म करने हेतु गीजर के स्थान पर सोलर वाटर हीटर का उपयोग कर हम बहुमूल्य विद्युत ऊर्जा का संरक्षण कर राष्ट्रहित में भागीदार बन सकते हैं। यदि गीजर का उपयोग करें तो इसे न्यूनतम समय तक उपयोग में लाएं इसके लिए थर्मोस्टेट एवं टाइमर के तापमान की सेटिंग का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।

केस अध्ययन: तेल से सम्बन्धित भीषण दुर्घटनाएं

डीपवाटर होराइजन तेल दुर्घटना को, जिसे गल्फ ऑफ मैक्सिको तेल दुर्घटना तथा बीपी तेल दुर्घटना भी कहा जाता है, इतिहास की सबसे बड़ी दुर्घटना माना जाता है। 10 अप्रैल, 2010 को समुद्र की सतह से लगभग 5000 फुट नीचे तेल के एक कुएँ में आग लग गयी, जिससे डीप वाटर होराइजन के तेल निकालने के अपतटीय प्लेटफार्म पर भयानक विस्फोट हुआ। आज तक इससे समुद्र में कई सौ लीटर तेल बिखर चुका है। तेल के इस कुएँ को स्थायी रूप में बंद कर देने के लिये एक अन्य राहत कुएँ की खुदाई आज भी जारी है। अनुमान के अनुसार, प्रतिदिन लगभग 12,000 से 19,000 बैरल तेल का रिसाव हो रहा है। पेट्रोलियम विषाक्तता से हजारों जीव जन्तु और पक्षियों के आवास पर प्रभव पढ़ने की संभावना है। पर्यावरण की इस निरंतर चली आ रही दुर्घटना से मैक्सिको की खाड़ी के मछली उद्योग पर प्रभाव डालना शुरू कर दिया है।

2.4.6 भूमि संसाधन

भूमि संसाधन भारत का विशाल एवं विविधतापूर्ण आकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन है। कुल भूमि का लगभग 43 प्रतिशत मैदानी क्षेत्र खेती के लिए अनुपयुक्त आधार प्रदान करता है। लगभग 30 प्रतिशत पर्वतीय भाग प्राकृतिक संसाधनों का भंडारण गृह है तथा दृश्य सौंदर्य एवं पारिस्थितिक पहलू से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारत के 27 प्रतिशत भू-क्षेत्र में पठारों का विस्तार है। यहाँ खनिज भंडारों के अतिरिक्त वनों एवं कृषि भूमि का अस्तित्व भी है। पर्वतीय एवं पठारी भागों में उपजाऊ नदी घाटियाँ भी पायी जाती हैं, जहाँ मानवीय संकेंद्रण के लिए उपयुक्त वातावरण पाया जाता है। हालांकि भूमि एक सीमित संसाधन है और बढ़ती मानव एवं जंतु आबादी ने साल दर साल भूमि उपलब्धता में कमी की है। 1951 में प्रति व्यक्ति भूमि उपलब्धता 0.89 हेक्टेयर थी; 1991 में यह घटकर 0.37 हेक्टेयर रह गई और 2035 तक इसके 0.20 हेक्टेयर रह जाने की प्रक्षेपित किया गया है।

संसाधन के रूप में भूमि

भूमि सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन, जिस पर सभी मानव गतिविधि समय से आधारित होती है। भूमि संसाधन हमारी बुनियादी संसाधन है। भूमि संसाधनों में उन सभी सुविधाओं और भूमि की प्रक्रियाएँ शामिल हैं, जो किसी भी तरह से, कुछ मानवीय जरूरतों को पूरा करने के लिए इस्तेमाल की जा सकती हैं।

भूमि उपयोग पृथ्वी के किसी क्षेत्र द्वारा उपयोग को सूचित करता है। सामान्यतः जमीन के हिस्से पर होने वाले आर्थिक क्रिया-कलाप को सूचित करते हुए उसे वन भूमि, कृषि भूमि, परती, चरागाह इत्यादि वर्गों में बांटा जाता है और अधिक तकनीकी भाषा में भूमि उपयोग को किसी विशिष्ट भू-आवरण प्रकार की रचना, परिवर्तन अथवा संरक्षण हेतु मानव द्वारा उस पर किये जाने वाले क्रिया कलापों के रूप में परिभाषित किया गया है।

अगर भूमि का उपयोग विवेक के साथ किया जाय तो उसे नवीकरणीय संसाधन माना जा सकता है। अगर वन कम हुए या चरागाहों में अत्यधिक चराई हुई तो जमीन अर्जुवरक हो जाएगी और ऊसर बन जाएगी। सघन सिंचाई से जल भराव होता है और मिट्टी खारी हो जाती है, जिसमें फसल नहीं उगाई जा सकती। भूमि पर विषाक्त औद्योगिक और परमाणविक अपशिष्ट फेंक दिए जाएँ तो वही भूमि अनवीकरणीय संसाधन बन जाती है।

भूमि का ह्रास : केंद्रीय कृषि मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट (2004-05) के अनुसार देश के 3290 हेक्टेयर क्षेत्र का लगभग 1730 लाख हेक्टेयर क्षेत्र निम्नीकरण से प्रभावित है। दुर्भाग्यवश अधिकतर निम्नीकरण मानव जनित है। भू-निम्नीकरण के कुछ पहलुओं का विवेचन इस प्रकार है—

- 1. कुप्रबंधन द्वारा उर्वरता का क्षय :** तेजी से बढ़ती जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से मानव द्वारा सिंचाई सुविधाओं, रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों के प्रयोग के माध्यम से अधिकारिक फसल उत्पादन प्राप्त करने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही कुछ अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियाँ भी अभी तक प्रचलन में हैं। अवैज्ञानिक कृषि पद्धतियों के प्रचलन के परिणामस्वरूप मृदा अपरदन, प्राकृतिक पोषकों की कमी, जलाक्रांति व क्षारीयता तथा भूमिगत व सतही जल के प्रदूषण जैसी समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं।
- 2. मृदा अपरदन :** मृदा के कटाव और उसके बहाव की प्रक्रिया को मृदा अपरदन कहते हैं। वनोन्मूलन, सघन कृषि, अति पशुचारण, भवन निर्माण और अन्य मानव क्रियाओं के कारण मृदा का अपरदन तेजी से हो रहा है। मृदा अपरदन को रोकने के लिए मृदा संरक्षण की आवश्यकता है। इसके लिए कई उपाय किए जा सकते हैं। वनरोपण एक मुख्य उपाय है जिससे मृदा संरक्षण किया जा सकता है, क्योंकि पेड़ों की जड़ें मृदा की ऊपरी सतह को बचाए रखती हैं। ढाल वाली जगहों पर समोच्च जुताई से मृदा के अपरदन को रोका जा सकता है।

मृदा कृषि का आधार है। यह मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं, यथा— खाद्य, ईंधन तथा चारे की पूर्ति करती है। इतनी महत्वपूर्ण होने के बावजूद भी मिट्टी के संरक्षण के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण अपनाया जाता है। यदि कहीं सरकार द्वारा प्रबंधन करने की कोशिश की भी गई है तो अपेक्षित लक्ष्य को प्राप्त नहीं किया गया है। फलतः मिट्टी अपनी उर्वरा शक्ति खोती जा रही है। मृदा अपरदन वस्तुतः मिट्टी की सबसे ऊपरी परत का क्षय होना है। सबसे ऊपरी परत का क्षय होने का अर्थ है— समस्त व्यावहारिक प्रक्रियाओं हेतु मिट्टी का बेकार हो जाना। मृदा अपरदन प्रमुख रूप से जल व वायु द्वारा होता है। यदि जल व वायु का वेग तीव्र होगा तो अपरदन की प्रक्रिया भी तीव्र होती है। देश में 80 मिलियन हेक्टेयर भूमि मृदा अपरदन के खतरे की परिधि में शामिल है तथा 43 मिलियन हेक्टेयर भूमि वास्तविक रूप से प्रभावित है।

3. **क्षारीयता/लवणता:** यह समस्या अस्थाई जल अतिरेक तथा उच्च मापमान वाले क्षेत्रों में जन्म लेती है। उच्च वर्षा अथवा अति सिंचाई के कारण आर्द्रता भूमि के नीचे अंतःस्रावित होती है तथा भूमिगत लवण को अपने में घोल देती है। शुष्क काल में यह घोल केशिका क्रिया के माध्यम से सतह पर आ जाता है। जल वाष्पीकृत होकर सोडियम, मैग्नीशियम एवं कैल्शियम के लवणों की एक चमकीली परत छोड़ देता है। ये परत शीर्ष मृदा संस्तर की उर्वरता के लिए घातक होती है। क्षारीयता या लवणता की समस्या सुनिश्चित सिंचाई वाले क्षेत्रों— पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, उत्तरी राजस्थान (इंदिरा गांधी नहर क्षेत्र), पश्चिमी महाराष्ट्र तथा बिहार में पाई जाती है। ये क्षेत्र रेह, कल्चर, ऊसर, चोपन जैसे स्थानीय नामों से जाने जाते हैं। लगभग 6 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र लवणता/क्षारीयता की समस्या से ग्रस्त है।
4. **जलाक्रांति :** जब अति सिंचाई नहरों से अवस्रवण, अपर्याप्त अपवाह या प्रभावित भूमि के नीचे एक कठोर सतह की उपस्थिति आदि कारणों से किसी क्षेत्र का भौम जलस्तर संतृप्त हो जाता है, तो वहां जलाक्रांति की समस्या उत्पन्न होती है।
5. **सूखा एवं बाढ़ :** ये दोनों आपदाएँ अच्छी मृदा के उपयोग की सीमाओं को हानिकारक रूप से प्रभावित करती है। बाढ़ों से प्रतिवर्ष एक नया क्षेत्र प्रभावित होता है।
6. **मरुस्थलीकरण :** मरुस्थल से निकटवर्ती क्षेत्रों में होने वाले रेत या बालू-कणों के विस्तार को मरुस्थलीकरण कहते हैं। रेत या बालू उपजाऊ मृदा को आवृत करके उसकी उर्वरता को क्षति पहुंचाती है। यह समस्या समस्या विशेषतः राजस्थान के थार मरुस्थल से जुड़े क्षेत्रों में गंभीर रूप धारण कर चुकी है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा राजस्थान (अरावली क्षेत्र) के काफी भाग इस समस्या से ग्रस्त हैं।

2.5 प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में व्यक्ति की भूमिका

मानवजाति प्रकृति के साथ ऐसा व्यवहार करती है कि मानो पृथ्वी के परितंत्रों का और प्राकृतिक संसाधनों का जैसे मिट्टी, जल वनों और चरागाहों तथा खनिज पदार्थों और जीवाश्म ईंधनों का जब चाहे दोहन कर सकते हैं, परंतु पिछले कुछ दशकों से यह बात स्पष्ट हो गई है विश्व का पारितंत्र उपयोग के एक सीमित स्तर का बोझ ही उठा सकता है। संसाधनों का अति उपयोग या इस प्रकार दुरुपयोग होता रहा तो वह दिन दूर नहीं होगा जिससे जैविक प्रणालियाँ उनकी भरपाई नहीं कर सकेंगी, उपयोग का बढ़ता दबाव एक अति संवेदनशील बिंदु पर उन्के प्राकृतिक संतुलन को भंग कर देता है। अतीत में जिन जैविक संसाधनों को नवीकरणीय श्रेणी में रखा जाता था, जैसे सागरों, वनों, चरागाहों और नम-भूमियों से मिलने वाले जैविक संसाधनों का भी अति-उपयोग के कारण ह्रास हो रहा है, और हो सकता है। वे हमेशा के लिए समाप्त हो जाए, कोई भी प्राकृतिक संसाधन असीम नहीं है, अनवीकरणीय संसाधनों का अगर हम आगे भी इस प्रकार गहन उपयोग करते रहे तो तेजी से समाप्त हो जाएंगे।

वर्तमान परिपेक्ष्य के आधार पर प्राकृतिक संसाधनों को तेजी से समाप्ति की ओर ले जाने वाले दो सबसे हानिकारक कारण हैं, समाज में समृद्ध वर्गों का बढ़ता 'उपभोक्तावाद' और दूसरा प्रमुख कारण जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि, ये दोनों प्रमुख कारणों के परिणाम हैं, जो हम प्रकृति को व्यक्तिगत रूप से देते हैं। अतः हमें यह तय करना होगा कि।

1. हम अपने आने वाली भावी पीढ़ी के लिए क्या छोड़ें?
2. क्या अपने लिए किए गए भौतिक लाभ से किसी और को कितनी हानि हो रही है।

आज के विकसित समाज में संग्रह करने की अधिकांश जनता की जीवनशैली बन गई है, जनसंख्या वृद्धि एवं इसे होने वाले दुष्प्रभाव से विकासशील देशों सबसे बुरा प्रभाव पड़ता है, भारत जैसे राष्ट्र जो तेजी से विकास कर रहा है और जो जनसंख्या विस्फोट से त्रस्त है, ये दोनों ही कारण पर्यावरण पर होने वाले हानि के लिए जिम्मेदार हैं। हमें अपने आप से ही पूछना होगा कि कहीं हम ऐसे संवेदनशील बिंदु पर तो नहीं आ पहुंचे हैं जहाँ आर्थिक विकास जनजीवन को लाभ पहुंचता है तो उससे अधिक प्रतिकूल प्रभाव भी डालता है।

2.6 निर्वहनीय जीवन शैली के लिए संसाधनों का समतामूलक प्रयोग

पर्यावरण के संदर्भ में मूल्य शिक्षा एक नई निर्वहनीय जीवनशैली को विकसित करने में सहायक होगी, ऐसी आशा की जाती है। इसलिए औपचारिक और अनौपचारिक, दोनों प्रकार की शिक्षा के द्वारा पर्यावरणीय प्राकृतिक और सांस्कृतिक मूल्यों, सामाजिक न्याय, मानव की धरोहर, संसाधनों के समतामूलक उपयोग, साझे संसाधनों के प्रबंध और पारितंत्र के ह्रास के कारणों की समझ पैदा करनी चाहिए।

बुनियादी तौर पर पर्यावरण संबंधी मूल्यों की शिक्षा नहीं दी जा सकती। इनका बोध हमारे पर्यावरण की परिसंपत्तियों के महत्व की समझ और पर्यावरण के विनाश से पैदा समस्याओं के अनुभव की एक पेचीदा प्रक्रिया के द्वारा पैदा होता है। हम प्रौद्योगिकी और आर्थिक संवृद्धि को भारी महत्व देते हैं और निर्वहनीयता या संसाधनों के समतामूलक वितरण के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं दिखाते। निर्वहनीय विकास जैसी धारणाओं को व्यवहार में लाया जा सके, इसके लिए इस सोच में बदलाव लाना आवश्यक है।

अनिर्वहनीय विकास शक्ति की आर्थिक संवृद्धि का अंग है जो गरीब को और गरीब बनाती है और उपभोक्तावाद इस प्रक्रिया का एक पहलू है। उपभोक्तावाद को इसलिए बढ़ावा मिला कि संसाधनों का उपयोग अभी हाल तक विकास का सूचक रहा है। लेकिन हाल ही में दुनिया ने यह महसूस करना शुरू कर दिया है कि दूसरे और अधिक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय मूल्य भी हैं जो एक बेहतर जीवनशैली लाने के लिए अनिवार्य हैं।

2.7 निष्कर्ष

इस इकाई में हमने प्राकृतिक संसाधनों के बारे में जानकारी प्राप्त की और हमने उनका किस प्रकार से दैनिक जीवन में उपयोग किया जा रहा है, के बारे में जाना। हमने पाया कि भारत में कुछ संसाधनों जैसे— खनिज, मृदा नदी तंत्र, समुद्र तट जलवायु में संपन्न है। हमारे देश में हमारे पास विविध प्रकार की वनस्पति एवं जीव-जंतु हैं। किसी राष्ट्र की आर्थिक विकास इन प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर करती है।

बढ़ती जनसंख्या इन संसाधनों का विशेषकर वन संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग कर रही है। इसके कारण बाढ़, जलवायु में असंतुलन, मृदा कटाव, मरुस्थल का विस्तार तथा जल और वायु प्रदूषण बढ़ रहा है। इन प्राकृतिक संसाधनों को बचाने की आवश्यकता है। क्योंकि खनिज संसाधन भूमिगत जल आदि अनवीकरणीय होते हैं। कई वन्यजीव लगभग विलुप्त होते जा रहे हैं इनको बचाना भी आवश्यक है। सरकार को नए संसाधनों की खोज करके प्राकृतिक संसाधनों के बीच उपयुक्त संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिए। प्रदूषण को रोकने के लिए कठोर उपाय किए जा रहे हैं। नगरीकरण बढ़ रहा है, किंतु प्रदूषण के खतरों को ध्यान में रखते हुए कठोर नियंत्रण पर बल दिया जा रहा है। वनीकरण कार्यक्रम और बंजर या व्यर्थ भूमि का सुधार सामाजिक और उद्देश्यपूर्ण वानिकी कार्यक्रम के अंतर्गत किया जा रहा है। सरकार ने वानिकी अधिनियमों के अंतर्गत नए कानून बनाए गए हैं, जिससे कि स्थानीय लोगों द्वारा वनों की अंधाधुंध कटाई को रोका जा सके। इस इकाई में विद्यार्थियों के पढ़ने के लिए प्राकृतिक संसाधनों एवं उनके उपयोग के बारे में विस्तार से समझाया गया है।

2.8 प्रश्नोत्तर

(अ) लघुउत्तरीय प्रश्न :

1. परंपरागत तथा गैर परंपरागत ऊर्जा साधन में अंतर स्पष्ट करें।
2. लौह और अलौह खनिज में अंतर स्पष्ट करें।
3. खनिज क्या है?
4. हमें खनिजों के संरक्षण की क्यों आवश्यकता है?

(ब) बहुविकल्पीय प्रश्न :

1. जंगल के बारे में निम्न में से कथन सही नहीं है।
 (अ) वन मिट्टी के क्षरण को घटाता है
 (ब) मनोरंजक अवसर प्रदान करता है
 (स) आर्थिक विकास प्रदान करता है
 (द) इनमें से कोई भी नहीं
2. निम्नलिखित में जल संरक्षण की कोई विधि नहीं है।
 (अ) बारिश के पानी का संग्रहण
 (ब) भूजल निकासी
 (स) सिंचाई दक्षता में सुधार
 (द) पानी से बचा जाना
3. भारत में उष्णकटिबंधीय वर्षा वन हैं।
 (अ) जम्मू और कश्मीर
 (ब) अंडबार एवं निकोबार
 (स) उत्तर प्रदेश
 (द) हिमाचल प्रदेश
4. हरे पौधों को कहा जाता है।
 (अ) प्रोड्यूसर्स
 (ब) उपभोक्ता

- (स) कम करने वाली (द) इनमें से कोई भी नहीं
5. वनों की कटाई आम तौर पर घट जाती है।
 (अ) वर्षा (ब) मृदा अपरदन
 (स) प्रारूप (द) ग्लोबल वार्मिंग
6. जीवाश्म ईंधन और धातु खनिज हैं।
 (अ) अक्षय संसाधनों (ब) अनवीकरणीय संसाधन
 (स) अटूट (द) इनमें से कोई नहीं
7. पारंपरिक प्रकार के अक्षय संसाधनों के उदाहरण हो सकते हैं।
 (अ) पौधे (ब) जंगली जीवन
 (स) एक्वाकल्चर (द) से सभी
8. पानी के उपसतह स्रोत हैं।
 (अ) नदी (ब) अच्छी तरह से खोदा
 (स) धारा (द) सागर
9. वनीकरण के लिए आवश्यक है।
 (अ) मृदा संरक्षण (ब) मृदा अपरदन
 (स) अच्छा नियंत्रण (द) कम नमी
10. निम्नलिखित में से कौन से भूमि गिरावट के प्रमुख कारण हैं।
 (अ) मृदा संरक्षण (ब) वनों की कटाई
 (स) जल भराव (द) बंजर
11. निम्न में से कौन सा नगर निगम और औद्योगिक निर्वहन पाइप का उदाहरण है।
 (अ) प्रदूषण के गैर-स्रोत (ब) स्वच्छ जल अधिनियम के उल्लंघन
 (स) प्रदूषण के बिंदु स्रोत (द) सिंचाई
12. निम्न में से कौन सा भूजल प्रदूषण का प्रमुख स्रोत नहीं है।
 (अ) कृषि उत्पाद (ब) गड्ढों की भराई
 (स) भूमिगत भंडारण टैंक (द) उपरोक्त सभी भूजल प्रदूषण के प्रमुख स्रोत हैं

सन्दर्भ :-

1. डॉ. क्रांति कुमार सिन्हा, [प्राकृतिक स्रोतों का संरक्षण एवं पर्यावरण](#), पर्यावरण विमर्श
2. डॉ. दया शंकर त्रिपाठी, पर्यावरण अध्ययन पाठ्य पुस्तक, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन - 2007.
- 3 अरुण कुमार पाठक, प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, योजना जून 1994
4. विकिपीडिया के माध्यम से कुछ सार एवं कुछ महत्वपूर्ण चित्रों की सहायता
5. इराक भरुचा, पर्यावरण अध्ययन पाठ्य पुस्तक, द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग २०१५

इकाई – 3

पारिस्थितिकी तंत्र

- 3.1 पारितंत्र की अवधारणा
- 3.2 पारितंत्र की संरचना एवं कार्य
- 3.3 उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक
- 3.4 पारितंत्र में ऊर्जा का प्रभाव
- 3.5 पारितंत्र का क्रम
- 3.6 खाद्य-श्रृंखला, खाद्य जाल और पारितंत्रीय पिरामिड
- 3.7 निम्नलिखित पारितंत्रों का परिचय, प्रकार, बुनियादी विशेषता, संरचना एवं कार्य
 - 3.7.1 वन्य पारितंत्र
 - 3.7.2 चारागाही पारितंत्र
 - 3.7.3 मरुस्थलीय पारितंत्र
 - 3.7.4 जलीय पारितंत्र (तालाब, नाले, झीलें, नदी, समुद्र, खाड़ी)

पारिस्थितिकी तंत्र में प्राप्त होने वाली ऊर्जा का मुख्य स्रोत सूर्य है। सूर्य से प्राप्त ऊर्जा को सौर ऊर्जा कहते हैं। पृथ्वी पर सभी जीव अपने श्वसन तथा जैविक क्रियाओं को ऊर्जा के माध्यम से ही संपन्न करते हैं। सौर विकिरण से आने वाली संपूर्ण ताप ऊर्जा पृथ्वी तक नहीं पहुँच पाती है। इसका केवल 45 प्रतिशत भाग ही पृथ्वी तक पहुँचता है। शेष वायुमण्डलीय गैसों, जलवाष्प और ओजोन द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है एवं रास्ते से ही परावर्तित हो जाता है।

वनस्पति एवं प्राणियों में ऊर्जा अनेक प्रकार से परिवर्तित होती है, जैसे पादप सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा ग्रहण करते हैं। पादप सौर ऊर्जा का रूपान्तरण रासायनिक ऊर्जा में कर देते हैं। यह रूपान्तरण कार्बोहाइड्रेट के रूप में होता है जो पादपों के ऊतकों में संचित हो जाता है। अन्त में यही ऊर्जा यांत्रिक तथा ऊष्मा ऊर्जा में रूपांतरित हो जाती है। पृथ्वी के परिमण्डलों के सभी जीव-जन्तु एवं पादप एक निश्चित व्यवस्था क्रम में परिचालित होते रहते हैं। किसी भी समुदाय में अनेक प्रजातियों के प्राणी साथ-साथ रहते हुए परस्पर एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं तथा अपने पर्यावरण को भी प्रभावित करते हैं। इस सम्पूर्ण व्यवस्था को पारिस्थितिकी तंत्र कहते हैं। जीवमण्डल एक विस्तृत एवं विशाल पारिस्थितिकी तंत्र है।

पारिस्थितिकी तंत्र की परिभाषा:

प्रकृति में सम्पूर्ण जीव-जन्तुओं तथा पादपों के पर्यावरण के साथ क्रियात्मक अन्तर्सम्बन्धों को सर्वप्रथम ब्रिटिश पारिस्थितिकीविद् ए0जी0 टान्सले ने 1935 में पारिस्थितिकी तंत्र नाम दिया। उनके अनुसार पारिस्थितिकी तंत्र वह तंत्र है, जिसमें वातावरण के जैविक और अजैविक कारक अन्तर्सम्बन्धित होते हैं। अन्य पारिस्थितिकीविदों ने पारिस्थितिकी तंत्र को परिभाषित किया है जैसे फासबर्ग (1936) "पारिस्थितिकी तंत्र एक कार्यशील एवं परस्पर क्रियाशील तंत्र होता है, जिसका संघटन एक या अधिक जीवों तथा उनके प्रभावी पर्यावरण से होता है।" ओडम (1971) "पारिस्थितिकी तंत्र ऐसे जीवों तथा उनके पर्यावरण की आधारभूत कार्यात्मक इकाई है जो दूसरे पारिस्थितिक तंत्रों से तथा अपने अवयवों के मध्य निरन्तर अंतःक्रिया करते रहते हैं। पीटर हेगेट (1975) "पारिस्थितिक तंत्र ऐसी पारिस्थितिक व्यवस्था है, जिसमें पादप तथा जीव-जंतु अपने पर्यावरण से पोषण श्रृंखला द्वारा संयोजित रहते हैं।"

स्ट्रैलर (1976) "पारिस्थितिक तंत्र ऐसे घटकों का समूह है, जो जीवों के समूह के साथ परस्पर क्रियाशील रहता है, इस क्रियाशीलता में पदार्थों तथा ऊर्जा का निवेश होता है, जो जैविक संरचना का निर्माण करते हैं।"

3.1 परितंत्र की अवधारणा

पारिस्थितिकी जीव विज्ञान की एक शाखा है, जिसमें जीव समुदायों का उसके वातावरण के साथ पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। पारिस्थितिकी तंत्र को समझने से पहले पारिस्थितिकी को जानना आवश्यक है। पारिस्थितिकी शब्द मूलतः भाषा के ओइकोस (Oikos) तथा लोगोस (Logos) का संयुक्त रूप है। ओइकोस का अर्थ निवास तथा लोगोस का अर्थ अध्ययन होता है। अतः पारिस्थितिकी जीवों का उनके जैविक एवं भौतिक पर्यावरण के साथ सम्बन्ध का अध्ययन है। पौधे, जीव-जंतु एवं भौतिक पर्यावरण को सामूहिक रूप से 'पारिस्थितिकी तंत्र' कहा जाता है। भारतीय वैज्ञानिक आर० मिश्रा ने पारिस्थितिकी को परिभाषित करते हुए बताया है, "पारिस्थितिकी आकार, प्रकारों एवं विभिन्न कारकों के मध्य पारस्परिक संबंध है।" एक ही भौगोलिक पर्यावरण में रहकर वृद्धि करने वाले एक ही जाति के विभिन्न जीव उस प्रजाति की जनसंख्या कहलाते हैं।

3.2 पारितंत्र की संरचना एवं कार्य

पारितंत्रों को निम्न दो भागों में विभाजित किया गया है।

(क) स्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र जैसे लवणीय

(ख) जलीय पारिस्थितिकी तंत्र जैसे अलवणीय जलीय पारिस्थितिकी तंत्र आदि।

पारिस्थितिकी तंत्र के मुख्यतः दो प्रकार के संघटक होते हैं—

(i) जैविक कारक (ii) अजैविक कारक

जैविक कारक

- जंतु समुदाय
- वनस्पति समुदाय
- सूक्ष्म जीव
- मनुष्य

अजैविक कारक

- प्रकाश
- ताप
- आद्रता
- हवा
- स्थलाकृति
- मृदा

पारिस्थितिकी-तंत्र की विशेषताएँ

पारिस्थितिकी तंत्र में आकार, रूप एवं संघटन के आधार पर विभिन्नताएँ हैं, परंतु समस्त तंत्रों का आधारभूत ढांचा एक समान है।

(A) संरचनात्मक विशेषताएँ — इसमें वे समस्त तत्व सम्मिलित हैं, जो घटक एक पारितंत्र की संरचना के पहलुओं से आते हैं।

1. जैविक संरचना — इसके अंतर्गत पशु-पक्षी, पौधे एवं सूक्ष्म जीव आते हैं, जो तंत्र के विभिन्न स्तरों पर पोषण एवं व्यवस्था के भिन्न-भिन्न रूप दर्शाते हैं तथा इस आधार पर इन्हें उत्पादक एवं उपभोक्ता कहा जाता है।

(क) उत्पादक — सामान्यतः पौधे पारितंत्र के उत्पादक होते हैं, जो सूरज के प्रकाश द्वारा अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। इस क्रिया को 'प्रकाश संश्लेषण' कहा जाता है। कुछ सूक्ष्म जीव जैविक पदार्थों एवं अन्य रसायनों का प्रयोग करके भी भोजन बनाते हैं। उदाहरणार्थ कुछ बैक्टीरिया रेडियाधर्मी तत्वों एवं सल्फर द्वारा भोजन बनाते हैं।

(ख) उपभोक्ता – वह जीव जो भोजन के लिए अन्य जीवों पर निर्भर करते हैं, उन्हें उपभोक्ता कहते हैं। उपभोक्ता के निम्न प्रकार हैं।

(i) शाकाहारी जीव – वह समस्त जीव जो भोजन के लिए पौधों पर निर्भर करते हैं, शाकाहारी कहलाते हैं। जैसे खरगोश, हिरन, हाथी, मनुष्य आदि। समुद्र में छोटी मछलियों का भोजन पौधों और शैवाल होते हैं।

(ii) मांसाहारी जीव – भोजन के लिए शाकाहारी या अन्य जीवों पर निर्भर करने वाले जीवों को मांसाहारी जीव कहा जाता है। भोजन श्रृंखला में ऊँचे खाद्य स्तर पर मांसाहारी प्राणी या द्वितीयक उपभोक्ता होते हैं। उदाहरणार्थ बाघ, गीदड़, चीता, लोमड़ी आदि।

(iii) सर्वाहारी – वह जीव जो भोजन के लिए पौधों तथा अन्य जीवों पर निर्भर करते हैं, उन्हें सर्वाहारी जीव कहा जाता है। जैसे मनुष्य, चूहा आदि।

(iv) अपघटक – ये जीव मृत कार्बनिक सामग्री को छोटे कणों में और अंततः सरल पदार्थों में विघटित करते हैं। उदाहरणार्थ— जीवाणु, कवक आदि।

2. अजैविक संरचना – पारिस्थितिक तंत्र की अजैविक संरचना का निर्माण भौतिक एवं रासायनिक घटक करते हैं।

(क) भौतिक कारक – पारिस्थितिक तंत्र के भौतिक कारकों में प्रमुख हैं— सूर्य का प्रकाश, सूर्य की अवधि, तापमान, वर्षा, जलवायु, अक्षांश व देशांतर की स्थिति, मृदा के प्रकार, जल आदि।

(ख) रासायनिक कारक – मुख्य पोषक तत्व जैसे कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन, सल्फर, फॉस्फोरस, ऑक्सीजन, लवण एवं अन्य जैविक पदार्थ पारिस्थितिक तंत्र के कार्य को प्रभावित करते हैं।

(B) व्यवहारिक विशेषताएँ – समस्त जैविक घटक पर्यावरणीय प्रभाव के अनुकूलन हेतु एक व्यवस्थित क्रम में कार्य करते हैं। पारिस्थितिक तंत्र की कार्य-प्रणाली के महत्वपूर्ण घटक निम्न प्रकार हैं—

(i) खाद्य-श्रृंखला एवं खाद्य-जाल

(ii) ऊर्जा का प्रवाह

(iii) पदार्थ-चक्रण

(iv) प्राथमिक एवं द्वितीयक उत्पादक

(v) पारिस्थितिक तंत्र का विकास, संचालन तथा संतुलन

3.3 उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक

खाद्य-स्तर – खाद्य-श्रृंखलाओं में क्रमशः पड़ाव होते हैं, जिन्हें खाद्य-स्तरों का नाम दिया गया है। उदाहरणार्थ स्वपोषी अथवा उत्पादक (हरे पौधे) प्रथम पोषी स्तर है तथा सौर ऊर्जा का स्थिरीकरण करके उसे विषमपोषियों अथवा उपभोक्ताओं के लिए उपलब्ध कराते हैं। शाकाहारी अथवा प्राथमिक उपभोक्ता द्वितीय पोषी स्तर छोटे मांसाहारी अथवा तृतीय उपभोक्ता चौथे पोषी स्तर का निर्माण करते हैं। खाद्य-श्रृंखला की प्रत्येक कड़ी पर ऊर्जा का ह्रास होता है अर्थात् उपलब्ध ऊर्जा की मात्रा एक के बाद एक कम होती जाती है, क्योंकि प्रत्येक स्तर पर कुछ ऊर्जा व्यर्थ जाती है जिससे ऊष्मा गतिकी के द्वितीय सिद्धांत के आधार पर समझा जा सकता है। इस सिद्धांतानुसार ऊर्जा का एक से दूसरे रूप में बदलाव सुचारु नहीं होता तथा इस क्रिया में ऊर्जा व्यर्थ भी जाती है। किसी खाद्य श्रृंखला में एक प्राणी उसे प्राप्त होने वाली ऊर्जा का मात्र 10 प्रतिशत ही आगे प्रसारित करता है। शेष 90 प्रतिशत ऊर्जा जैविक क्रियाओं एवं व्याज्य पदार्थों (मल-मूत्र) के साथ पर्यावरण में समाहित हो जाती है।

3.4 पारितंत्र में ऊर्जा का प्रवाह

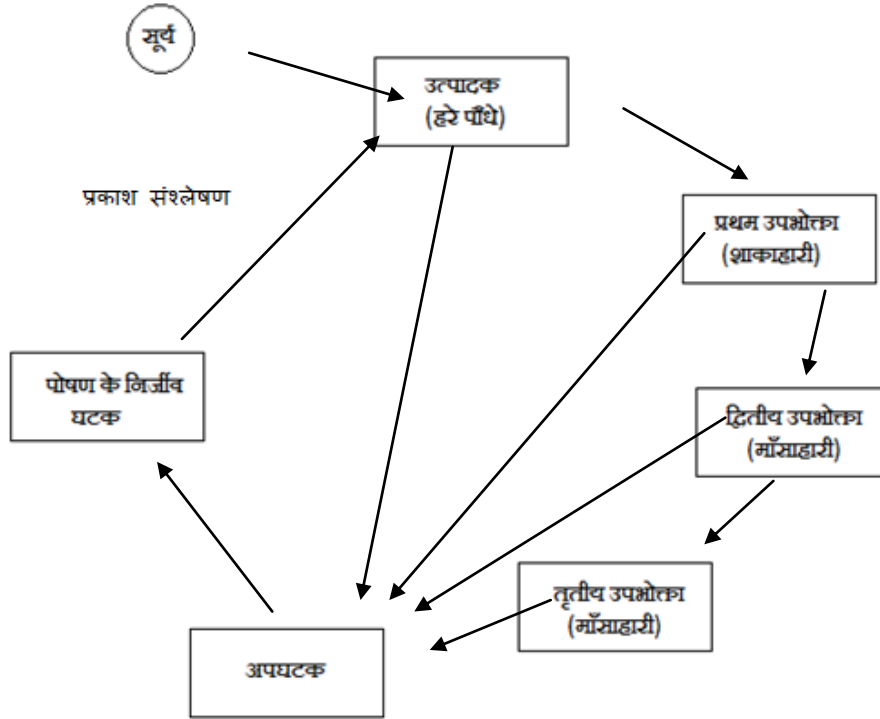
पारिस्थितिक तंत्र ऊर्जा द्वारा संचालित होता है तथा ऊर्जा का प्रवाह खाद्य-श्रृंखला के माध्यम से होता है। पारिस्थितिक तंत्र में ऊर्जा का प्रवाह एकदिशीय होता है। यह उत्पादकों से उपभोक्ताओं की दिशा में होता है तथा अन्त में अपघटकों की दिशा में इसका पुनःचक्रण नहीं होता है। ऊर्जा का प्रवाह पोषक तत्वों के प्रवाह से भिन्न है क्योंकि पोषक तत्वों का पुनःचक्रण होता रहता है। ऊर्जा का प्रवाह विभिन्न पोषण स्तरों से होकर सम्पन्न होता है। यह प्रवाह ऊष्मागतिकी के निम्न दो नियमों द्वारा नियंत्रित होता है।

पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा का स्थानांतरण और वितरण ऊष्मा-गतिकी के नियमानुसार होता है—

1. ऊर्जा का निर्माण या नाश नहीं होता है। ऊर्जा हमेशा स्थानांतरित होती है जैसे हरे पौधे, सौर ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में बदल देते हैं। यही रासायनिक ऊर्जा श्वसन क्रिया के कारण ऊष्मा ऊर्जा में बदल जाती है।
2. जिस प्रकार ऊर्जा का रूपान्तरण होता है, उसी प्रकार ऊर्जा का ह्रास होता है। ऊर्जा का कुछ भाग वायुमण्डल में विकिरित हो जाता है।
3. यदि कोई जीव भोजन द्वारा ऊर्जा प्राप्त करता है, तो प्राप्त की गई समस्त ऊर्जा को एकत्रित नहीं कर सकता है। वह प्राप्त की गई ऊर्जा का केवल 10 प्रतिशत ही शरीर निर्माण में उपयोग कर सकता है। शेष अपव्यय हो जाती है।

ऊर्जा प्रवाह के संदर्भ में पारिस्थितिकी तंत्र का अध्ययन निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

- ऊर्जा प्रवाह एक दिशीय होता है।
- उत्पादक (पौधे) सूर्य ऊर्जा ग्रहण कर प्रकाश संश्लेषण करते हैं जिससे रासायनिक ऊर्जा का जन्म होता है।
- उपभोक्ता इस रासायनिक ऊर्जा का उपयोग करते हैं।
- भोजन के रूप में कुल ऊर्जा एवं उसका उपापचयी क्रियाओं में उपयोग।
- उत्सर्जन, ऊष्मा, श्वसन आदि के रूप में ऊर्जा की हानि।
- कुल शुद्ध उत्पादन ऊर्जा।



चित्र-1 ऊर्जा प्रवाह

3.5 पारितंत्र का क्रम

पदार्थ-चक्रण

प्रकृति में विभिन्न तत्व चक्रीय रूप से एक जीव से दूसरे जीव में स्थानान्तरित होते हैं तथा पुनः प्रकृति में लौट जाते हैं। खनिज तत्वों के भूमि एवं जीवों के माध्यम से होने वाले चक्रीय-भ्रमण को पदार्थ चक्रण कहते हैं। चूंकि

इन खनिजों के स्रोत अथवा उपस्थित घटक जैविक व भौतिक दोनों हैं। अतः इन्हें 'जैव-भौम पदार्थ परिसंचरण' भी कहा जाता है। प्रमुख पदार्थ चक्रण निम्न प्रकार से हैं।

(1) **कार्बन चक्र** – कार्बन चक्र कार्बन-डाईऑक्साइड गैस (CO_2) पर आधारित है। पौधे वायुमण्डलीय कार्बन डाईऑक्साइड को ग्रहण करके कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। उनकी श्वसन क्रिया में कार्बोहाइड्रेट का विघटन होता है, जिससे कार्बन डाईऑक्साइड मुक्त होकर पुनः वायुमण्डल में चली जाती है। शुष्क पौधों तथा मृत जीवों के अवयवों का वियोजन होने पर तथा शैलों का अनाच्छादन होने पर कार्बन डाईऑक्साइड मुक्त होकर वायुमण्डल में विलीन हो जाती है। मनुष्य तथा अन्य जीव श्वसन क्रिया द्वारा ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं तथा कार्बन डाईऑक्साइड निकालते हैं, जो वायुमण्डल में मिल जाती है। सामान्यतः जिस गति से वायुमण्डल से कार्बन पृथक होता है विभिन्न प्रावस्थाओं से होकर यह उसी गति से पुनः वायुमण्डल में पहुँच जाता है और इस प्रकार कार्बन चक्र पूर्ण होता है।

जीवाश्म ईंधनों जैसे कोयल, लकड़ी, पेट्रोलियम आदि के दहन के कारण कार्बन डाईऑक्साइड के वायुमण्डलीय स्तर में वृद्धि की समस्या उत्पन्न हुई है।

(2) **फॉस्फोरस चक्र** – फॉस्फोरस का स्रोत पृथ्वी की चट्टानों, शैलों, जीवाश्म आदि हैं। चट्टानों में फास्फेट आयन के रूप में अथवा समुद्र तलहटों में निक्षेपों के रूप में पाया जाता है। शैलों के अपरदन से फास्फेट मृदा में मिलता रहता है, जिन्हें पौधों द्वारा सोख लिया जाता है। तत्पश्चात् यह जीवों तक पहुँचता है। इन जीवों की मृत्यु के पश्चात् फॉस्फोरस अपघटित होकर पुनः धूलित अवस्था में बदल जाता है, जिसे मृदा सोख लेती है तथा इस प्रकार फॉस्फोरस चक्र निरन्तर गतिमान रहता है। फॉस्फोरस की पर्याप्त मात्रा समुद्र में होती है जो अनेक अवसादों में विलीन रहता है। किसानों द्वारा फॉस्फोरस का प्रयोग उर्वरक के रूप में किया जाता है। जल प्रवाह द्वारा फॉस्फोरस बहकर समुद्रों तथा नदियों में मिल जाता है, वहाँ इसकी अधिक मात्रा 'यूट्रोफिकेशन' की समस्या उत्पन्न करती है।

(3) **नाइट्रोजन चक्र** – वायुमण्डल में उपस्थित नाइट्रोजन गैस को पौधे एवं जंतु पोषक तत्व के रूप में सीधे उपयोग में नहीं ला सकते हैं। इसे अमोनिया (NH_3) नाइट्रेट या नाइट्राइट के यौगिक रूप में बदलना आवश्यक होता है। नाइट्रोजन तत्व को नाइट्रोजन के यौगिक रूप में बदलने की क्रिया को नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कहते हैं। बारिश के साथ बिजली चमकने पर उपस्थित नाइट्रोजन ऑक्सीजन से क्रिया कर नाइट्रोजन के ऑक्साइड बनाती है जो बारिश के साथ क्रिया कर नाइट्रिक अम्ल बनाते हैं जो पृथ्वी पर उपस्थित क्षारों से क्रिया कर लवण बनाते हैं, जिन्हें पेड़-पौधे प्रोटीन या अन्य कार्बनिक पदार्थ में बदल देते हैं। इन पौधों को जंतुओं द्वारा खाए जाने पर नाइट्रोजन जंतुओं के शरीर में पहुँच जाते हैं। जंतुओं अथवा पादपों के अवशेष या मल के रूप में नाइट्रोजन यौगिक धरती में पहुँचते हैं जहाँ सूक्ष्म जीवों द्वारा उन्हें अपघटित कर पौधों के अवशोषण के योग्य बना दिया जाता है।

(4) **जल चक्र** – जल चक्र पृथ्वी पर उपलब्ध जल के एक रूप से दूसरे में परिवर्तित होने अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान को गति करने की चक्रीय प्रक्रिया है। इसमें कुल जल की मात्रा का क्षय नहीं होता है, केवल रूप परिवर्तन होता है। इसके मुख्य चक्र में सर्वाधिक उपयोग में लाए जाने वाला जल रूप पानी (द्रव) है, जो वाष्प बनकर वायुमण्डल में जाता है फिर संघनित होकर बादल बनकर टोस (हिमपात) या द्रव रूप में बरसता है। हिम पिघलकर पुनः द्रव में परिवर्तित हो जाता है।

(5) **ऑक्सीजन चक्र** – पौधे तथा जंतु श्वसन क्रिया के दौरान वायुमण्डल से ऑक्सीजन ग्रहण करते हैं। पौधे प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया के दौरान वातावरण में ऑक्सीजन छोड़ते हैं। यह ऑक्सीजन चक्र को कार्बन चक्र से जोड़ता है। वनों की कटाई से पृथ्वी के वातावरण में ऑक्सीजन का स्तर घट रहा है।

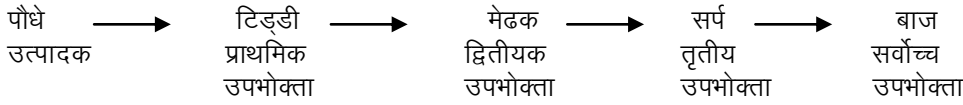
(6) **सल्फर चक्र** – वायुमण्डल में सल्फर, हाइड्रोजन सल्फाइड (H_2S) तथा सल्फर डाईऑक्साइड (SO_2) के रूप में प्रवेश करता है। SO_2 तथा H_2S दोनों का उद्गम स्थल सक्रिय ज्वालामुखी है। सल्फेट लवण भी सल्फर के अन्य स्रोतों में से एक है। H_2S दलदल व ज्वारीय तलों में स्थित कार्बनिक पदार्थों के अवायवीय (ऑक्सीजन के बिना) अपघटन से भी प्राप्त होते हैं। कायेले तथा तेल में सल्फर होता है, जिन्हें जलाकर मानव द्वारा सल्फर युक्त पेट्रोल का शोधन किया जाता है तथा इस क्रिया में, तांबा, शीशा एवं जस्ता निष्कर्षित करने के लिए धातु गलाने पर उत्पन्न होने वाली सल्फर डाईऑक्साइड के माध्यम से सल्फर चक्र प्रभावित होता है।

3.6 खाद्य श्रृंखला, खाद्य जाल और पारितंत्रिय पिरामिड

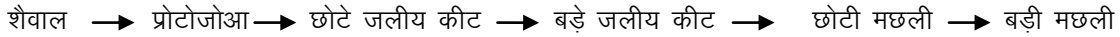
खाद्य श्रृंखला

पारिस्थितिकी तंत्र में जीवों की भोजन से सम्बन्धित श्रृंखला, जिसमें जीवधारी भोज्य और भक्षक के रूप में परस्पर सम्बद्ध होते हैं, खाद्य श्रृंखला कहलाती है। इसके एक छोर पर प्राथमिक उत्पादक तथा दूसरे पर सर्वोच्च उपभोक्ता होता है।

स्थल पारिस्थितिक तंत्र



जलीय पारिस्थितिक तंत्र



खाद्य श्रृंखला तीन प्रकार की होती है।

(अ) चराई खाद्य श्रृंखला – जब खाद्य-श्रृंखला पौधों (उत्पादकों) से लेकर सर्वोच्च उपभोक्ता तक हो तो यह चराई खाद्य श्रृंखला कहलाती है।

(ब) अपरद खाद्य श्रृंखला – मृत जैविक पदार्थों पर आधारित सूक्ष्म जीवों की भोजन श्रृंखला अपरद खाद्य कहलाती है।

(स) परजीवी खाद्य श्रृंखला – पौधों से आरम्भ होकर यह श्रृंखला बड़े जीवों से होती हुई छोटे जीवों में जाती है।

खाद्य जाल

पारिस्थितिकी तंत्र में खाद्य श्रृंखलाएँ आपस में एक-दूसरे से जुड़ी होती हैं तथा एक तंत्र का निर्माण करती हैं, जिसे खाद्य जाल कहते हैं। खाद्य जाल में जीवों के पास वैकल्पिक व्यवस्था रहती है। उदाहरणतः खाद्य श्रृंखला में चूहे पौधों को खाते हैं, इसके अलावा पौधे, गाय व खरगोश आदि द्वारा भी खाए जाते हैं। चूहे साँप के अलावा चील या बाज आदि द्वारा भी खाए जाते हैं। साँप को बाज के अतिरिक्त मोर या नेवला भी खाते हैं। इस प्रकार परितंत्र में खाद्य-श्रृंखलाएँ परस्पर सम्बन्धित होकर खाद्य जाल का निर्माण करती हैं। एक खाद्य जाल में जितने अधिक वैकल्पिक मार्ग होंगे उतना ही वह खाद्य जाल स्थिर होगा।

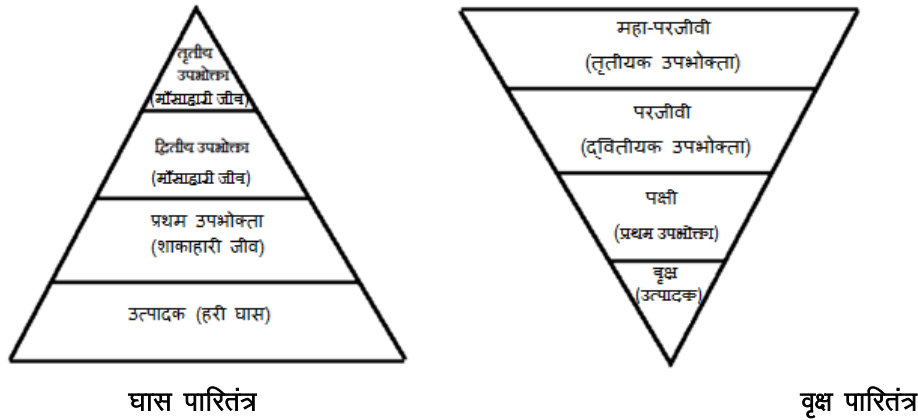
पारितंत्रीय पिरामिड

एक खाद्य श्रृंखला में विभिन्न प्रकार के खाद्य स्तर होते हैं जैसे उत्पादक स्तर, प्राथमिक उपभोक्ता स्तर एवं द्वितीय उपभोक्ता स्तर। ऊष्मा गतिकी के द्वितीय सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक पोषण स्तर पर या ऊर्जा स्तर पर मात्र 10 प्रतिशत ऊर्जा अगले स्तर में स्थानान्तरित होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्पादकों से शुरू होकर अगले स्तरों की ओर संख्या, जैविक भार एवं ऊर्जा में निरन्तर बदलाव आते रहते हैं। अंग्रेजी विज्ञानी चार्ल्स एलटन ने इस व्यवस्था को एक नियम द्वारा इस प्रकार प्रतिपादित किया है कि आहार श्रृंखला में प्रथम पोषण स्तर में बायोमास, संचित ऊर्जा, जातियों की संख्या अधिकतम होती है तथा द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पोषण स्तर में सापेक्षतः बायोमास, संचित ऊर्जा एवं जातियों की संख्या में क्रमशः कमी होती जाती है। इस प्रकार उपभोक्ताओं की संख्या, बायोमास तथा संचित ऊर्जा की उपलब्धता के रेखीय चित्रण को पारिस्थितिक पिरामिड कहते हैं। पिरामिड का आधार उत्पादक बनाते हैं तथा उपभोक्ताओं को क्रमशः आधार के ऊपर रखा जाता है। ऐसे तीन पिरामिड बनते हैं।

(i) संख्या का पिरामिड

संख्या पिरामिड में खाद्य प्रणाली के विभिन्न स्तरों पर जीवों की संख्या व्यवस्था दिखाई जाती है। सी0 एल्टन के नियम के अनुसार भोजन श्रृंखला के आधार पर सबसे नीचे प्राणी अधिक होते हैं तथा ऊपर के स्तर में घास अथवा वनस्पति अनगिनत संख्या में होते हैं, जबकि उन पर निर्भर शाकाहारियों (चूहे, खरगोश, गाय, हिरन आदि) की संख्या घास की अपेक्षा कम होती है। अंतिम तथा तृतीय उपभोक्ता जैसे बाज, मोर आदि की संख्या समस्त स्तरों की अपेक्षा कम होती है। इस तरह घास स्थल का संख्या पिरामिड एक सीधा पिरामिड होता है। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र की संख्या का पिरामिड भी सीधा बनता है, जहाँ पादप प्लवक (उत्पादक) संख्या में सर्वाधिक होते हैं। इसके आगे, पर छोटी मछलियाँ (राटीफर आदि) प्राथमिक स्तर के उपभोक्ता होते हैं, जिनकी संख्या उत्पादकों से कम होती है। द्वितीय स्तर के उपभोक्ता छोटी मछलियाँ, जल भृंग आदि प्राथमिक उपभोक्ताओं (शाकाहारियों) से संख्या में कम होती है। सबसे बड़ी मछलियाँ तृतीयक स्तर की उपभोक्ता होती हैं, जिनकी संख्या सबसे कम होती है। वन पारिस्थितिकी तंत्र में संख्या के पिरामिड का आकार विलोम पिरामिड का हो जाता है। वन पारिस्थितिक तंत्र में पेड़ों की प्रजातियाँ उत्पादक हैं, जिनकी संख्या उन पर निर्भर पक्षी, हिरणों, हाथी आदि उपभोक्ताओं से कहीं कम है। ये शाकाहारी उपभोक्ता संख्या में सबसे अधिक होते हैं और उनको खाने वाले मांसाहारी उपभोक्ताओं की संख्या क्रमशः घटती जाती है। वन में परजीवी खाद्य श्रृंखला उल्टे संख्या पिरामिड का ही एक उदाहरण है। वन में एक बड़े वृक्ष (उत्पादक) पर

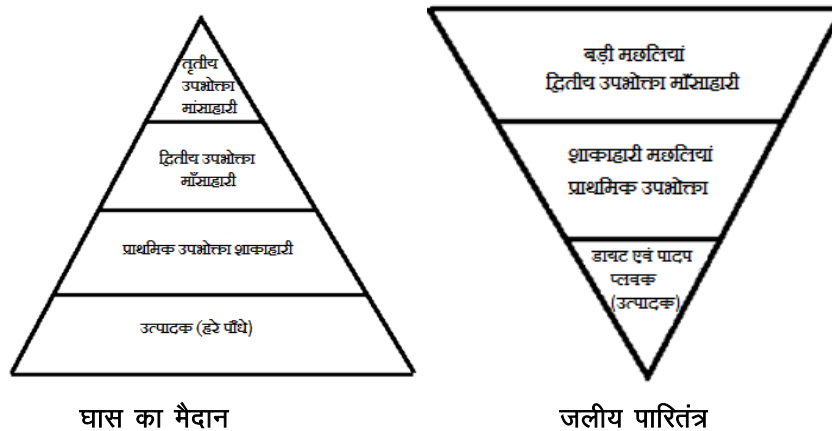
फल खाने वाले अनेकों पक्षी (प्रथम स्तर उपभोक्ता) निर्भर करते हैं तथा इन पक्षियों के शरीर पर परजीवी (द्वितीयक स्तर के उपभोक्ता) पाए जाते हैं। तृतीयक स्तर पर महा-परजीवी जैसे बैक्टीरिया, कवक आदि आते हैं, जो उल्टे पिरामिड के शिखर पर संख्या में सर्वाधिक होते हैं।



चित्र-2 : जातियों की संख्या में पिरामिड

(iii) जैविक भार पिरामिड

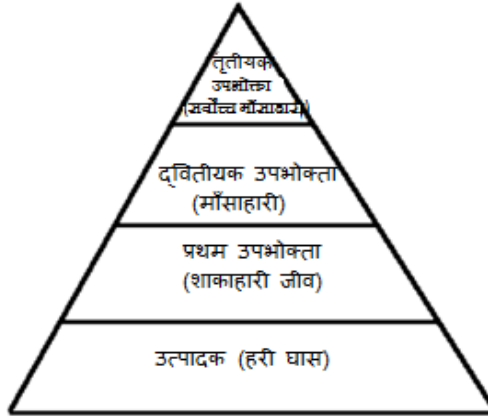
जैविक भार पिरामिड वह ग्राफिक चित्र है जिसमें जीवों के सकल भार को आधार मानकर आकलन किया जाता है। इसमें प्रति इकाई क्षेत्र में पाये जाने वाले जीवधारियों का सम्पूर्ण शुष्क भार पारितंत्र का जीव भार कहलाता है। एक घास स्थल पारिस्थितिक तंत्र अथवा वन पारिस्थितिक तंत्र में उत्पादक का जीव भार खाद्य श्रृंखला के प्रत्येक स्तर के उपभोक्ताओं से अधिक होता है। अतः पिरामिड सीधे होते हैं। जलीय पारिस्थितिकी तंत्र में उत्पादक संख्या में तो अधिक होते हैं परन्तु आकार में छोटे होने के कारण इनका जीवभार सबसे कम होता है। जीवभार की मात्रा उपभोक्ताओं के प्रत्येक स्तर के साथ क्रमशः बढ़ती चली जाती है। अतः जलीय पारिस्थितिक तंत्र में पिरामिड उल्टा होता है।



चित्र-3 : जैविक भार पिरामिड

(iii) ऊर्जा का पिरामिड

ऊर्जा का पिरामिड किसी भोजन श्रृंखला अथवा जाल में आहार और ऊर्जा के सम्बन्ध को दर्शाता है। खाद्य श्रृंखलाओं में ऊर्जा पोषण तलों से प्रवाहित होती है तथा हर अगले तल में तथा हर अगले तल में ऊर्जा की मात्रा घटती जाती है। अन्त में ऊर्जा के अधिकांश भाग का पर्यावरण में ऊष्मा के रूप में ह्रास हो जाता है। अतः ऊर्जा का पिरामिड सदैव सीदा होता है।



चित्र-4 : ऊर्जा का पिरामिड

पारिस्थितिक वंश क्रम

किसी भी पारिस्थितिकी तंत्र के पूर्ण विकास में काफी समय लगता है। जैसे जैसे समय बीतता जाता है उस तंत्र के जैविक एवं अवैजिक घटकों के मध्य होने वाली अंतक्रियाओं के कारण पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन होता रहता है। किसी भी स्थान पर नए पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण जब शुरू होता है, तो वह विकास की कई अवस्थाओं से गुजरता हुआ अंततः चरम सीमा पर पहुँचता है। इस दौरान क्रमवार रूप से कई विकास की अवस्थाएँ एक-दूसरे को विस्थापित करती हैं, इसे ही “पारिस्थितिकी निस्तरण” कहा जाता है। अर्थात् यह क्रिया अति सूक्ष्म रूप से शुरू होती है एवं धीरे-धीरे पूर्ण तंत्र के निर्माण के लिए नींव का निर्माण करती है।

पारिस्थितिक तंत्र में सतत परिवर्तन होते रहते हैं। अपनी आवश्यकतों की पूर्ति हेतु जीव परस्पर संघर्ष करते रहते हैं। ऐसा देखा गया है कि एक जाति का शक्तिशाली जीव अन्य जाति के स्थान पर स्थानापन्न हो जाता है तथा इसके साथ अन्य परिवर्तन भी घटित होते रहते हैं। इस प्रक्रिया को पारिस्थितिक वंशक्रम या पारिस्थितिक अनुक्रमण कहते हैं। क्रमिक परिवर्तनों का उदाहरण किसी तालाब के जल के पारिस्थितिकी तंत्र में भी देखा जा सकता है। एक शुष्क तालाब वर्षा ऋतु के आगमन के पश्चात छोटे-छोटे जलचर प्राणियों के निवास स्थल में परिवर्तित हो जाता है, जो एक पूर्ण तंत्र का निर्माण करते हैं। ग्रीष्म ऋतु में तालाब फिर से शुष्क चरण में पहुँच जाता है, जिससे उसका जलचर जीवन विस्थापित अथवा समाप्त हो जाता है। पारिस्थितिक अनुक्रमण किसी स्थान में एक निश्चित समय में घटित जीवों एवं वनस्पतियों के क्रमबद्ध परिवर्तन को कहते हैं।

ओड्म के अनुसार –

1. जैव जातियों का अनुक्रमणीय परिवर्तन क्रमबद्ध होता है।
2. अनुक्रमण जैव विकास का आधार है। यह जैव जाति के पर्यावरणीय परिवर्तन से संबद्ध प्राकृतिक व्यवस्था है।
3. अनुक्रमण पारिस्थितिक तंत्र की स्थिरता का संकेत है, स्थिरता में जैवभार सर्वाधिक होता है।

जैव संघर्ष करते हुए अपनी वंशवृद्धि करते हैं, जब एक स्तर पर आकर यह वंशवृद्धि स्थिर हो जाती है, तो इसे जीव के विकास की चरम अवस्था कहते हैं। विभिन्न समुदाय जिनमें निरन्तर बदलाव आते रहते हैं ‘मध्यवर्ती समुदाय’ कहलाते हैं। सर्वप्रथम स्थापित होने वाले समुदाय को ‘अग्रिम समुदाय’ कहते हैं।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में आरम्भ होने वाले पारिस्थितिक निस्तरण को तीन प्रमुख निस्तरण जलीय निस्तरण, मरुस्थलीय निस्तरण और मीजोसियर में बांटा गया है।

(i) जलीय निस्तरण – जहाँ तालाब धीरे-धीरे थलीय तंत्र में परिवर्तित हो जाता है उसे जलीय निस्तरण कहते हैं। तालाब एक जलीय तंत्र होता है जिसमें पादप प्लवक, शैवाल, छोटी व बड़ी मछलियाँ, शंख आदि पाए जाते हैं।

कुछ समय पश्चात् तालाब के किनारे पर छोटे-छोटे पौधे उत्पन्न हो जाते हैं, जो न तो पूर्णतया जलीय वनस्पति होते हैं और न ही थलीय वनस्पति होते हैं। ये पौधे अपना जलीय जीवन चक्र पूर्ण करते हैं एवं समाप्त हो जाते हैं। इनके मरने पर इनके शरीर तालाब के किनारे ही गल जाते हैं। ऐसा लंबे समय तक होता रहता है तथा सड़े-गले पौधों के द्वारा एक छोटा सा पारिस्थितिकी तंत्र बन जाता है। जो कि वाष्पीकरण की क्रिया से पानी को सुखाता है। अन्य प्रक्रिया में यदि किसी तालाब में जल कुभी उत्पन्न हो जाती है व उसकी मात्रा बढ़ती है, जिससे वह तालाब में फैलती जाती है तथा वाष्पीकरण द्वारा पानी को सुखाती है एवं जब तालाब सूख जाता है तो जल कुभी भी

मर जाती हैं व इसके सड़े-गले भागों से ह्यूमस का निर्माण होता है एवं धीरे-धीरे थलीय तंत्र का निर्माण होने लगता है।

(ii) मरुस्थलीय निस्तरण — इस निस्तरण के तहत मरुस्थलीय इलाका धीरे-धीरे हरे-भरे इलाके में परिवर्तित होने लगता है। मरुस्थलीय क्षेत्रों में चट्टानों इत्यादि की उपस्थिति होने के कारण वहाँ पेड़-पौधों का विकास नहीं हो पाता है, किंतु विकास क्रम में कभी-कभी चट्टान पर कोई पौधा उत्पन्न हो जाता है एवं वह कालांतर में मर जाता है तो वह अपने शरीर के अंश छोड़ जाते हैं, जिन पर मिट्टी जमने लगती है। जिससे चट्टानों पर शैवाल आदि के पैदा होने के लिए स्थान मिल जाता है जिससे चट्टानी इलाकों में एक नए पारिस्थितिकी तंत्र के निर्माण की शुरुआत होती है एवं धीरे-धीरे झाड़ियाँ उत्पन्न होती हैं व अंततः सुविकसित हरे-भरे वनों का निर्माण हो जाता है।

(iii) मीजोसियर — यह एक मध्यवर्ती तरह का निस्तरण है, जिसमें पर्याप्त नमी उपलब्ध रहती है। अर्थात् जलीय निस्तरण एवं मरुस्थलीय निस्तरण में अवस्थाएँ जिस ओर अग्रसर होती है वह अवस्था इसमें पहले से ही उपलब्ध होती हैं।

पारिस्थितिक अनुक्रमण की क्रिया

अनुक्रमण या वंशक्रम की प्रक्रिया एक निश्चित श्रृंखला के भिन्न-भिन्न स्तरों से गुजरती है।

(i) अनावृतता — यह जैवविहीन क्षेत्र में प्रथम जीव के आगमन के साथ जैव बसाव एवं विकास की शुरुआत है। भूस्खलन, अकाल, ज्वालामुखी, चराई, महामारी आदि बंजर क्षेत्र के निर्माण का कारण हो सकते हैं। इसे प्राथमिक अनुक्रमण भी कहते हैं।

(ii) अतिक्रमण एवं प्रसार — यह क्षेत्र प्राथमिक जैव जायितों के विस्थापित अथवा नष्ट होने के बाद नव प्रजातियों के आगमन एवं उनके प्रभुत्व स्थापित होने का स्तर है। इसे द्वितीय अनुक्रमण भी कहते हैं।

(iii) प्रतिस्पर्धा एवं सहकारिता — एक क्षेत्र में निवास करने वाले जीवों की संख्या में वृद्धि होने की स्थिति में अंतर प्रजातीय व अंतःप्रजातीय प्रतिस्पर्धा शुरु हो जाती है। ये भोजन तथा आवास के लिए प्रभावित रहते हैं। इस क्रिया को सहकारिता कहा जाता है।

(iv) प्रतिक्रिया — समस्त जीव पोषण एवं विकास हेतु पर्यावरण से जल तथा खनिज लवण प्राप्त करते हैं तथा इस प्रक्रिया में पर्यावरण को प्रभावित करते हैं, जिसे प्रतिक्रिया कहते हैं। जब यह परिवर्तन किसी परिस्थान पर पहले से बसने वाले जीवों के अनुकूल नहीं होता तथा नई प्रजातियों को निमंत्रण करता है। ऐसी स्थिति में नवीन परिस्थिति की क्षमता के अनुरूप जीवों का आगमन होता है। यहीं से मध्यवर्ती समुदायों का दौर शुरु होता है।

(v) स्थरीकरण — जीव अपनी वंशवृद्धि करते हैं तथा एक स्तर पर आकर यह वंशवृद्धि स्थिर हो जाती है। इस अवस्था में वंशक्रम एक अथवा अधिक स्थिर समुदाय के रूप में विनंतर हो जाता है। अंतिम समुदाय को 'शिखर समुदाय' कहते हैं तथा यह समुदाय पर्यावरण के साथ संतुलन स्थापित करता है।

3.7 निम्नलिखित पारितंत्रों का परिचय, प्रकार, बुनियादी विशेषता, संरचना एवं कार्य

पारिस्थितिकी तंत्र के निम्न चार प्रकार के तंत्रों का परिचय।

3.7.1 वन पारिस्थितिक तंत्र

एक क्षेत्र जहाँ वृक्षों का घनत्व अत्यधिक होता है वह वन कहलाता है। वन जीव जंतुओं के लिए आवास स्थल है। विभिन्न वन क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के वनस्पति पाई जाती है, जिसका कारण है किसी क्षेत्र विशेष की जलवायु तथा मिट्टी की विशेषता। वनों को जलवायु के आधार पर निम्न मुख्य वर्गों में विभाजित किया गया है—

(i) उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन— उष्ण कटिबंधीय वर्षावन ऐसे क्षेत्र होते हैं जो भूमध्य रेखा के निकट पाए जाते हैं। वर्षा वन वे जंगल हैं, जिनमें प्रचुर मात्रा में वर्षा होती है। धरती पर रहने वाले समस्त पशुओं तथा पौधों के प्रजातियों की आधी संख्या इन वर्षा वनों में रहती है। वर्षा वन नम होता है। लंबे, चौड़े, पत्ते वाले सदाबहार पेड़ वहाँ प्रमुख पौधे होते हैं, जो वन की सतह पर पत्तेदार वितान का गठन करते हैं। वर्षा वनों के कई क्षेत्रों में भूमि समह पर सूरज की रोशनी न पहुँच पाने के कारण बड़े वृक्षों के नीचे छोटे पौधे और झाड़ियाँ बहुत कम उग पाती हैं। इस कारण वन से होते हुए लोगों व अन्य जानवरों का चलना सम्भव हो जाता है। किसी कारणवश यदि पत्तों के वितान को नष्ट या पतला कर दिया जाता है तो नीचे की जमीन शीघ्र ही घनी उलझी लताओं, झाड़ियों व जंगल कहे जाने वाले छोटे पेड़ों से भर जाती है और पोषक तत्वों को पैदा करती है। इन वनों में बांस, रबर, नारियल, महोगनी, रोजऊड, सरु,

सेडार, सुपारी, केला, सिनकोना आदि के वृक्ष होते हैं। ये वन बहुत घने होते हैं। इनमें शीत तथा ग्रीष्म ऋतु के तापमान में भिन्नता नहीं पाई जाती है। उष्ण कटिबंधीय वर्षा वन वर्तमान में मानव गतिविधि के कारण तेजी से सिकुड़ रहे हैं।

(ii) उष्ण-कटिबंधीय पतझड़ी वन – जिन क्षेत्रों में वर्षा मौसमी एवं कम मात्रा में होती है वहाँ पतझड़ की ऋतु होती है। यहाँ केवल मानसून में ही वर्षा होती है। टिक के पेड़ों के अधिकांश वन इसी प्रकार के होते हैं। पतझड़ी वन में जाड़ों तथा गर्मी के माह में वृक्ष पत्ते गिरा देते हैं तथा मानसून से पहले उन पर नए कोपलें उग आती हैं। इस प्रकार के वनों में सागौन, शीशम, आम, बांस, नीम, इमली आदि के वृक्ष पाए जाते हैं।

(iii) शुष्क पतझड़ी वन – ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव यहाँ अधिक समय तक रहता है तथा इस ऋतु में इन वन क्षेत्रों में हरीतिमा नहीं होती है। यहाँ पतझड़ी वन झाड़ियाँ तथा कांटेदार पत्तियाँ होती हैं। कुछ वृक्ष सूखने से पहले पत्तियाँ गिरा देते हैं।

(iv) शीतोष्ण वर्षा वन – शीतोष्ण शंकुधारी वन विश्व के शीतोष्ण क्षेत्रों में पाए जाने वाले वन हैं। इन क्षेत्रों में ग्रीष्म ऋतु गरम तथा शीत ऋतु ठंडी होती है तथा पर्याप्त वर्षा होती है, जिससे वन जीवित रह पाते हैं। अधिकांश शीतोष्ण शंकुधारी वन सदाबहार होते हैं, परंतु कुछ वन शंकुधारी और चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार या पर्णपाती वनों के मिश्रण होते हैं। शंकुधारी वन अमेरिका, यूरोप, कनाडा तथा एशिया में पाए जाते हैं।

(v) शीतोष्ण पतझड़ी वन – इन वनों का तापमान सामान्य रहता है तथा ग्रीष्म ऋतु लंबी और शीत ऋतु सामान्य होती है। यहाँ वर्षा होती रहती है। सामान्यतः यहाँ पॉपलर, ओक आदि के वृक्ष पाए जाते हैं।

(vi) सदाबहार शंकुधारी वन – इस प्रकार के वन आर्कटिक टुंड्रा के दक्षिणी भाग में होते हैं। इन क्षेत्रों में शीत ऋतु लंबी तथा शुष्क और ग्रीष्म ऋतु छोटी होती है। सूरज की रोशनी अल्प समय के लिए ही उपलब्ध होती है। मुख्यतः यहाँ चीड़, देवदार आदि के वृक्ष होते हैं, जिनके पत्ते नुकीले तथा चिकने होते हैं।

3.7.2 चरागाही परितंत्र

चरागाह अथवा घास स्थल ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ वर्षा प्रायः कम होती है। इन घास स्थलों में घास प्रमुखता से पाई जाती है, परंतु कहीं-कहीं पर वृक्ष व छोटी झाड़ियाँ भी होती हैं। पृथ्वी पर लगभग 24% वनस्पति घास स्थलों के रूप में पाई जाती है। अपर्याप्त वर्षा के कारण इन क्षेत्रों में पेड़ व झाड़ी बहुतायत में नहीं उग सकते, परंतु इतनी वर्षा मानसून में घास के आवरण को पैदा करने के लिए पर्याप्त होती है। उष्ण कटिबंधों में पाई जाने वाली घासों को सवाना कहते हैं। शीतोष्ण कटिबंधों में मध्य अक्षांश विस्तृत लंबी घासों को स्टेपी कहा जाता है।

सवाना – इन घासों का विस्तार उष्ण कटिबंधीय वनों के निकटवर्ती क्षेत्रों में होता है। आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग, सूडान, कोलंबिया, वेनेजुएला, ओरीनिका नदी की घाटी एवं ब्राजील के दक्षिणी भू-भाग सवाना घास क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में वर्षा कम से मध्यम होती है। सवाना घासों की लंबाई 15 फीट तक होती है। इन घासों के बीच छोटी पत्तियों वाले कांटेदार छतरीनुमा वृक्ष पाए जाते हैं। सवाना घासें शीत, शरद एवं वसंत ऋतुओं में सूख जाती है। शुष्क मौसम में अक्सर आग लग जाती है। ये घास पशुओं के खाने योग्य नहीं होती। पत्तियों में तेज धार होने के कारण जीभ काट लेती है तथा यहाँ दीमक प्रमुखता से पाई जाती है।

प्रेयरी – यह उत्तरी अमेरिका का विशाल घास का मैदान है। इसका अधिकतर भाग संयुक्त राज्य में सीमित है। इसका उत्तरी भाग कनाडा में है। अर्जेंटीना में 64⁰ पश्चिमी देशांतर से पूरब की ओर समुद्र तट तक यूरेशिया में हंबरी-रुमानिया-यूक्रेन से होता हुआ दक्षिणी भागों में तथा पश्चिमी चीन के कतिपय क्षेत्रों में पाया जाता है। प्रेयरी घास का विस्तार मध्य अक्षांशों में मिलता है। ये घास क्षेत्र सामान्यतः समतल अथवा हल्के ढलान वाले होते हैं। प्रेयरी घासें संघन एवं मुलायम होती है तथा इनके मध्य वृक्ष नहीं पाये जाते। इनकी ऊँचाई 5-10 फीट तक होती है। अधिक चराई व गर्मियों में लगने वाली आग झाड़ियों और छोटे पेड़ों को उगने नहीं देते है। यहाँ की मृदा उपजाऊ है जिसके कारण कृषि के लिये इन घास-भूमियों को काटा जा रहा है।

स्टेपी घास– इन घास भूमियों का विस्तार अर्द्धशुष्क पश्चिमी एशिया, संयुक्त राज्य अमेरिका, चीन, मंगोलिया तथा दक्षिणी पूर्वी ऑस्ट्रेलिया में पाया जाता है। एशिया के शंकुधारी अथवा टैगा वनों के दक्षिण तथा मरुस्थलों के उत्तर में स्टेपी घासें उगती है, जिनकी ऊँचाई 1-3 फीट तक होती है। इन घासों के मध्य में पेड़ नहीं मिलते हैं। इस प्रकार की घास सवाना तथा प्रेयरी के अल्प वर्षा वाले शुष्क क्षेत्रों में भी पाई जाती है। ये घासें छोटी होती है तथा इनकी जड़े गहरी नहीं होती हैं।

3.7.3 मरुस्थलीय पारितंत्र

ये पारिस्थितिकी तंत्र उन क्षेत्रों में पाए जाते हैं जहाँ पर वर्ष 25 सेंटीमीटर से भी कम होती है। इन स्थानों में सतही जल की कमी तथा मृदा में नमी व जैविक तत्वों का अभाव होता है। मरुस्थलीय पारिस्थितिकी तंत्र में भौगोलिक दृष्टि से विभिन्नताएँ होती हैं। इन मरुभूमि में जैव विविधता न्यूनतम होती है तथा अकालरोधी क्षमता वाले पाये जाते हैं। यहाँ वायुमण्डल शुष्क रहता है। दिन के समय तापमान अधिक और रात के समय कम होता है। इन स्थानों पर कटिली झाड़ियाँ, छोटे-छोटे पेड़ तथा विभिन्न प्रकार की घासें पाई जाती हैं। विश्व में लगभग 1/3 भू भाग मरुस्थल है। मरुस्थलीय जीवों की त्वचा मोटी खुरदरी होती है जो जल संरक्षण में सहायता होती है। सामान्यतः जीव बिलों में रहते हैं। मरुस्थलीय मृदा पोषक तत्वों से युक्त है परन्तु जल के अभाव से ग्रसित है। इन क्षेत्रों के पत्ते संकुचित या कंटिले होते हैं जो जल संरक्षण में सहायक होते हैं। कुछ पौधों के पत्तों पर मोम की परत होती है जो वाष्पोत्सर्जन की दर कम करने में सहायक होते हैं। अधिकतर वृक्ष चपटे तने वाले एवं लंबी जड़ों वाले होते हैं ताकि वे जल प्राप्त कर सकें। मरुस्थल दो प्रकार के होते हैं।

उष्ण मरुस्थलीय वनस्पतियाँ – यहाँ पर पायी जाने वनस्पतियाँ काँटों युक्त, मोटी पत्ती वाली, मोटी छाल तथा लंबी जड़ों वाली होती हैं। उत्तरी अमेरिका के उष्ण मरुस्थलों में सेजब्रुश, नागफनी, क्रियोसोट उगते हैं। एशिया में सक्साल, आस्ट्रेलिया में यूकेलिप्टस तथा अफ्रीका में एकेशिया के मरुद्विभेद हैं जिनकी ऊँचाई 2 फीट से 20 फीट तक होती है। मरुभूमि के मध्य में बेर, बबूल, खेजड़ी जैसे कटिले पेड़ पाये जाते हैं तथा जहाँ स्त्रोत है, वहाँ ताड़-खजूर के वृक्ष होते हैं।

टुंड्रा शीत मरुस्थलीय वनस्पति– ध्रुवीय क्षेत्र के रेगिस्तान ठण्डे होते हैं। यहाँ पूरे वर्ष तापमान शून्य डिग्री सेल्सियस से कम रहता है तथा धरती की सतह पर सदैव बर्फ की चादर सी बिछी रहती है। यहाँ वर्षा नगण्य होती है। ग्रीष्मकाल अल्पकाल का होता है। इस क्षेत्र में मुख्य रूप से बौनी झाड़ियाँ, घास, लाइकेन, काई और दलदली पौधे उगते हैं। विश्व के कुछ टुंड्रा प्रदेशों में छितरे हुए वृक्ष भी पाये जाते हैं। टुंड्रा प्रदेश में उगने वाले वृक्षों की बढ़ोत्तरी कम तापमान व अपेक्षाकृत छोटे मौसम के कारण प्रभावित होती है। ग्रीष्मकाल के प्रारम्भ होते ही बढ़ने वाली घासें उगती हैं जिनमें रंग बिरंगे फूल खिलते हैं। इन वनस्पतियों का जीवन अल्पकाल का होता है तथा ग्रीष्म ऋतु के जाते ही ये वनस्पतियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। इस इलाके में रेनडीयर, ध्रुवीय भालू, लोमड़ी, कैरिबो, मस्क बैल तथा खरगोश आदि स्थानीय जीव पाये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु में अनेक प्रकार के पक्षी भी यहाँ पाये जाते हैं।

3.7.4 जलीय पारिस्थितिकी तंत्र

जलीय पारिस्थितिकी-तंत्र में पौधे और प्राणी जल में रहते हैं। जलीय पारिस्थितिक तंत्र जल के गुणों जैसे पानी की किस्म जिसमें उसकी स्वच्छता, खारापन, ऑक्सीजन की मात्रा और प्रवाह की दर सम्मिलित है, इसके आधार पर इनको दो वर्गों में स्वच्छ जल पारिस्थितिकी तथा महासागरीय जल पारिस्थितिकी में विभाजित किया जाता है। स्वच्छ जल एवं महासागरीय जल की गुणवत्ता में अंतर होता है। समुद्री पारितंत्र खारे होते हैं तथा समुद्री तल में लवण की मात्रा 0.5 प्रतिशत से भी कम होती है।

जलीय पारिस्थितिकी तंत्रों के प्रकार

1. तालाब का पारिस्थितिकी तंत्र – तालाब एक छोटा एवं स्थिर जलीय पारिस्थितिकी तंत्र है। तालाब के दो प्रकार हैं, एक अस्थायी तालाब तथा स्थायी बड़ा तालाब। अस्थायी तालाब में जल केवल वर्षा ऋतु में होता है जबकि स्थायी तालाब में जल साल भर रहता है। वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद अधिकांश तालाब सुख जाते हैं तथा स्थलीय पौधों से ढक जाते हैं। वर्षा ऋतु के आरम्भ के बाद जब तालाब पानी से भरने लगते हैं तो इनमें अनेक प्रकार के काई, जलीय पौधे, सुष्म प्राणी, पानी के कीड़े, घोंघे, केंचुएँ आदि तालाब की तली से, जहाँ वे सूखे के दिनों में सोये पड़े रहते हैं, बाहर आ जाते हैं। जलीय वनस्पति में तालाब किनारे के जड़दार पौधे भी शामिल होते हैं जिनकी जड़े पानी के नीचे कीचड़ वाले स्थान में होती हैं वर्षाकाल में तालाब में पानी भरने के साथ ही बहुत सी खादय-श्रृंखलाएँ पैदा होती हैं जैसे सूक्ष्म प्राणियों को छोटी मछलियाँ खाती हैं और छोटी मछलियों को बड़ी मछलियाँ अपना आहार बनाती हैं। बड़ी मछलियों को किंगफिशर, बगुले आदि खाते हैं। जल के सूक्ष्म जीव पशुओं के मल तथा मृत पौधों व पशुओं पर निर्भर होते हैं। सूक्ष्म जीवों की क्रिया से मृत पदार्थ पोषक तत्वों में विघटित हो जाते हैं जिनको जलीय पौधे ले लेते हैं। इस प्रकार से तालाब का पोषक चक्र पूर्ण हो जाता है। अस्थायी तालाब वर्षा ऋतु की समाप्ति के बाद अपनी पूर्व अवस्था में आ जाते हैं। मानव गतिविधियों जैसे तालाब में कपड़े धोना, पशुओं को नहलाना, विषाक्त रसायनों का निस्तारण जल में करना आदि द्वारा तालाब का पानी प्रदूषित होता है।

2. नदी नालों के पारितंत्र – नदियों तथा नालों का जन्म जल वर्षण से होता है, जिनमें समस्त जीवनरूप बहते जल के आसपास प्रवाह के अनुरूप ढले होते हैं। नालों में पाये जाने वाले जीवों को जल धाराओं के तीव्र दबाव को सहना पड़ता है परन्तु कुछ पौधे व बिल बनाने वाले प्राणी पहाड़ी नालों के तेज प्रवाह को भी झेल सकते हैं। नदियाँ पहाड़ी क्षेत्रों तक पहुँचती हैं जो अंततः समुद्र में मिल जाता है। जो स्थान नदियों का उद्गम स्थल होता है उस जगह नदी का जल स्वच्छ, शीतल एवं तेज वेग से बहता है। इसमें विचलित आक्सीजन भी अधिक मात्रा में होता है। मछलियों की महशीर जैसी कुछ प्रजातियाँ प्रजनन के लिये नदियों से ऊपर चढ़कर पहाड़ी नालों में चली जाती हैं। प्रजनन को समर्थ बनाने के लिये उन्हें दर्पण जैसे स्वच्छ पानी की आवश्यक होती है। नदी-नालों के पौधों और प्राणियों के समुदाय उनमें बहने वाले पानी की स्वच्छता, प्रवाह, आक्सीजन की मात्रा तथा तलहटी की प्रकृति पर निर्भर होते हैं। नदी-नालों के जल की प्राकृतिक गुणवत्ता प्रदूषित औद्योगिक, नागरीय एवं कृषि अपशिष्टों के कारण नष्ट होते हैं।

3. झील पारिस्थितिक तंत्र – झील ताजा जल का विशाल एवं स्थिर स्रोत है। झील के परितंत्र को सूर्य से ऊर्जा मिलती है। इसके उथले क्षेत्र को उथला तटीय अनुक्षेत्र खुले क्षेत्र जहाँ सूर्य की रोशनी आसानी से पहुँचती है – खुला प्रकाशीय अनुक्षेत्र तथा गहरे क्षेत्र जहाँ सूर्य का प्रकाश उपलब्ध नहीं है, नितल अनुक्षेत्र कहते हैं। झीलों में वास करने वाले शैवालों को सूर्य द्वारा ऊर्जा मिलती है तथा यह ऊर्जा शैवालों को खाने वाले सूक्ष्म प्राणियों को चली जाती है। इस प्रकार यह ऊर्जा शाकभक्षियों और मांसभक्षियों को स्थानान्तरित होती है।

4. समुद्र-खाड़ी – पृथ्वी का लगभग 71 प्रतिशत भाग जलमग्न है। यह समुद्रीय पारिस्थितिकी तंत्र के रूप में है। शुद्ध जल की तुलना में समुद्रीय जल अधिक स्थाई है। इसकी गहराई 4000 से 6000 मीटर तक हैं। हिन्द महासागर, अरब सागर और बंगाल की खाड़ी प्रायद्वीपीय भारत के समुद्री पारितंत्र हैं। इस पारितंत्र के उत्पादक सूक्ष्म शैवालों से लेकर बड़े समुद्री पतवार तक होते हैं। इनमें लाखों प्राणी प्लवक होते हैं, जिनको मछलियाँ, कछुए और समुद्री स्तनपायी जीव खाते हैं। जीव जंतु एवं वनस्पतियों का विकास सागरीय जल में जल विस्तार, तापमान, गतिशीलता एवं लवणता के आधार पर होता है। समुद्र की ऊपरी सह प्रकाशित मण्डल होता है जो 200 मीटर की गहराई तक पाया जाता है तथा इस भाग में जल जीव प्रचुर मात्रा में वास करते हैं। अप्रकाशित मण्डल सागर के 200 मीटर से अधिक गहरे भाग को कहते हैं, जिसमें निवास करने वाले जीवों को नेक्टन कहते हैं। समुद्र की तलहटी में रहने वाले जीवों को बेन्थस कहा जाता है। मनुष्य के लिए महासागर भोजन, सागरीय उत्पाद, औषधि, खनिज लवण जैसे मैग्नीशियम, फॉस्फोरस, जीवाश्म-ईंधन, प्राकृतिक गैस इत्यादि के मुख्य स्रोत हैं।

प्रश्न :

1. पारिस्थितिकी तंत्र में ऊर्जा के प्रवाह को स्पष्ट करें?
2. जलीय चक्र का वर्णन करें?
3. पारितंत्र को परिभाषित करें और खाद्य जाल एवं खाद्य श्रृंखला में अंतर स्पष्ट करें?
4. पारिस्थितिक वंशक्रम को विस्तार में समझाएँ।
5. पारितंत्रीय पिरामिड किसे कहते हैं? पारितंत्रीय पिरामिड के प्रकारों का वर्णन करें?

इकाई – 4

जैव विविधता और उसका संरक्षण

- 4.1 परिचय, परिभाषा, आनुवांशिकी, प्रजातीय और पारितंत्रीय विविधता
- 4.2 भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण
- 4.3 जैव विविधता का मूल्य: उपभोग मूल्य, उत्पादक मूल्य, सामाजिक एवं नैतिक मूल्य, सौंदर्यात्मक एवं वैकल्पिक मूल्य
- 4.4 वैश्विक राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तरों पर जैव विविधता
- 4.5 विराट विविधता वाले राष्ट्र के रूप में भारत
- 4.6 जैव विविधता के मुख्यस्थल
- 4.7 जैव विविधता को खतरा, आवास क्षति, वन्य प्राणियों का शिकार एवं मानव वन्य जीवन टकराव
- 4.8 भारत की संकटग्रस्त एवं स्थानीय जातियाँ
- 4.9 जैव विविधता का संरक्षण यथास्थल एवं बहिःस्थल

4.1 परिचय, परिभाषा, आनुवांशिकी, प्रजातीय और पारितंत्रीय विविधता

4.1.1 परिचय

पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी जीव-जंतु और वनस्पति पर्यावरण के एक अभिन्न अंग हैं। यह एक-दूसरे से अंतर्सम्बन्धित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार जैविक और अजैविक तत्वों से मिलकर पर्यावरण का निर्माण होता है। इस पर्यावरण के अंतर्गत जीव-जंतु और वनस्पतियों की विभिन्न प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

किसी प्राकृतिक प्रदेश में पाई जाने वाली जंगली तथा पालतू जीव-जंतुओं एवं पादपों की प्रजातियों की विभिन्नता को जैव-विविधता कहते हैं। अतीत के करोड़ों वर्षों के दौरान अनवरत सक्रिय रहने वाली विकास की जैविक प्रक्रिया की देन जैव-विविधता है। जैव-विविधता जीवन का आधार है एवं यही पर्यावरण में समय के साथ होने वाले परिवर्तनों के विरुद्ध लड़ने के लिए जैविक पदार्थ उपलब्ध कराने में सक्षम होती है। ऊष्ण कटिबंध वन इस कथन के सच्चे उदाहरण हैं। पेड़-पौधों में भी पैरनकाइमा, स्केलेरनकाइमा, जाइलम व फ्लोयम में विभिन्न कोशिकाओं का मिलना इस बात को सिद्ध करता है कि जीवन का आधार विविधता है। तभी तो ये न केवल समस्त उपापचयी क्रियाओं का सफल संपादन करते हैं, अपितु बदलते पर्यावरण में अपने आप को अनुकूल सिद्ध करने में भी सक्षम हैं। जैव-विविधता शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम प्रसिद्ध कीट वैज्ञानिक विल्सन ने 1986 में जैविक विविधता पर अमेरिकन फोरम के लिए प्रस्तुत प्रतिवेदन में किया। उन्होंने राष्ट्रीय संसाधन परिषद को जैविक विविधता शब्द का सुझाव दिया। तभी से यह शब्द एक संकल्पना के रूप में जैव-वैज्ञानिकों, पर्यावरणविदों, राजनीतिज्ञों आदि द्वारा विस्तृत रूप से अपनाया गया।

4.1.2 उद्देश्य

जैव विविधता से तात्पर्य विस्तृत रूप से उन विभिन्न प्रकार के जीव-जंतु और वनस्पति से है जो संसार में या किसी विशेष क्षेत्र में एक साथ रहते हैं। जैव विविधता की समरसता को बनाए रखना हमारे लिए महत्वपूर्ण है कि हम अपनी धरती की पर्यावरण सम्बन्धित स्थिति के तालमेल को बनाए रखें। जैव-विविधता का सम्बन्ध, जिसे हम जैविक विविधता भी कह सकते हैं, मुख्य रूप से अलग-अलग तरह के पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों का धरती पर एक साथ अपने अस्तित्व को बनाए रखने से है। यह बहुत ही जरूरी है कि ऊँचे स्तर की जैव विविधता को बनाए रखने के लिए हम अपने प्राकृतिक परिवेश की अवस्था सही तरीके से बनाए रखें। जैव संरक्षण, प्रजातियाँ, उनके प्राकृतिक वास और पारिस्थितिक तंत्र को विलोपन से बचाने के उद्देश्य से प्रकृति और पृथ्वी की जैव विविधता के स्तरों का

वैज्ञानिक अध्ययन है। यह विज्ञान, अर्थशास्त्र और प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन के व्यवहार से आहरित अंतर नियंत्रित विषय है।

4.1.3 जैव विविधता वर्गीकरण

जैव विविधता एक प्रमुख प्राकृतिक संसाधन है जो हमें जीवन सुरक्षा प्रदान करता है। इस पृथ्वी ग्रह पर पाए जाने वाले विविध प्रकार के जीवों जैसे सूक्ष्मजीवों, वनस्पतियों एवं प्राणियों के सामूहिक समुदाय को जैव विविधता के नाम से जाना जाता है।

जैवविविधता हजारों, लाखों एवं करोड़ों वर्षों के दौरान लगातार चलने वाली विकास की जैविक प्रक्रिया की देन है। इस पृथ्वी पर लगभग 20 लाख जैव प्रजातियाँ उपलब्ध हैं और इनमें से कोई भी ऐसा जीव नहीं है जो प्राकृतिक रूप से बेकार हो। विभिन्न प्रकार के जीवों की अपनी अलग-अलग भूमिका होती है जो प्रकृति को संतुलित रखने तथा पृथ्वी को जीवंत बनाए रखने में अपना योगदान देते रहे हैं। सूक्ष्मजीवों जैसे विषाणु, जीवाणु, कवक तथा अन्य सूक्ष्म प्रजातियों का उतना ही महत्व है जितना बड़ी-बड़ी प्रजातियों एवं वनस्पतियों का। विविध प्रकार के जीवों के कारण ही पृथ्वी पर जीवन है जिसमें सभी प्रकार के जीवों का अपना विशिष्ट योगदान है।

(1) अनुवांशिक विविधता:

इसके अंतर्गत जीवों की कोशिकाओं में उपस्थित जीनों, जो कि जीव की जाति, प्रजाति, गुण, प्रकृति व संरचना का निर्धारण करते हैं, में विविधता का अध्ययन किया जाता है। विश्व में विभिन्न प्रजातियाँ हैं प्रत्येक जाति में जीन सम्बन्धी भिन्नता है। किसी भी लक्षण में उपस्थित विविधता का वह भाग जो कि अनुवांशिक विविधता कहलाता है। अनुवांशिक विविधता—केन्द्र की जीनों, क्रोमोसोम विपथनों एवं द्रव्यजीनों के कारण उत्पन्न होती है। आनुवांशिक विविधता जैव-विविधता के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान प्रस्तुत कर रही है। जीव समूहों और पारिस्थितिकी व्यवस्था में जब परिवर्तन होने लगता है, तब आनुवांशिक विविधता एक ऐसी क्षमता उत्पन्न करती है जिससे जैव-विविधता पुनः अपना मौलिक रूप धारण कर लेती है। कभी-कभी एक समूह के अनेक महत्वपूर्ण जीन प्राकृतिक घटनाओं अथवा अन्य कारणों से नष्ट हो जाते हैं। ऐसी दशा में बचे जीन अपने समूह को पुनः जीवित कर देते हैं।



चित्र संख्या ४.१ पारिस्थिकी विविधता

(2) प्रजाति विविधता:

प्रजाति विविधता के अंतर्गत प्रजातियों की विविधता का अध्ययन किया जाता है। विश्व में जीवों की अनेक प्रजातियाँ हैं जो अपने-अपने वातावरण के लिए विशिष्ट प्रकार से अनुकूलित होती हैं एवं अलग-अलग वातावरण में इनकी भूमिकाएँ भी अलग-अलग होती हैं। इन सभी प्रजातियों के अध्ययन द्वारा हम उन जीवों के अनुवांशिकी संगठन के रहस्यों को समझ सकते हैं। जीवित प्राणियों में विविधता विद्यमान है, जिसे प्रजाति विविधता कहा जाता है। भू-तल पर प्रजाति विविधता समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में विविधता समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में विविधता अधिक तथा कुछ में कम है। भूमध्य रेखीय प्रदेश में प्रजाति विविधता अन्य भौगोलिक प्रदेशों की अपेक्षा अधिक है। प्रजाति विविधता जीव समुदायों की कार्यप्रणाली के सुचारु रूप से संचालन तथा सामुदायिक स्तर से गुणों के विकास के लिए नितान्त आवश्यक है। प्रजाति विविधता के मूल्यकांन एवं सूचकांक के लिए इनकी संख्या, बहुलता, विविधता आदि पर ध्यान दिया जाता है। इन्हीं के आधार पर किसी क्षेत्र विशेष को प्रजाति विविधता से समृद्ध अथवा विपिन्न माना जाता है। भारत का मानसूनी प्रदेश प्रजाति विविधता की दृष्टि से समृद्ध है। इसके अलावा अनेक नदी घाटियाँ जैव-विविधता की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। बर्फीय तथा मरु प्रदेश जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यन्त निर्बल हैं।



चित्र संख्या ४.२ प्रजाति विविधता

(3) पारिस्थितिकी विविधता:

पारिस्थितिकी विविधता के अंतर्गत पृथ्वी पर पाए जाने वाले विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्रों का अध्ययन किया जाता है। प्रत्येक पारिस्थितिकी तंत्र में विशिष्ट प्रकार के जीवों का संगठन पाया जाता है एवं यह जीवों का संगठन ही उस पारिस्थितिकी तंत्र की संरचना का निर्धारण करता है।



चित्र संख्या ४.३ आनुवंशिक विविधता

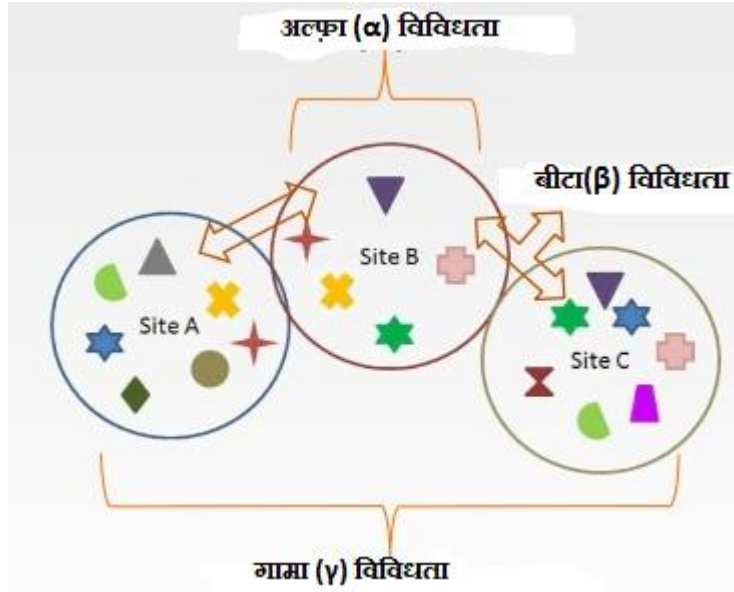
4.2 भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण

भारत में पर्याप्त प्राकृतिक संसाधनों और घनी जैव विविधता पाई जाती है। विश्व के सर्वाधिक जैव विविधता वाले 12 देशों में, जिनमें दुनिया की 60–70 प्रतिशत जैव विविधता मौजूद है, जिनमें भारत की भी गिनती होती है। प्राकृतिक वास, पारिस्थिति प्रणाली के प्रकार, प्रक्रियाओं के मध्य अंतर आदि को पारिस्थितिकी विविधता के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। प्रत्येक पारिस्थितिकी प्रणाली में ऊर्जा प्रवाह एवं जल-चक्र की पृथक-पृथक पद्धतियाँ होती हैं। फलस्वरूप विभिन्न क्षेत्र में भिन्न-भिन्न जैव-विविधता उत्पन्न होती है। जलीय एवं स्थलीय, ऊष्ण एवं ऊष्णार्द्र, शुष्क अथवा शीत प्रदेशों में आहार-श्रृंखला समान नहीं है। ऊर्जा प्रवाह में भिन्नता परिलक्षित होती है। इसका प्रभाव जैव-विविधता पर पड़ता है।

सभी स्तर एक जटिल जाल के घटक हैं। निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण जैव-विविधता स्तर हैं भारत एक बहुत बड़ा जैव विविधता वाला देश है, जहाँ पूरे विश्व की लगभग 10 से 15 प्रतिशत जीव-जंतुओं की प्रजातियाँ रहती हैं। भारत के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु एवं वायुमंडल है इसलिए भारत देश एक वृहद विविधता अर्थात् मेगा डाईवर्सिटी वाला देश के रूप में जाना जाता है। जैव-विविधता के मानचित्रीकरण के परिपेक्ष्य में प्रथम प्रयास ब्रिटेन के पॉल विलियम्स, क्रिस हम्फ्रिज तथा डिकवेन राइट के संयुक्त प्रयास के द्वारा 'वर्ल्ड मैप' नामक सॉफ्टवेयर विकसित किया। जिसकी सहायता से न केवल जैव-विविधता से संदर्भित किसी क्षेत्र विशेष का मानचित्रीकरण, अपितु प्रजातियों के पारिवारिक इतिहास की व्याख्या भी की जा सकती है। जैव-विविधता के सापेक्ष अध्ययन में मानचित्रीकरण की महती आवश्यकता होती है जैव-विविधता के मापन की अधोलिखित तीन विधियाँ हैं यथा—

1. **अल्फा विविधता:** किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित प्रजातियाँ की कुल संख्या को अल्फा विविधता की संज्ञा से अभिहित किया जाता है यह विभिन्न क्षेत्रों में जैव विविधता के तुलनात्मक अध्ययन में सहायक होता है।

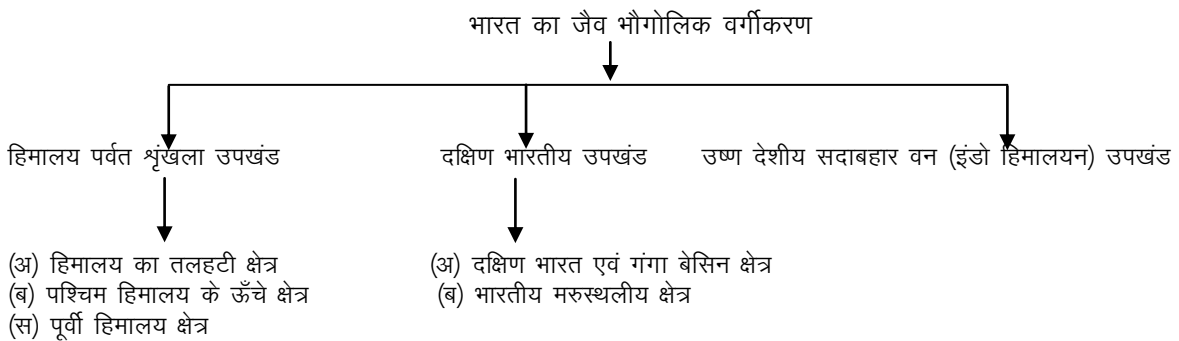
2. **बीटा विविधता:** किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित प्रजातियाँ की संरचनात्मक विविधता को बीटा विविधता की उपमा प्रदान की जाती है।
3. **गामा विविधता:** किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित विविध प्रजातियों के मध्य अन्तः सम्बन्ध का ज्ञान गामा विविधता कहलाता है। यह भौगोलिक कारको पर निर्भर करता है।



चित्र संख्या ४.४

प्राणी भूगोल के अनुसार भारत के जैव भौगोलिक क्षेत्रों का वर्गीकरण इस प्रकार है—

1. हिमालय पर्वत श्रृंखला उपखंड
2. दक्षिण भारतीय उपखंड
3. उष्ण देशीय सदाबहार वन (इंडो हिमालयन) उपखंड



1. हिमालय पर्वत श्रृंखला उपखंड:

इस उपखंड में हिमालय के क्षेत्र में पाए जाने वाले वन्य जीव आते हैं।

(अ) हिमालय का तलहटी क्षेत्र (हिमालयन फुट हिल्स):

इसमें तराई, भाभर तथा शिवालिक पर्वत माला आती है। इस क्षेत्र के अंतर्गत मुख्य वृक्ष ढाक, शीशम, जामुन, आम, कटहल, शहतूत, साल, कदम, आदि वृक्ष मिलते हैं।

इसके अंतर्गत मुख्य वन्य जीव हाथी, सांभर, हिरण, बारहसिंगा, चीतल, गैंडा, जंगली भैंसा, शेर, बघेरा, जंगली कुत्ते, सियार, सुअर, छोटा सुअर, भालू, आसामी खरगोश, सुनहरा लंगूर, घड़ियाल, मगर, अजगर एवं अनेक पक्षी हैं।

(ब) पश्चिमी हिमालय के ऊँचे क्षेत्र (कश्मीर, पश्चिमी लद्दाख से कुमाऊँ):

शंकुधारी वन यहां की विशेषता है, जिनमें बुरांश, बौने पर्वतीय बांस भी उगते हैं। ठंडा रेगिस्तान भी इसमें सम्मिलित है। इस क्षेत्र में 1500 मीटर की ऊँचाई तक ढाक, शीशम, जामुन, आम, कटहल, शहतूत, साल, कदम, आदि वृक्ष, 1500–3500 मीटर की ऊँचाई तक कोणधारी वृक्ष चीड़, फर, स्पूस व देवदार वृक्ष मिलते हैं। 3500–4500 मीटर की ऊँचाई तक पर्च, सिल्वर, फर्न, चीड़, आदि वृक्ष मिलते हैं और ऊँचाई तक मात्र एल्पाइन घास ही मिलती है।

इसके मुख्य वन प्राणियों में जंगली तिब्बती गधा, याक, जंगली बकरी प्रजाति तथा भेड़ा प्रजाति तिब्बती गेजल, हंगुल, कस्तूरी मृग, मारमोट, उड़न गिलहरी, पीका, बर्फानी, बघेरा, भेड़िया, लोमड़ी, पलास बिल्ली, रीछ, लाल रीछ, पक्षियों में लेमरगीयर, ग्रिफन वलचर, गोल्डन ईगल, बनकौआ एवं अनेक सुंदर फीजेंट्स जैसे मोनाल, चीर, खलीज, कोकलाज, वेस्टर्न ट्रेगोपान, सटायर ट्रेगोपान, आदि हैं।

(स) पूर्वी हिमालय क्षेत्र:

यहां पश्चिमी हिमालय के मुकाबले बर्फ, कम ही गिरती है। पूर्वी हिमालय के मैदानी क्षेत्रों में शहतूत, साल, सिनेमोमन, सेमल तथा पूर्वी हिमालय के शीतोष्ण कटिबंधीय पट्टी (1800–3600 मीटर) में ढलानों पर चीड़, ओक, पर्च, मेपल, लौरज, मंगनोलिया, देवदार चीड़ व फर् की विभिन्न प्रजातियाँ, आदि वृक्षों के साथ ही एल्पाइन वनखंड (3600–4800 मीटर ऊँचाई) में शंकुधारी वन जिसके अंतर्गत फर्, सिल्वर फर्, भोजपत्र पाईन जैसे वृक्ष मिलते हैं।

यहाँ के प्राणी इंडोचाईनीज खंड से मिलते हैं यथा वाह, बालासूर, फेरट बेजर, शीर्षहीन सेही आदि। इसके अतिरिक्त गोट एंटीलोप में सराव, गोरल तथा ताकिन यहां के विशिष्ट वन्य प्राणी हैं।

2. दक्षिण भारतीय उपखंड:

इस उपखंड में गंगा बेसिन क्षेत्र और थार रेगिस्तान के क्षेत्र में सम्मिलित हैं।

(अ) दक्षिण भारत एवं गंगा बेसिन क्षेत्र:

इसके अंतर्गत हरे-भरे वनों से लेकर शुष्क कटिकीय वनों की विभिन्नता पाई जाती है। इस क्षेत्र के अंतर्गत पतझड़ मानसूनी वन जिसमें साल, सागवान, शीशम, चंदन, बबूल जैसे वृक्ष मिलते हैं। इसी के साथ गंगा के तटीय मैदान के पश्चिमी भाग में पतझड़ वन मिलते हैं जिसके अंतर्गत जामुन, साल, आम, शहतूत व शीशम जैसे वृक्ष पाए जाते हैं। गंगा के मैदान के पूर्वी भाग में सदाबहार वन मिलते हैं, जिसमें कटहल, आम, ताड़, सुपारी, अंजीर जैसे वृक्ष पाए जाते हैं। गंगा के डेल्टीय भाग में सुंदर वन मिलते हैं, जिसके अंतर्गत बांस, सुपारी, रोजीफेरा व केवड़ा जैसे वृक्ष मिलते हैं।

नदी के पश्चिम में वन्य जीव बाहुलता से पाए जाते हैं, जिनमें हाथी, सुअर, सांभर, चीतल, पारा, बारहसिंगा, काकर, काला हिरन, चिंकारा, नीलगाय, ढोल, शेर, बघेरा, बिल्ली, गीदड़, भालू, मगरमच्छ बोडावन, सफेद सासर प्रजाति मिलती हैं।

(ब) भारतीय मरुस्थल (थार रेगिस्तान):

इसमें कच्छ सौराष्ट्र भी सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र के अन्तर्गत मुख्य वनस्पति कटीली झाड़ियां व मरुस्थलीय वनस्पति मिलती है। बबूल कीकर, खेजड़ी, बैर, थुहर, कैर, आंवला, रोहिड़ा आदि मुख्य रूप हैं।

इस क्षेत्र में पाये जाने वाले विशिष्ट वन्य प्राणियों में जंगली गधा, हिरन, चिंकारा, नीलगाय, बघेरा, भेड़िया, गोदह, रेगिस्थान बिल्ली, सियागोश, रेगिस्थानी लोमड़ी, झाऊ चूहा, रेगिस्थानी चूहा, सांड, गोह बामनी (स्किंक), रेगिस्थानी छिपकली, फूरसा सांप, पक्षियों में गोड़ावन, तिलोर, मोर, हाक, तथा कच्छ में हंसावर, आदि पाये जाते हैं।

3. ऊष्णदेशीय सदाबहार वन:

घनी वर्षा वाले उत्तरी पूर्वी भारत, पश्चिमी घाट, नीलगिरी पर्वत इसमें शामिल है, जिनमें गगनचुम्बी तथा भीमकाय वृक्ष मिलते हैं। यहां के विशिष्ट प्राणी हैं नीलगिरी तारह, नीलगिरी मारटेन, उदबिलास आदि। इसमें वृक्ष

वासी पशुओं की प्रचुरता है यथा हुलूक, सुनहरी लंगूर कैप्ट, लंगूर नीलगिरी, लंगूर, आसामी बंदर, नागाहिल बंदर, पूछ विहिन बंदर, सियाह बंदर, शर्मिली बिल्ली, चमगादड़, कटट्स, मलाबार सिविट, लकारी, यंग, कर्नाट, उड़न गिलहरी, अन्य वन्य जीवों में भूरा नेवला, सरे कीरी, नॉकदार चूहा (स्पाइनी फील्ड माऊस) आदि उल्लेखनीय हैं।

इसके साथ ही अंडमान निकोबार द्वीपों के वन्य प्राणियों में विशेष रूप में अंडमानी सूअर, केकड़ा भक्षी बंदर, समुद्री स्तनपाई जीवों में डूगोंग, डोलफिन, किलर ह्वेल, पक्षियों में अंडमानी धनेश, निकोबार कबूतर, मेगापोडद्व समुद्री उकाव, बबीला, सरी सर्प में मगरमच्छ, जलीय ध्वेलीडसीइंगल, बबीला, जलीय गोह, हरी छिपकली, सांप, निकोबारी अजगर, हरा कछुआ आदि तथा अपृष्ठवंशी में डाकू केकड़ा, (रोबर क्रेब या काकोनट क्रेब) प्रकृति के उल्लेख के बिना भारतीय वन्य प्राणियों की सूची अपूर्ण रह जाती है।

4.3 जैव विविधता का मूल्य: उपभोग मूल्य, उत्पादक मूल्य, सामाजिक एवं नैतिक मूल्य, सौंदर्यात्मक एवं वैकल्पिक मूल्य:

प्रकृति, असंख्य भागों से निर्मित एक प्रकार का विशाल जाल है जो संतुलित और सौंदर्यपूर्ण है। पृथ्वी के समस्त प्राणी एक-दूसरे पर आश्रित हैं और मानव इस सुकोमल पारस्परिक सम्बन्धों के इस समन्वित जटिल जाल में मात्र एक कड़ी है, एक धागा है। हर बार जब एक प्रजाति लुप्त होती है, एक धागा टूटता है, व्यवस्था विकृत होती है और मानव स्वयं अपने विनाश की ओर ढकेल दिया जाता है।

भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व० श्रीमती इंदिरा गांधी के शब्द, जो उन्होंने विश्व संरक्षण व्यूह रचना के भारत में उद्घाटन करते समय 6 मार्च 1980 को कहे थे अत्यंत सारगर्भित हैं— “संरक्षण में रुचि भावनात्मक न होकर, एक ऐसे तथ्य को पुनः उजागर करना है जिससे प्राचीन साधु संत भली भांति अवगत थे। भारतीय परंपरा हमें ये सिखाती है कि सभी प्रकार के जीव, मानव, पशु, पक्षी, पादप एक-दूसरे से इस प्रकार गुंथे हुए हैं कि एक कड़ी में व्यवधान, अन्य कड़ियों में असंतुलन पैदा कर देता है। प्रकृति में अनुपम संतुलन है। प्रत्येक छोटी कड़ी का अपना स्थान है, अपना दायित्व है और अपनी उपादेयता है। कोई भी अवरोध, प्रतिक्रियाओं की शृंखला को जन्म देता है जो कुछ समय के लिए भले ही दृष्टिगोचर न हो। जीवन के खंडीय दृष्टिकोण अपनाएने से ही राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ पनपी हैं।” “वसुधैव कुटुंबकम्” की भावना, प्रकृति के इस शाश्वत नियम का पर्याय है।

जैव विविधता का महत्व सिर्फ इसलिए ही नहीं है कि वह पारिस्थितिकी संतुलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है वरन् जैव विविधता द्वारा ही पृथ्वी पर रहने वाला हर प्राणी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है।

भारत में करीब 90 प्रतिशत औषधियाँ पौधों से प्राप्त की जाती हैं, इन पौधों में से अधिकांश का संग्रह किया जाता है। आदिवासी आय और निर्वाह के लिए औषधीय पौधे और अन्य अकाष्ठीय वनोपज पर ही निर्भर है। जैव विविधता खेती के साथ-साथ औद्योगिक और शहरी विकास के लिए भी बेहद महत्वपूर्ण है। प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र प्राकृतिक संसाधनों के विकास और प्रबन्ध को काफी प्रभावित करता है।

4.3.1 जैव विविधता का मूल्य:

जैव विविधता पर्यावरण तथा मानव दोनों के लिए महत्वपूर्ण है। यह हमारे लिए खाद्य पदार्थों, ड्रग्स एवं दवाइयों, सौंदर्यात्मक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ पारिस्थितिकीय दृष्टि से भी लाभदायक है।

जैव-विविधता पारितंत्र में अपना विशेष योगदान देती है। विविधतापूर्ण जैविक समुदाय अपनी स्थिरता को आसानी से कायम रखता है, जबकि कम जातियों वाला पारिस्थितिकीय तंत्र शीघ्रता से पुनः पूरित नहीं हो पाता है। मृदा निर्माण, अपशिष्ट निस्तारण, वायु एवं जल शुद्धिकरण, सौर ऊर्जा का अवशोषण एवं जैव-भूरासायनिक व जलीय चक्रों का प्रबन्ध आदि सभी जैव-विविधता पर निर्भर करते हैं। किंतु विडंबना यह है कि जीवित संसाधनों का विनाश जारी है, जिससे परितंत्र को भारी क्षति पहुंच रही है।

पर्यावरण के अस्तित्व के लिए जैव-विविधता को सुरक्षित रखना नितांत आवश्यक है। किसी एक जाति के नष्ट हो जाने से संपूर्ण पारिस्थितिक तंत्र विक्षुब्ध हो जाता है। वर्तमान समय में मनुष्य जीवों तथा वनस्पतियों को निर्दयता से नष्ट कर रहा है। एक अध्ययन से स्पष्ट है कि लगभग 25,000 पादप प्रजातियाँ विलोप के कगार पर हैं। जैव-विविधता को सुरक्षित रखना मनुष्य का नैतिक दायित्व है क्योंकि वही एक ऐसा प्राणी है जो इसके पर्यावरणीय महत्व को भली भांति समझ सकता है।

पर्यावरण के विकास की प्रक्रिया सतत सक्रिय है। जीव विशेष समाप्त हो जाते हैं परंतु जीव जाति अथवा उनका वर्ग समाप्त नहीं होता है। फलस्वरूप पर्यावरण का अस्तित्व विद्यमान है। यदि जातियों का अस्तित्व समाप्त हो

जाए तो विकास रुक जाएगा। सोले तथा विलकॉक्स ने स्पष्ट किया कि पेड़ पादपों एवं जीवों की नई जातियों का विकास रुकना उनके विलोप से भी अधिक घातक है। मृत्यु होना निश्चित है, किंतु जन्म का समाप्त हो जाना कहीं अधिक अघातकारी है।

4.3.2 उपभोग मूल्य

जैव-विविधता आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उपभोग मूल्य का सीधा तात्पर्य जैव विविधता का सीधा बाजार में ले जाए बिना, वहाँ के स्थानीय लोगों द्वारा उपभोग किया जाता है। हमारे समाज में अनेकों पौधों का सीधा प्रयोग भोजन के रूप में किया जाता है, इसके अतिरिक्त ईंधन के रूप में मनुष्य कई वर्षों से जंगलों एवं वनों पर आश्रित है। वनों से प्राप्त होने वाली लकड़ी जैव विविधता के उपभागी मूल्य का प्रमुख देन है। जैव विविधता से विभिन्न प्रकार से खाद्यान्नों की प्राप्ति होती है। जिससे मानव का भरण-पोषण होता है। जंगली शस्यों के जीन्स जब शस्य जातियों में पहुँचाये जाते हैं तब उनकी उत्पादन एवं रोगरोधन क्षमता में भारी वृद्धि हो जाती है। साथ ही जंगली शस्य अनेक प्रकार के खाद्यान्नों के स्रोत भी है। संसार में 80,000 खाने योग्य पादप जातियाँ हैं जिनमें केवल कुछ की खोज की गयी है। 8 पादप जातियों से मानव आहार का 75 प्रतिशत भाग प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त जैविकीय संसाधनों से अनेक प्रकार की औषधियाँ भी प्राप्त होती हैं। एक सर्वेक्षण में स्पष्ट किया गया है कि विश्व की 50 प्रतिशत औषधियाँ जैविकीय संसाधनों से प्राप्त होती हैं। अनेक प्रकार की वस्तुओं के निर्माण में पशुओं के चर्म एवं अस्थि का प्रयोग किया जाता है। पर्यटन, मनोरंजन एवं विनिर्माण उद्योगों में किसी न किसी रूप में जैविक संसाधनों का उपयोग किया जाता है।

4.3.3 उत्पादक मूल्य

उच्च जैव विविधता भी रोगजनकों के रूप में कुछ बीमारियों के प्रसार को नियंत्रित करता है। जैव विविधता मनुष्यों के लिए भोजन प्रदान करता है। ये व्यवसायिक अर्थात् वाणिज्यिक तरीके से उपलब्ध वस्तुएँ हैं। इनमें विज्ञानियों की खोज करने के लिए जीन का व्यवसाय, विभिन्न जानवरों की खाल, हाथी दांत, चमड़ा, रेशम, ऊन, कपड़ा उद्योग, चमड़ा उद्योग इत्यादि शामिल हैं। यद्यपि हमारे भोजन की आपूर्ति का 80 प्रतिशत संयंत्रों का सिर्फ 20 प्रकार की प्रजातियों से आती है, मानव पौधों और जानवरों के कम से कम 40000 प्रजातियों का एक दिन में उपयोग करते हैं। दुनिया भर के कई लोग उनके भोजन, आवास और कपड़ों के लिए इन प्रजातियों पर निर्भर करते हैं। वहाँ मानव उपभोग के खाद्य उत्पादों की सीमा बढ़ाने के लिए अप्रयुक्त क्षमता उपयुक्त यह है कि उच्च वर्तमान विलुप्त होने की दर को रोका जा सकता है।

4.3.4 सामाजिक एवं नैतिक मूल्य

संरक्षण जीव-विज्ञानी अंतःविषयक शोधकर्ता हैं, जो जीव-विज्ञान और सामाजिक विज्ञान में नैतिकता का आचरण करते हैं। संरक्षणवादी 'चान' का कथन है कि संरक्षणवादियों द्वारा जैव विविधता की पैरवी होनी चाहिए और वे अन्य प्रतियोगी मूल्यों के लिए एक साथ वकालत ना करते हुए वैज्ञानिक व नैतिक रूप से ऐसा कर सकते हैं। एक संरक्षणवादी जैव विविधता पर शोध करता है और संसाधन संरक्षण नीति के जरिए दलील देता है, जो पहचान करता है कि क्या 'लंबे समय के लिए अधिकांश लोगों हेतु कल्याणप्रद' हो सकता है। इन्हें हम अस्तित्व संबंधी मूल्य भी कह सकते हैं। ये मूल्य जियो और जीने दो की धारणा पर आधारित हैं। कुछ संरक्षण जीव-विज्ञानी तर्क देते हैं कि प्रकृति में एक अंतर्निहित मूल्य है, जो मानव केंद्रीय उपयोगिता या उपयोगितावाद से स्वतंत्र है। अंतर्निहित तमूल्य पैरवी करता है कि जीन या प्रजातियों का मूल्य आंका जाए, क्योंकि उनकी पारिस्थितिक तंत्र के लिए उपयोगिता होती है, जिन्हें वे संपोषित करते हैं। आल्डो लियोपोल्ड ऐसे संरक्षण नैतिकता पर पुराने विचारक और लेखक थे, जिनका दर्शन, नैतिकता और लेखन आज के आधुनिक संरक्षण जीव-विज्ञानी द्वारा मूल्यवान समझे जाते हैं और बारंबार पढ़े जाते हैं। उनके लेख पेशे से जुड़े लोगों द्वारा बारंबार पढ़ने की आवश्यकता है।

4.3.5 सौंदर्यात्मक एवं वैकल्पिक मूल्य:

प्रकृति का बाह्य रूप अत्यन्त मोहक है। यह मनुष्यों को स्वतः अपनी ओर आकर्षित करती है। मनुष्य का पेड़-पौधों एवं जीव-जन्तुओं से अनन्य प्रेम होता है वर्तमान युग में जीव-जन्तुओं का पालन करना व्यक्ति की भावना का प्रतीक है। भारतीय धर्म साहित्य इस भावना से ओतप्रोत है। 'जीवों पर दया करो', 'मेरे समान ही जीवन पशुओं में व्याप्त है', 'पशु-पक्षी', जीव-जन्तु, मनुष्य आदि को उसी ईश्वर ने बनाया है। 'जीव-हत्या महापाप है' आदि भारतीय धर्म ग्रंथों की उक्तियाँ जीव-संरक्षण के लिए ही हैं। संसार के अनेक लोग वन्य जीवों के सौन्दर्य, भव्यता एवं रहस्य से आकर्षित हो कर इनके दिन-चर्या का गम्भीर अध्ययन किया। अनेक लोग प्राकृतिक क्षेत्रों और उनकी जैविक विविधता को देखने की हार्दिक इच्छा रखते हैं। उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन जैविकीय रूप में लोगों के मन में भय एवं

विस्मय पैदा करता है। बागवानी जैसे लोकप्रिय गतिविधियों, एकवैरियम की देखभाल और एकत्रित तितलियों, सभी वृद्धता से जैव विविधता पर निर्भर हैं।

4.4. वैश्विक राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तरों पर जैव विविधता :

(a) वैश्विक जैव विविधता

जैव विविधता के आधार पर संपूर्ण विश्व को कई भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग की अपनी विशिष्ट जैव संपदा होती है। डॉ० एन०आर० वॉलेस के अनुसार जैव विविधता के आधार पर विश्व के निम्न छः भागों में बांटा गया है—

- | | |
|---------------------------------------|-------------------------|
| (1) पेलिआर्कटिक क्षेत्र | (2) इशोपियन क्षेत्र |
| (3) ओरिएंटल क्षेत्र या इंडियन क्षेत्र | (4) आस्ट्रेलियन क्षेत्र |
| (5) नीयोट्रोपिक क्षेत्र | (6) नीआर्कटिक क्षेत्र |

(1) पेलिआर्कटिक क्षेत्र:

इस क्षेत्र में यूरोपियन, मेडिटेरियन, साइबेरियन तथा मंचूरिया क्षेत्र आते हैं।

(2) इशोपियन क्षेत्र:

इस क्षेत्र में पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी अफ्रीका, उत्तरी अफ्रीका तथा मालागासी क्षेत्र आते हैं। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले स्तनपाई में सुनहरी मोल, मेडिया, खुरदरी चमड़ी वाले चूहे, उड़न छिपकली, जिराफ तथा हिप्पोपोटेमस आदि हैं। पक्षियों में मुख्य रूप से हेलमेट पक्षी, हैमर हैडस, पिलेटेरु, किराम्पोस तथा सरीसृपों में मुख्य रूप से अंडे देने वाले सांप, गीकोस आदि पाए जाते हैं। इशोपियन क्षेत्र में कुछ विशिष्ट जीव भी पाए जाते हैं। जैसे— नोटोप्टिरस, उड़न मछली, चिंपाजी, गोरिल्ला, एंटीलोप, तेंदुआ, पेंथर, किंगफिशर, गोड़ावन, गिद्ध आदि।

(3) ओरिएंटल क्षेत्र या इंडियन क्षेत्र:

इस क्षेत्र में भारत, वर्मा, श्रीलंका, फिलीपींस, सुमात्रा, जावा, बाली तथा चीन का कुछ भाग सम्मिलित है। यह क्षेत्र समतल मैदानी भाग है जहां जंगल हैं। उच्च स्थलों के रूप में हिमालयन क्षेत्र है जिसकी ऊँचाई लगभग 2400—3000 मीटर है। ओरिएंटल क्षेत्र, इथोपियन क्षेत्र से काफी समानता रखता है, इसमें मछलियों की उन्नत प्रजातियाँ पाई जाती हैं।

यहां पाए जाने वाले जीवों में गिबबन, उड़न लीमूर, चौड़ी चोंच वाली चिड़ियां, घड़ियाल, जमीनी कछुआ, रेसियन बंदर, हाथी, बाघ, नील गाय, भूल, झाऊचूहा, साही, पांडा, गैंडा, बुलबुल कठफोड़वा, करैत सांप, सेलामेंडर, वूफो मेंढक, राना मेंढक आदि प्रमुख हैं।

(4) आस्ट्रेलियन क्षेत्र:

इस क्षेत्र में संपूर्ण आस्ट्रेलिया, तस्मानिया एवं न्यूजीलैंड आता है। इस क्षेत्र में पानी की कमी होने के कारण वनस्पति की अधिकता नहीं है। इस क्षेत्र में न्यूगिनि के घास के मैदान एवं वन भी सम्मिलित हैं। इस क्षेत्र में कांटेदार चींटीखोरा, कंगारू, चमगादड़, बया, मुकुटधारी कबूतर, किवी आदि जीव प्रमुख रूप से पाए जाते हैं।

(5) नीयोट्रोपिक क्षेत्र:

इस क्षेत्र में दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी मैक्सिको तथा वेस्टइंडीज आते हैं। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवों में अमेरिकन बंदर चिनचिलास, गिनीपिग, लेसरटेलिया, वैपपायर चमगादड़, जेबी चूह इत्यादि सम्मिलित हैं।

(6) नीआर्कटिक क्षेत्र:

इस क्षेत्र में संपूर्ण उत्तरी अमेरिका आता है, किंतु मैक्सिको व ग्रीनलैंड को सम्मिलित नहीं किया जाता है। इस क्षेत्र में पाए जाने वाले जीवों में उड़न गिलहरी, हहू-दर, भालू, पहाड़ी बकरा, अमेरिकन विसन, स्टीलोप, बाज, गिद्ध, बतख कठफोड़वा, फ्लेमिंगो, घड़ियाल, मगरमच्छ, कोरल सांप इत्यादि हैं।

(b) राष्ट्रीय जैव विविधता:

उपरोक्त वर्णित ओरिएंटल क्षेत्र या इंडियन क्षेत्र की जैव विविधता ही भारत की जैव विविधता है। नीचे वर्णित सारणी 1 व 2 विश्व तथा भारत में पाई जाने वाली जैव विविधता को तुलनात्मक रूप से दर्शाती है—

सारणी 1 विश्व तथा भारत में पाई जाने वाली जैव विविधता का तुलनात्मक रूप।

(समूह)	जातियाँ		विश्व की तुलना में भारत में पाई जाने वाली प्रतिशत मात्रा
	भारत में	विश्व में	
बैक्टीरिया	850	4,700	18.10
वायरस	—	5,000	—
एलगी (शैवाल)	2,500	40,000	6.25
कवक	23,000	47,000	48.94
लाइकेन	1,940	17,000	11.41
ब्रायोफाइटा	2,843	16,000	17.77
टेरिडोफाइटा	1,022	13,000	7.86
जिम्नोस्पर्म	64	750	8.53
एंजियोस्पर्म	17,000	2,50,000	6.80
कुल	49,219	3,93,450	12.53

सूत्र: राष्ट्रीय जैव विविधता, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, नई दिल्ली।

सारणी 2 भारत तथा विश्व में पाए जाने वाले प्राणियों की संख्या।

(समूह)	जातियाँ		विश्व की तुलना में भारत में पाई जाने वाली प्रतिशत मात्रा
	भारत में	विश्व में	
प्रोटिस्टा	2,577	31,290	8.23
मोलस्का	5,050	66,535	7.59
आर्थ्रोपोडा	60,383	9,83,677	6.13
अन्य अकशेककी	8,329	87,121	9.56
प्रोटोकार्डेटा	116	2,173	5.34
मछली	2,546	21,723	11.72
उभयचारी	204	5,145	3.96
सरीसृप	446	5,680	7.85
पक्षी वर्ग	1,228	9,672	12.76
स्तनधारी	372	4,629	8.03
कुल	81,251	12,17,645	6.67

सूत्र: राष्ट्रीय जैव विविधता, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय, नई दिल्ली।

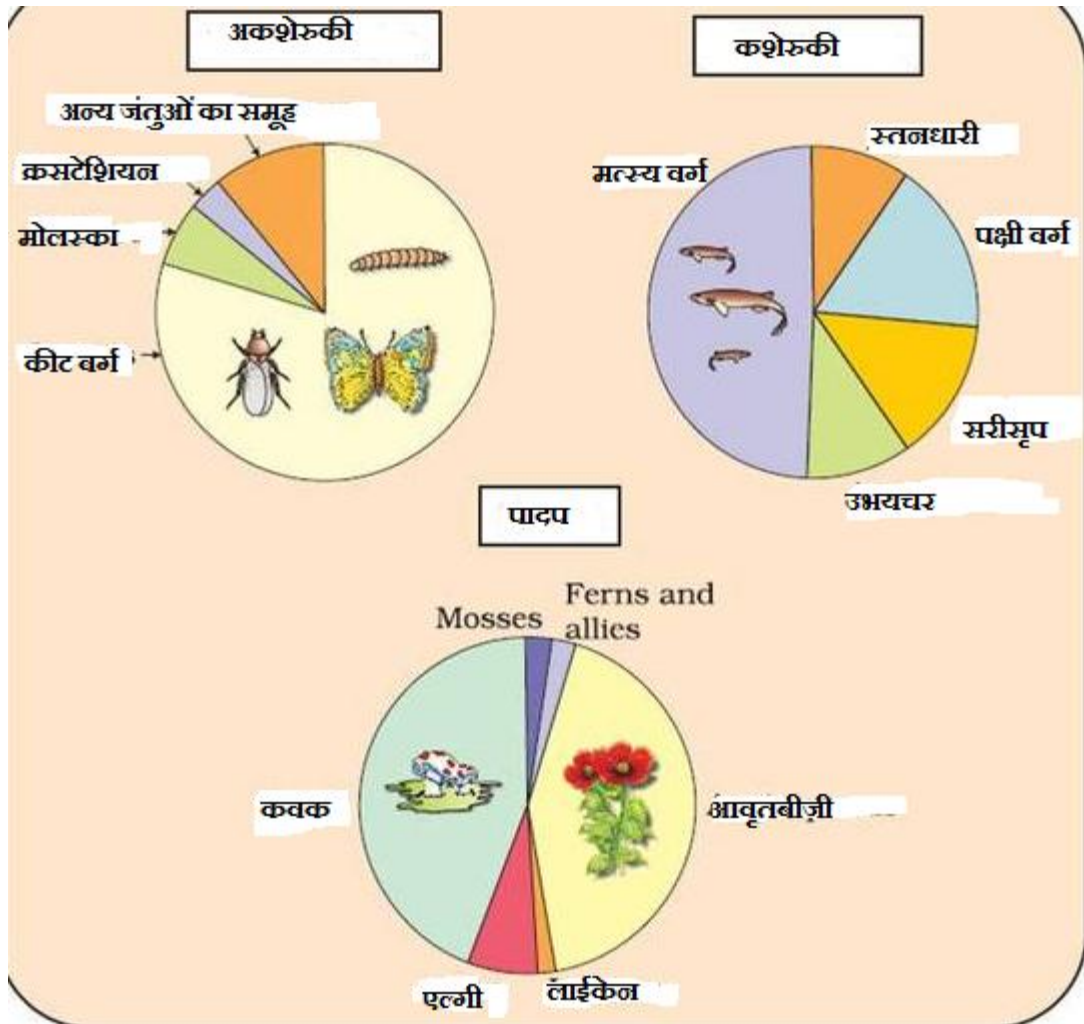
(c) स्थानीय जैव विविधता:

राजस्थान में अरावली पर्वतमाला के कारण विभिन्न प्रकार की भौगोलिक स्थितियाँ पायी जाती हैं। पश्चिम में मरुस्थल है, दक्षिण-पश्चिम में पहाड़ी क्षेत्र है तथा पूर्व व दक्षिण पूर्व में मैदान है अर्थात् राजस्थान की भौगोलिक अवस्था को तीन क्षेत्रों में बांटा जा सकता है—

- (1) दक्षिणी पूर्वी मैदानी क्षेत्र
- (2) पहाड़ी क्षेत्र
- (3) मरुस्थलीय क्षेत्र

(1) दक्षिणी पूर्वी मैदानी क्षेत्र:

यह क्षेत्र अरावली पर्वतमाला के पूर्व व दक्षिण पूर्व भाग का मैदानी क्षेत्र है। यहां का क्षेत्र काफी उत्पादक है। इस क्षेत्र में बाण गंगा, बनास, चंबल एवं गंभीरी नदी का प्रवाह होता है। इस क्षेत्र में बांस, सागवान, सफेदा, तेंदु, महुआ आदि वृक्ष मिलते हैं। यहां की जीव संपदा में लकड़बग्घा, सांभर, तेंदुआ, जंगली सुअर, चौसिंगा तथा उड़न गिलहरियां हैं।



चित्र संख्या ४.५ वैश्विक विविधता

(2) पहाड़ी क्षेत्र:

इस क्षेत्र में उत्तर पूर्व से दक्षिण पश्चिमी राजस्थान एवं अरावली पर्वत शृंखला सम्मिलित हैं। यहां पाए जाने वाले जीवों में बाहा, जरख, सियार, भालू, चीतल, नीलगाय, जंगली सूअर आदि प्रमुख हैं।

(3) मरुस्थलीय क्षेत्र:

यह क्षेत्र बहुत कम वर्षा वाला क्षेत्र है। जहां पर वर्षा नगण्य होती है। इस क्षेत्र में लवणीय जल पाया जाता है एवं उसके अनुसार अनुकूलित विशिष्ट प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें पादमों में विशिष्ट अनुकूलन जैसे मोटे पत्ते, तनों के विभिन्न रूपांतरण सम्मिलित हैं। यहां सेवण घास, खेजड़ी कैर, आंकड़ा बेर, रोहिड़ा आदि वनस्पतियाँ मिलती हैं तथा जंतुओं में चिंकारा, काला हिरण, गोड़ावन पक्षी, तिलोर, चील आदि पाए जाते हैं।

4.4.1 भूमण्डलीय जैव-विविधता:

महाद्वीपीय प्रवाह, जलवायु परिवर्तन, अनेक पर्वत निर्माणकारी घटनाएँ, वनस्पतियों के उद्विकास आदि के फलस्वरूप धरातल का स्वरूप एवं पर्यावरण का सृजन हुआ। वर्तमान धरातलीय एवं पर्यावरणीय दशायें अत्यन्त विषम एवं विशिष्ट हैं। भूमण्डल पर जैव-विविधता का एक उत्कृष्ट एवं विषम स्वरूप सृजित हुआ है। संसार की 14,13,000 प्रजातियों का निर्धारण किया जा चुका है। परन्तु अभी उनके प्रजाति अज्ञात एवं अनिर्धारित हैं। इनकी अनुमानित संख्या 50 लाख अथवा इससे अधिक हो सकती है।

भू-तल पर स्थलाकृति विन्यास एवं जलवायु की दशाओं में विषमता विद्यमान है, जिस कारण जैव-विविधता में भिन्नता है। इसी भिन्नता के आधार पर जैव-विविधता को विश्व-स्तर पर निम्नांकित क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है।

- (1) अत्यधिक जैव-विविधता वाला क्षेत्र
- (2) अधिक जैव- विविधता वाला क्षेत्र
- (3) कम जैव-विविधता वाला क्षेत्र
- (4) निम्न जैव-विविधता वाला क्षेत्र
- (1) अत्यधिक जैव-विविधता वाला क्षेत्र:

उष्ण कटिबंध के स्थलीय एवं जलीय भागों में प्रवाल भित्ति क्षेत्र तथा आर्द्र भूमि जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यन्त समृद्धशाली हैं। यहाँ जलवायविक दशायें अनुकूल हैं जिस कारण जीव-जन्तुओं, प्राणियों एवं वनस्पतियों का विकास संसार के अन्य भू-भाग की अपेक्षा अधिक हुआ है। इसे निम्नांकित चार क्षेत्रों में बाँट कर भली-भाँति स्पष्ट किया जा सकता है-

(क) उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन:

जैव विविधता उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन में सबसे समृद्ध है क्योंकि इसमें स्थलीय प्रजाति निरन्तर जीवित एवं प्राचीन समुदाय से सम्बन्धित, जीवों में पर्यावरण-अनुकूलन की प्रवृत्ति, गर्म तापमान एवं उच्च आर्द्रता, नाशक जीवों एवं परजीवियों की संख्या की अधिकता, पादपों में बहिर्स्करण की ऊँची दर, ऊर्जा प्राप्ति की अधिकता आदि हैं। अनुकूल परिस्थितियों के कारण प्राणियों, जीव -जन्तुओं एवं वनस्पतियों का इतना अधिक विकास हुआ है। उष्ण कटिबन्धीय वर्षा वन क्षेत्र विश्व के 13 प्रतिशत भू-भाग पर विस्तीर्ण हैं। परन्तु यहाँ पर संसार की 50 प्रतिशत से अधिक ज्ञात प्रजातियाँ विद्यमान हैं।

निर्धारित प्रजातियाँ एवं इनकी संख्या	
प्रजाति	संख्या
कीट	7,51,000
पदप	2,50,000
अन्य प्राणी	2,81,000

क्वक	69,000
प्रोटिस्ट	30,000
शैवाल	26,000
जीवाणु	4,800
विषाणु	1,000

(ख) प्रवाल भित्तियाँ:

प्रवाल भित्तियों में जैव-विविधता की विशाल राशि है। भारतीय भित्ति क्षेत्र लगभग 2375 वर्ग किलोमीटर आंकलित किया गया है। भित्तियाँ 'समुद्रों के वर्षा वन' उपमा से अभिहित की जाती हैं। विश्व की सबसे बड़ी प्रवाल भित्ति आस्ट्रेलिया में है। यहाँ की समुद्री परिस्थितियाँ जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों के विकास के अनुकूल हैं जिस कारण यहाँ 3000 जीव जातियाँ पायी जाती हैं। इसके अतिरिक्त पूर्वी हिन्द महासागर तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर का संक्रमण क्षेत्र भी प्रवाल भित्तियों से समृद्ध है जीव-विविधता अत्यधिक है। प्रवाल भित्तियाँ जीवों के लिए एक आदर्श पारिस्थितिक-तन्त्र का निर्माण करती हैं। इसे प्रवाल कालोनी के रूप में जाना जाता है। प्रकृति द्वारा प्राकृतिक वास का निर्माण किया गया है जिसमें अनेक जीव जन्म लेते हैं, सम्वर्द्धित होते हैं तथा अपना प्रसार करते हैं।

वर्तमान समय में लगभग 109 देशों में प्रवाल भित्तियाँ पायी जाती हैं। परन्तु मानवीय क्रियाओं से इन पर संकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। फलस्वरूप 93 देशों की प्रवाल भित्तियाँ लगभग नष्ट हो गयी हैं। वास्तव में जल प्रदूषकों से सागर का ताप निरन्तर बढ़ रहा है। जिसका प्रभाव सागरीय जीवों पर पड़ रहा है। 'राष्ट्रीय पर्यावरण नीति-2006' में यह माना गया है कि प्रवाल भित्तियाँ महत्वपूर्ण तटीय पर्यावरणीय संसाधन हैं, जिनकी प्रदूषण एवं मौसम के भीषण संकटों से सुरक्षा करनी होगी।

(ग) आर्द्र भूमियाँ:

जल एवं स्थल के मध्य का संक्रमण क्षेत्र आर्द्र भूमि कहलाता है जिसमें जीवों का अधिक उत्पादन होता है। फलस्वरूप आर्द्र भूमियाँ जैव-विविधता की दृष्टि से समृद्ध होती हैं। इसमें जल की अधिकता, वातन रहित एवं उर्वरक मिट्टी आदि इस क्षेत्र की मुख्य विशेषता हैं। वनस्पतियों का शीघ्र विकास होता है जिस कारण जीवों के लिए उत्तम प्राकृतिक वास की प्राप्ति हो जाती है। आर्द्र भूमियों को दो वर्गों –(i) सागर तटवर्ती आर्द्र भूमि तथा (ii) अन्तः स्थलीय आर्द्र भूमि में विभाजित किया जाता है।

सागर तटवर्ती आर्द्र भूमि समुद्रों एवं स्थल की मिलन बिन्दु होती है जो स्वच्छ एवं लवण जलीय दोनों प्रकार की होती है। कच्छ, ज्वारीय मैग्राव स्वच्छ जलीय आर्द्र भूमि के प्रमुख दृष्टांत हैं जिसमें अधिक जैव-विविधता पायी जाती है। कच्छ क्षेत्र जलपूर्ण अथवा अत्यन्त आर्द्र होते हैं। इनमें वन्य जीवों एवं पक्षियों का अधिक संख्या में विकास होता है। अन्तः स्थलीय आर्द्र भूमि के अन्तर्गत कच्छ दलदल, नदीय आर्द्र भूमि के अन्तर्गत कच्छ दलदल, नदीय आर्द्र भूमि, बाग भूमि आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये भूमियाँ बहुत आर्द्र होती हैं जिस कारण वनस्पतियों एवं जीवों का अधिक विकास होता है।

उष्ण कटिबन्धीय एवं उपोष्ण कटिबन्धीय प्रदेशों में मैग्राव दलदल पाये जाते हैं। इसमें वृक्ष अधिक संख्या में होते हैं साथ ही लवणयुक्त झाड़ियाँ एवं पौधे भी होते हैं। सुन्दर वन विश्व का सबसे बड़ा मैग्राव है जिसमें सुन्दरी वृक्षों की अधिकता है। वास्तव में मैग्राव का तात्पर्य ऐसे वृक्ष से है जो जलमग्न रह कर लवणीय पर्यावरण में अपना पोषण एवं सम्वर्द्धन करते हैं।

(घ) उष्ण कटिबन्धीय सागरीय क्षेत्र:

उष्ण कटिबन्धीय सागरीय क्षेत्रों में ऊँचा तापमान एवं अधिक वर्षा होती है। अनेक नदियाँ अवसादों का वृहत-स्तर पर निक्षेप करती हैं। इस क्षेत्र में समुद्री जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों के विकास की अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध हैं जिस कारण जैव-विविधता की अधिकता है। परन्तु इन क्षेत्रों में उपोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्रों की अपेक्षा जैव विविधता कम पायी जाती है।

(2) अधिक जैव-विविधता वाला क्षेत्र:

जलवायु तथा भू-प्राकृतिक बनावट की उत्कृष्टता के कारण संसार में अनेक प्राकृतिक वास्तुओं का निर्माण हो गया है जहाँ पर जैव-विविधता अधिक पायी जाती है। इसके अन्तर्गत पश्चिमी यूरोप, मानसूनी प्रदेश, घास के मैदान आदि सम्मिलित हैं। पश्चिमी यूरोप की जलवायु है जिसमें वर्षा अधिक होती है। फलस्वरूप यहाँ जंगलों का विस्तार अधिक है जिनमें चौड़ी पत्ती वाले पर्णपाती वृक्ष एवं कोणधारी वन अथवा दोनों का मिश्रण हैं। यहाँ के प्रमुख वृक्ष चीड़, फर, स्प्रूस, वालनट, मैपल, एल्स, चेस्टनट, ओक, ऐश, बीच आदि हैं। यहाँ अन्य जलवायु प्रदेशों के वन्य जीव पाये जाते हैं। अनेक प्रकार की पक्षियाँ वास करती हैं मानसून प्रदेश में भारी वर्षा एवं छोटी शुष्क शीत ऋतु होती है। मृदा में आर्द्रता की पर्याप्त मात्रा होती है। जिस कारण वनस्पतियों के विकास की अनुकूलता रहती है। वास्तव में मानसूनी प्रदेश में वनस्पति का प्रकार वर्षा की मात्रा एवं उसके विवरण उसके वितरण द्वारा निर्धारित होता है। भारत के मालाबार तट एवं असम के अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सघन जंगल है। शीशम, साखू, आम, महुआ, पलाश, जामुन, पीपल, बरगद, नीम आदि के वृक्ष पाये जाते हैं। नमी की अधिकता एवं जंगल की सघनता के कारण उड़ने तथा पेड़ों पर चढ़ने वाले जीवों की प्रमुखता है। यह के विरल जंगलों जिनके मध्य बड़ी बड़ी घासे हैं वहाँ बड़े वन्य पशु अधिक संख्या में होते हैं। शेर, चीता, तेंदुआँ, स्यार, हाथी, जंगली भैंसा, गैंडा, हिरन आदि पशु एवं विविध प्रकार की पक्षियाँ इस प्रदेश में मिलती हैं।

घास के मैदानों में प्रेयरी, स्टेपी, पम्पास, वेल्ड, डाउन्स आदि प्रमुख हैं। घासे मुख्य वनस्पति है। जिनके मध्य में छोटे छोटे वृक्ष पाये जाते हैं। यहाँ अनेक प्रकार एवं अधिक संख्या में जीव-जन्तु पाये जाते हैं। जंगली घोड़े, वाइसन, हिरण, साँप, रोडेन्ट, छिपकली, भेंड़, बकरी आदि प्रमुख जीव-जन्तु एवं पशु हैं। उत्तरी अटलांटिक महासागर का सारगोसो सागर सारगोसम नामक विशेष प्रजाति की समुद्री घास के लिए प्रसिद्ध है। यह क्षेत्र 11,000 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में विस्तीर्ण है। जापान का तटीय क्षेत्र, डांगर बैंक, उत्तरी पश्चिमी अटलांटिक महासागरीय क्षेत्र, उत्तरी पश्चिमी एवं उत्तरी पूर्वी प्रशान्त महासागरीय क्षेत्र आदि मत्स्य तथा अन्य सागरीय जीव-जन्तुओं की दृष्टि से समृद्धशाली हैं।

(3) कम जैव-विविधता वाला क्षेत्र:

जीव जन्तुओं एवं वनस्पतियों के विकास की अनुकूल परिस्थितियों के अभाव में संसार का बहुत बड़ा क्षेत्र जैव-विविधता की दृष्टि से अत्यन्त कमजोर क्षेत्र है। इनमें उप-ध्रुवीय एवं मरुस्थलीय क्षेत्र प्रमुख हैं।

(4) सबसे कम जैव-विविधता वाला क्षेत्र:

उत्तरी तथा दक्षिणी ध्रुवों के चतुर्दिक बहुत बड़ा भाग हिमाच्छादित है। सतत हिमाच्छादित क्षेत्र में जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जाती है। इनके अन्तिम छोरों में जहाँ पर ग्रीष्मकाल में हिमद्रवण होता है वहाँ पर छोटी-छोटी वनस्पतियाँ एवं जीव-जन्तुओं का उद्भव हो जाता है। कुछ को छोड़ कर सभी का जीवन अल्पकालिक होता है।

4.5. विराट विविधता वाले राष्ट्र के रूप में भारत:

भारत वर्ष एशिया महाद्वीप में भौगोलिक स्थिति की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण है। यहाँ पर विश्व की समस्त प्रकार की जलवायु, वनस्पति, भ्वाकृति आदि विद्यमान हैं। जीव जन्तु, प्रणियों एवं वनस्पतियों की इतनी प्राचीन एवं अर्वाचीन जातियाँ-प्रजातियाँ विद्यमान हैं उतनी विश्व के अन्य किसी भी भू-भाग में द्रष्टव्य नहीं हैं। इस प्रायद्वीप का उत्तरी भाग हिमालय, मध्यवर्ती भाग वृहत मैदान जिसके पश्चिमी छोर पर मरुस्थल एवं पूर्वी छोर पर दलदल, दक्षिणी भाग प्रायद्वीपीय पठारी जिसके दोनों पार्श्वों में समुद्र तटीय मैदान हैं। स्पष्ट है इसकी प्राकृतिक संरचना अत्यन्त अद्भुत है। प्राकृतिक बनावट का अनुसरण जलवायु एवं प्राकृतिक वनस्पतियाँ करती हैं। इन्हीं के त्रिपुटी अन्तर्सम्बन्ध से प्राकृतिक बास्य क्षेत्र का निर्माण होता है। प्राकृतिक वासों की विविधता से जीव-जन्तुओं एवं प्राणियों में विविधता उत्पन्न हुई है। वर्तमान समय में हमारे देश में मुख्य रूप से भारतीय, मलायन, इथोपियन, यूरोशियन आदि वन्य जीवों का मिश्रण मिलता है। भारत की जैव-विविधता को अधोलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(i) मलायन जैवविविधता:

पूर्वी हिमालय की घाटियों में जहाँ सघन वनों का आवरण है तथा समुद्र तटीय क्षेत्रों में मलायन जैव-विविधता द्रष्टव्य है।

(ii) इथोपियन जैवविविधता:

राजस्थान तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में जहाँ शुष्क वातावरण है वहाँ इथोपियन जैव-विविधता है।

(iii) यूरोपियन जैवविविधता:

उच्च हिमालीय क्षेत्रों में जो वर्ष के अधिकांश समय तक हिमाच्छादित रहते हैं वहाँ यूरोपियन जैव-विविधता है। भारत के स्थलाकृतिक विन्यास एवं जलवायविक विषमता के कारण विभिन्न प्रकार के प्राकृतिक वासों का निर्माण हुआ है। पारिस्थितिकी वैज्ञानिक वन्य जीवन में प्राणी जगत तथा वनस्पतिक जगत दोनों को सम्मिलित कर अध्ययन करते हैं। इस आधार पर भारत वर्ष को तीन जैव-विविधता वाले क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है।

(i) हिमालय पर्वत तन्त्र की जैवविविधता,**(ii) प्रायद्वीपीय प्रदेश की जैवविविधता,****(iii) मध्यवर्ती मैदानी जैवविविधता।**

भारत वन्य जीव की दृष्टि से समृद्धशाली है। वास्तव में वन्य जीव प्रकृति की अमूल्य निधि है। ये पर्यावरण को सन्तुलन की ओर अग्रसर करते हैं। वन्य जीवों में जंगलों में स्वच्छन्द विचरण करने वाले प्राणी तथा पशु आते हैं। प्रकृति में किसी भी प्रकार का जीवन जो सांस्कृतिक वातावरण से बाहर है इसे वन्य जीव कहा जा सकता है।

जंगल पर सघन वनों का आवरण है। इसी प्रकार जहाँ पर विरल वनों का विस्तार है वहाँ वन्य जीव कम हैं। भारत के सघन वन जैव विविधता की दृष्टि से संसार में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। ब्राजील के पश्चात् भारत के सघन वनों में सर्वाधिक जैव विविधता है। सूदूर-पूर्व में मानिसराम एवं चेरापूँजी में भारी वर्षा होती है। इसके साथ संलग्न पहाड़ी भी अधिक वर्षा वाले क्षेत्र हैं। दक्षिण-पश्चिम में खारीय कच्छ का रन है। मध्यवर्ती भाग पठारी एवं वनस्पतियों से युक्त हैं जिसके दोनों पाश्वों में समुद्र तट है। साथ ही समुद्र से घिरे अनेक द्वीप हैं। यहाँ उत्तम एवं विविध प्रकार के प्राकृतिक वास्य का निर्माण हुआ है जिस कारण इन क्षेत्रों में विशाल जैव विविधता है। देश के पश्चिमी भाग में थार का मरुस्थल तथा धुर उत्तर में हिमाच्छादित क्षेत्र हैं। जहाँ पर उपयुक्त प्राकृतिक वास्य निर्मित नहीं हो पाया है। फलस्वरूप जैव विविधता बहुत कम है। वास्तव में देश की भिन्न-भिन्न पारिस्थितिक व्यवस्थाओं में जलवायु की दशाएँ, प्राकृतिक संरचना, वनस्पतिक आवरण भिन्न-भिन्न है। जिस कारण देश की जैव-विविधता भिन्न-भिन्न एवं विशाल है।

विश्व में लगभग 15,00,000 जीव प्रजातियाँ पायी जाती हैं, जिसमें 2,50,000 वनस्पति प्रजातियाँ हैं। विश्व के समस्त वनस्पति प्रजाति में से लगभग 44,500 प्रजातियाँ भारत में पायी जाती हैं जबकि विश्व के समस्त जन्तु प्रजातियों में से 91,212 उभयचर एवं कीट प्रजातियाँ केवल भारत में पायी जाती हैं। इस प्रकार संसार के समस्त ज्ञात पादप का 17.8 प्रतिशत तथा जन्तु प्रजाति का 7.29 प्रतिशत भाग यहाँ निवास करता है। देश में लगभग 2100 पक्षी प्रजातियाँ, 500 प्रकार की जैव जातियाँ, 61,151 मत्स्य एवं कीट वाली जीव-प्रजातियाँ आदि हैं। स्पष्ट है कि देश में वन्य जीवों एवं पक्षियों की असंख्य प्रजातियाँ विद्यमान हैं। परन्तु मनुष्य का भौतिकवादी दृष्टिकोण देव-विविधता की मौलिकता को नष्ट कर रहा है। फलस्वरूप 133 प्रजातियाँ दुर्लभ प्रजातियाँ हो गयी हैं जिनके अस्तित्व पर संकट है।

भारत की भौगोलिक स्थिति, भ्वाकृतिक संरचना एवं जलवायु की दशाओं के कारण भिन्न-भिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्राकृतिक वास्यों का निर्माण हुआ है। फलस्वरूप प्रत्येक वास्य में अनुकूलतम् प्राणी आवासित हैं। यहाँ की जैव विविधता विश्व के अन्य भागों से पृथक सृजित हुई है।

4.6. जैव विविधता के मुख्यस्थल

ऐसे स्थान, जहाँ पर जातियों की पर्याप्तता तथा स्थानीय जातियों की अधिकता पायी जाती है लेकिन साथ ही इन जीव जातियों के अस्तित्व पर निरन्तर संकट बना हुआ है। अर्थात् जहाँ स्थानीय एवं वैश्विक दृष्टि से जातियों की समृद्धता है लेकिन आवास निवाश का संकट बना हुआ है। ऐसे स्थलों को संवेदनशील क्षेत्र कहते हैं।

‘हॉट स्पॉट’ या ‘संवेदनशील स्थल’ शब्दों का सर्वप्रथम प्रयोग प्रसिद्ध ब्रिटिश पारिस्थितिकविद् नार्मन मायर्स ने 1988 में किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि जहाँ स्थानीय जातियों की आनुपातिक दृष्टि से अधिकता पायी जाती है। वहाँ उच्च दर से आवास में विनाश हो रहा है। फरवरी, 2000 में नेचर पत्रिका में प्रकाशित एक लेख में मायर्स एवं अन्य साथी पारिस्थितिकविदों ने विश्व में 25 ‘हाट स्पॉट्स’ की पहचान की है, जो पृथ्वी तल के 1.4 प्रतिशत भाग पर विस्तृत हैं तथा यह विश्व की कुल पादप जातियों का 35 प्रतिशत भाग पाया जाता है।

विश्व में चिन्हित कुल 25 हाट-स्पॉट्स में से 2 भारत में स्थित हैं। जिनका विस्तार पड़ोसी देशों की सीमाओं तक है।

जैव विविधता के संवेदनशील क्षेत्र, उन क्षेत्रों को कहा जाता है जहाँ जैव विविधता की अधिकता है वह जैव विविधता उस क्षेत्र विशेष में ही पाई जाती हो तथा जिस पर प्राकृतिक अथवा अप्राकृतिक कारणों से विलुप्त होने का खतरा हो।

विश्व के 25 क्षेत्रों को संवेदनशील घोषित किया गया है।

1. ट्रोपिकल एंडीस
2. मीसोअमेरिका
3. ब्राजील का एटलांटिक वन क्षेत्र
4. पश्चिमी एक्वेडोर
5. ब्राजीलियन केरोडो
6. मध्य चिली
7. फ्लोरिडा क्षेत्र कैलिफोर्निया
8. मेडागास्कर
9. तजानिया/केनिया का पूर्वी पहाड़ी व समुद्र तटीय वन क्षेत्र
10. पश्चिमी अफ्रीका का वनीय क्षेत्र
11. केप फ्लोरिस्टिक क्षेत्र
12. सेकुलेंट कारु
13. मेडिटेरियन बेसिन
14. कॉकसेस
15. संडोलंड्स
16. वालशिया
17. फिलीपींस
18. इंडो बर्मा
19. मध्य उत्तरी चीन
20. श्रीलंका के पश्चिमी घाट
21. उत्तर पश्चिमी आस्ट्रेलिया
22. न्यूकेलीडोनियां
23. न्यूजीलैंड
24. माइक्रोनेशिया

भारत का प्रथम हॉट स्पॉट पश्चिमी घाट है जिसका विस्तार श्रीलंका तक है। दूसरा स्थल पूर्वी हिमालय है तथा म्यांमार तक विस्तृत है। इन दोनों ही स्थलों में पादप जगत की सम्पन्नता एवं जातीय क्षेत्र विशेषीकरण की बहुलता पायी जाती है। विश्व की ज्ञात पादप जातियों की 30 प्रतिशत क्षेत्र विशेषी पादप जातियाँ भारत में पायी जाती हैं। भारत में 5,150 जातियाँ क्षेत्र विशेषी हैं जिनमें से 3,500 जातियाँ हिमालय में तथा 1,650 जातियाँ पश्चिमी घाट में पायी जाती हैं।

4.7. जैव विविधता को खतरा, आवास क्षति, वन्य प्राणियों का शिकार एवं मानव वन्य जीवन

टकराव

जन्तु तथा वनस्पति पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखती है। ओजोन परत में छिद्र, हरित-गृह प्रभाव के कारण वातावरण में गर्मी का बढ़ना, अम्ल वर्षा, भू-क्षरण की समस्या, जल-स्तर में कमी, वर्षा का कम होना, बाढ़, सूखा, चट्टानों का खिसकना तथा प्रदूषण की समस्या एवं मरुस्थलीकरण में वृद्धि जैसी समस्याएँ जैव-विविधता के विनाश का ही परिणाम है, जिसे आज सारा विश्व प्रभावित तथा पीड़ित है। जब किसी स्थान विशेष में वन काटे जाते हैं तो उसका दुष्प्रभाव दूर-दराज के इलाकों पर भी पड़ता है; क्योंकि भू-रसायन चक्रों द्वारा सभी क्षेत्र आपस में जुड़े हैं। इस समय वनों की व्यापारिक कटाई के फलस्वरूप लोगों की आजीविका के साधन छिनते जा रहे हैं, विशेषकर ग्रामीणों की, जिनकी आजीविका का आधार विभिन्न वनोत्पाद हैं। वनों की बड़े पैमाने पर कटाई से वन्य प्राणी कम होते जा रहे हैं।

पर्यावरण और जैव विविधता समेत समस्त प्राकृतिक संसाधनों पर भारत में दशकों से भारी दबाव पड़ रहा है। भारत में मनुष्यों और पालतू पशुओं की ज्यादा आबादी, उनके अधिक घनत्व और तेजी से बढ़ोत्तरी, घोर गरीबी, निरक्षरता तथा संस्थागत ढाँचों के अभाव के कारण प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण का तेजी से ह्रास हुआ है। वनों के कटने से जैव विविधता को भी भारी नुकसान हुआ है। अनगिनत पादप और जन्तु प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर पहुंच गई हैं। हालांकि अभी तक मात्र 23 प्रजातियों की विलुप्ति का पक्के तौर पर पता चलता है, लेकिन भय है कि

इससे कहीं अधिक प्रजातियाँ विलुप्त हो चुकी हैं, जिनके बारे में कुछ पता नहीं है। अब समय आ गया है कि भारत प्राकृतिक संसाधनों और जैव विविधता संरक्षण के लिए एक उत्तरदायित्वपूर्ण राष्ट्रीय नीति को अपनाए जोकि आर्थिक और सामाजिक विकास की नीतियों के साथ कदम मिलाकर चल सके।

पिछले करीब 50 वर्षों से मानव जनसंख्या में असाधारण वृद्धि, औद्योगिक एवं कृषि विकास के कारण तमाम तरह की पर्यावरण विकृतियाँ होने लगी हैं और पर्यावरण भौतिक एवं रासायनिक रूप में प्रदूषित होने लगा है। जिसके फलस्वरूप तमाम तरह के प्राणियों, वनस्पतियों तथा सूक्ष्मजीवों के नष्ट होने की संभावना बढ़ती जा रही है। जीवों की प्रजातियों एवं जातियों के लगातार नष्ट होते रहने की प्रक्रिया को जैव विविधता क्षरण या जैव आनुवंशिक क्षरण के नाम से जाना जाता है। मिट्टी, जल, वायु के समान ही जैव विविधता एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन है जिसका क्षरण पर्यावरण के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो सकता है। विशेषकर उन्नत कृषि तथा अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के कारण जैव विविधता काफी तेजी से नष्ट हो रही है और अगर इसको नहीं रोका गया तो भविष्य में इसके बहुत ही खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। विकास ऐसी प्रक्रिया है जो पहले विकृति तथा बाद में विनाश को जन्म देती है, यानी समाज में जो भौतिक विकास हो रहा है वह प्रायः पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों की कीमत पर हो रहा है जिसे हम पर्यावरण प्रदूषण एवं प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण के रूप में भुगत रहे हैं। अतः अब वह वक्त आ गया है कि हम संतुलित विकास की ओर अपने कदम बढ़ाएं।

जैव-विविधता क्षरण एक प्राकृतिक प्रक्रिया है और प्रकृति इस क्षरण को समायोजित कर लेती है। किन्तु वर्तमान में जैव-विविधता क्षरण का संकट मानवीय हस्तक्षेप के कारण है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, कृषि का विज्ञानीकरण तथा जनसंख्या विस्फोट आदि के कारण विगत 70 वर्षों से जैव-विविधता में क्षरण तीव्र गति से हो रहा है। मानवीय क्रियाएँ जैव-विविधता के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। विकास की प्रवृत्ति से रसायनों का प्रयोग जैव-विविधता को तीव्र गति से क्षरित कर रहा है। साथ-ही-साथ मानव क्रियाओं एवं उनके द्वारा उत्पन्न परिवर्तनों से जीवों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों में समायोजन के लिए पर्याप्त समय नहीं मिल पाता है। फलस्वरूप जीवों के समाप्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है। जैव विविधता ह्रास के कारण निम्नलिखित हैं। यथा-

1. आवासों का विनाश:

विश्व में जैव-विविधता ह्रास का प्रमुख कारण शताब्दी में किया गया उनकी आवासों का विनाश है। तीव्र गति से वनोन्मूलन करके वन्यजीवों को एकाकी समूहों में विभक्त कर दिया गया जो विपदाओं से निपटने में असक्षम है। एशिया के उष्ण कटिबन्धीय देशों में 65 प्रतिशत वन्य जीवों के आवास नष्ट कर दिए गये हैं। इनमें विशेषतः बांग्लादेश (94 प्रतिशत), हांगकांग (95 प्रतिशत), श्रीलंका (85 प्रतिशत), वियतनाम (80 प्रतिशत) प्रमुख हैं। सामान्य दशाओं में छोटी संख्या में मिलने वाले जीव समुदाय वंश वृद्धि करने में पर्याप्त सक्षम नहीं होते हैं। विश्व में वन, आर्द्र भूमि तथा अन्य बड़े जैविक सम्पन्ना वाले पारिस्थितिक तन्त्र मानव जनित कारणों से लाखों प्रजातियों के विलुप्त होने की समस्या से जूझ रहे हैं। आवासों का विनाश करके हमने न केवल प्रमुख जातियों को विलुप्त किया है वरन् अनेक ऐसी जातियों का भी विलोपन कर दिया है जिनसे हम आज तक अवगत नहीं थे।

2. आवासों का बिखराव:

वन्य जीवों के आवास विगत शताब्दी में अनेक विकास क्रियाओं के कारण बिखराव की स्थिति में आ गये हैं। क्योंकि बड़े आवासों के मध्य सड़कें, कस्बे, पर्यटक स्थल, नहर अथवा विद्युत स्टेशनों का निर्माण कर उन्हें तोड़ दिया गया है। इन सभी कार्यों में मूल पारिस्थितिकीय दशाओं में परिवर्तन होने से जैव पारिस्थितिकीय दशाओं में परिवर्तन होने से जैव-विविधता में कमी आने लगती है।

3. वन्य जीवों का अवैध शिकार:

विश्व के वन्य जीवों के अवैध शिकार एवं व्यापार के कारण उनके तीव्रता से विलुप्त होने का संकट उत्पन्न हो गया है। वन्य जीवों का खाद्य पदार्थों के रूप में उपयोग के अतिरिक्त इनसे ऐसे उत्पाद प्राप्त किये जाते हैं। जिनमें समूर अथवा फर, खालें, सींग जीवित नमूने तथा चिकित्सा उपयोग की गौण वस्तुएँ सम्मिलित हैं। एशिया, अफ्रिका तथा लैटिन अमेरिका के विकासशील देशों में पायी जाने वाली सम्पन्न जैव विविधता आज विश्व में वन्य जीवों एवं जन्तु उत्पादों की मुख्य स्रोत बन रही है। इन देशों से वन्य जीव उत्पादों की आपूर्ति बढ़ती जा रही है जबकि यूरोपीय, उत्तरी अमेरिका तथा कुछ एशियाई देश इन उत्पादों के मुख्य आयातक हैं। जापान, ताइवान एवं हांगकांग विश्व के कुछ बिल्ली एवं साँपों की चमड़ी का तीन-चौथाई आयात करते हैं तथा इतनी ही मात्रा में यूरोपीय देश जीवित पक्षियों का आयात करते हैं।

4. वन्य जीवों का अवैध व्यापार:

जीभ के स्वाद के साथ ही चिकित्सा उपयोग में भी बढ़ रहा है। चीन में लम्बे समय से सेक्स क्षमता बढ़ाने के लिए बाघों की बलि देने की परम्परा रही है। भारत में बड़ी मात्रा में बाघों की तस्करी की गई जिससे विगत पाँच दशकों में तीव्रता से इनकी संख्या घट गई है। वन्य जीवों के अवैध व्यापार से हाथी सर्वाधिक प्रभावित हुआ है। अफ्रीका में इसका व्यापार अधिक हुआ है। एक गणना के अनुसार सन् 1980 में अफ्रीका में 1.3 मिलियन हाथी थे जो एक दशक बाद घटकर आधे रह गये। इस प्रकार वन्य जीवों का अवैध व्यापार होने से भी इनके विलुप्त होने का खतरा बढ़ गया है।

5. प्रदूषण:

बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण से भी जैव विविधता का ह्रास हुआ है। सागरीय प्रदूषण द्वारा प्रवाल प्रजातियाँ प्रभावित हुई है। औद्योगिक बहिस्त्रावों, अपशिष्टों, ऑटोमोबाइल द्वारा हानिकारक गैसों का उत्सर्जन तथा कृषि में प्रयोग किये जाने वाले कीटनाशकों का प्रभाव जैव विविधता पर पड़ा है। रासायनिक तत्व पोषण स्तर 1 में प्रवेश कर द्वितीय, तृतीय एवं चतुर्थ पोषण स्तरों तक पहुँच जाते हैं। ये सभी पोषण स्तरों में हानिकारक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। फलस्वरूप जैव विविधता का तीव्र गति से क्षरण हो रहा है। एक शोध के उपरान्त पाया गया है कि गिद्ध कीटनाशकों के प्रयोग के कारण विलुप्त हुआ है क्योंकि पशुओं के शरीर में संचित कीटनाशकों का वह भक्षण करता था।

6. बाहरी प्रजातियों का प्रवेश:

यद्यपि विभिन्न मानवीय गतिविधियों के कारण जैव-विविधता का ह्रास हुआ है, लेकिन बाहरी प्रजातियों के प्रवेश से भी इसमें हानि हुई है। यूरोपीय औपनिवेशीकरण, बागवानी, कृषि विकास तथा आकस्मिक परिवहन इसके प्रमुख कारण हैं। यद्यपि अनेक प्रजातियाँ स्थापित नहीं हो पाईं लेकिन फिर भी इनमें से कुछ प्रजातियों के आक्रमण का भी प्रभाव पड़ा है।

7. स्थानान्तरी कृषि:

ऊष्ण, कटिबन्धीय वर्षा प्रचुर वन क्षेत्रों में प्राचीनकाल से स्थानान्तरी कृषि की जाती है लेकिन विगत शताब्दी में तीव्रता से बढ़ती जनसंख्या ने इसे त्वरित किया एवं बड़े पैमाने पर वनों को साफ किया गया है, जिसका प्रभाव जैव विविधता पर पड़ा है।

4.8. भारत की संकटग्रस्त एवं स्थानीय जातियाँ

प्रकृति में विभिन्न जातियों के जीवों का मरना एवं उनके स्थान पर अन्य नवीन जातियों का उद्भव एक सतत् प्रक्रिया है। बिना किसी बिघ्न वाले पारिस्थितिकी तंत्रों में जातियों के विलोपन की दर प्रति दशक एक जाति है। विगत शताब्दी में पारिस्थितिकी तंत्र पर मानवीय प्रभाव ने जीवों के विलोपन की इस दर को बढ़ाया है। वर्तमान में प्रतिवर्ष सौ से लेकर हजार तक विविध जीवों की जातियाँ एवं उपजातियाँ विलुप्त हो रही हैं। पारिस्थितिकीय दृष्टि से जीवन के लिए संघर्ष कर रही इन जातियों को अधोलिखित वर्गों में विभक्त किया गया है।

लुप्त होते वन्य जीव

अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संगठन (आई0यू0सी0एन0) के अनुसार— “ऐसे वन्य जीव जिनका अस्तित्व विनाश के कगार पर हो और जिनका वर्तमान कारकों के विद्यमान रहते हुए निरंतर जीवित रहना संदिग्ध है।” लुप्त प्रायः जीव की परिभाषा में आते हैं। ऐसे वन्य जीवों का उल्लेख इस संगठन की ‘रेड डाटा बुक’ में होता है। विश्व में 277 स्तनपाई और 300 प्रजाति के पक्षी इसमें दर्शाए गए हैं।

भारत में लुप्त प्रायः वन्य जीवों की जातियाँ वन्य जीव (सुरक्षा) अधिनियम 1972 के परिशिष्टों में वर्णित है। इनमें विभिन्न प्राणी वर्ग की प्रजातियों में स्तनपाई 77, सरीसृप एवं उभयचरी 28, पक्षी 49, कीट वर्ग तितली एवं शलभ (मोथ्स) 129, संधिपाद वर्ग (आर्थ्रोपोडा कॉकरोच क्रेब) शामिल किए गए हैं। इस प्रकार 285 प्रजातियाँ लुप्त प्रायः जीवों में सूचीबद्ध की गई हैं। इन वन्य प्राणियों का विशेष परिस्थितियाँ (मानव जीवन का खतरा पैदा करने वाले वन्य प्राणी) को छोड़ आखेट सर्वदा निषिद्ध है। इसके अतिरिक्त 135 पादप प्रजाति भी लुप्त प्रायः वन्य जीवों की श्रेणी में रखी ग हैं।



रेड पांडा



हिम तेंदुआ



एक सींग वाला राइनो



डोल्फिन



बंगाल टाइगर



ग्रेट इंडियन बस्टर्ड



Lion tailed Macaque



Blackbuck



नीलगिरी



घरियाल



वल्यर



मालाबार सिवेट

चतरा संख्या ४.६

संकटग्रस्त जातियाँ:

ऐसे जीवों की जातियाँ जो पूरी तरह लुप्त नहीं हुए हैं। परन्तु लुप्त होने की कगार पर हैं। इनकी संख्या इतनी कम रह गई है कि अगर इनका संरक्षण नहीं किया गया तो भविष्य में इनके पूरी तरह समाप्त होने की संभावना है। उदाहरण के लिए अफ्रीकन हाथी, भारतीय चीता, गिद्ध, साही, काला हिरण, बारहसिंगा, देशी मुर्गियाँ, भारतीय गायों की कई बहुमूल्य प्रजातियाँ, तमाम तरह की फसलों की जातियाँ विशेषकर छोटे दानों वाली मिलेट जैसे सांबा, कोदो, फाक्सटेल तथा कई तरह के देशी चावल, गेहूँ, बाजरा, ज्वार, सब्जियों तथा फलों की प्रजातियाँ।

संभावित संकटग्रस्त जातियाँ:

संसार में जीव-जन्तुओं की कुछ ऐसी जातियाँ हैं जो पूर्णतः लुप्त नहीं हुई हैं। परन्तु लुप्त होने के कगार पर हैं। ऐसे जीवों की जातियाँ जिनके भविष्य में संकट में पड़ने की संभावना है। क्योंकि इन जीवों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है और चूंकि इनका उपयोग अब बहुत सीमित हो गया है। अतः इनके घटते रहने की संभावना बढ़ती जा रही है। अफ्रीकन हाथी, भारतीय चीता, गिद्ध, साही, काला हिरण, बारहसिंगा, देशी मुर्गियाँ आदि इनमें प्रमुख हैं। इसी प्रकार फसलों की अनेक प्रजातियाँ भी लुप्त होने के अत्यन्त निकट हैं। सॉवा, कोदो, फाक्सटेल, देशी चावल, जौ, अनेक सब्जियाँ एवं फल आदि प्रमुख हैं। इनकी संख्या निरन्तर कम हो रही है। यदि इनको संरक्षित नहीं किया गया तो निकट भविष्य में ये पूर्णतः समाप्त हो जायेगी। उदाहरण के लिए भैंसों, देशी गायों, बकरियों भेड़ों तथा तमाम तरह की फसलों की देशी प्रजातियाँ जैसे बासमती पुन्नी, आदमचीनी, काला जीरा इत्यादि। चावल की प्रजातियाँ, देशी गेहूँ की प्रजातियाँ जैसे- सी-306, के-68, मुड़िवला, देशी बाजरे, ज्वार तथा मक्के की प्रजातियाँ जैसे- जौनपुरी मक्का इनके अतिरिक्त बैंगन, टमाटर, रामदाना, सेम, मिर्च, कुकरबिट इत्यादि फसलों की प्रजातियाँ।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे जीवों की जातियाँ हैं जिनका मनुष्य द्वारा केवल शौक के लिए या दवा इत्यादि में उपयोग के कारण शिकार कर दिया जाता है। फलस्वरूप इनकी संख्या में भारी गिरावट आ रही है। उदाहरण के लिए शेर, बाघ, चीता, भालू, हिरण इत्यादि।

दुर्लभ जातियाँ:

उन सभी जीवों की जातियाँ जिनकी संख्या दिन-प्रतिदिन भौगोलिक दायरा कम होने तथा जनसंख्या घनत्व में कमी होने के कारण घटती जा रही है। उदाहरण के लिए ऐसी जीव प्रजातियाँ जो सिर्फ एक विशेष तरह की जलवायु एवं आवास में रहती हों, उनकी उपयोगिता बढ़ने से उनका क्षरण तेजी से हो रहा है और अब वे बहुत ही कम संख्या में रह गई हैं। उदाहरण स्वरूप बासमती चावल जो सिर्फ उत्तरी भारत तथा पाकिस्तान में ही उगाया जाता है, चंदन, पड़ाक तथा देवदार इत्यादि के वृक्ष जो क्रमशः कर्नाटक, अंडमान तथा शिमला या कश्मीर में पाए जाते हैं। अंडमान में पाए जाने वाले मनुष्यों की चार प्रमुख प्रजातियाँ जैसे- ओंगी, सौम्पेन, सेन्टिनल, जराबा तथा इंडोनेशिया के एक द्वीप पर पाई जाने वाली कमोडो ड्रेगन नामक बड़ी छिपकली सभी इसी श्रेणी में आते हैं।

4.9. जैव विविधता का संरक्षण यथास्थल एवं बहिःस्थल:

जीव प्रजातियों एवं जातियों के अनवरत नष्ट होने की प्रक्रिया जैव विविधता क्षरण अथवा आनुवंशिक क्षरण कहलाती है। जैव विविधता जल, वायु एवं मृदा की भाँति एक मुख्य प्राकृतिक संसाधन है। इसका क्षरण होना पर्यावरण के लिए हानिकारक है। कृषि का वैज्ञानिकरण हो रहा है। उत्पादन अधिक प्राप्त करने के लिए अन्यान्य प्रकार के रासायनिक प्रदूषकों का प्रयोग किया जा रहा है। अनेक जीव-प्रजातियाँ नष्ट हो रही हैं। जल प्रदूषण बढ़ रहा है। फलस्वरूप जल में रहने वाले जीव नष्ट हो रहे हैं। जनसंख्या के अनियंत्रित विकास से भी जैव-विविधता का क्षरण हो रहा है।

विकास प्रक्रिया प्रथमः विकृति, तत्पश्चात् विनाश उत्पन्न करती है। पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर समाज का भौतिक विकास हो रहा है। इससे पर्यावरण प्रदूषण में वृद्धि हो रही है तथा जैव विविधता का क्षरण हो रहा है। वास्तव में भौतिक अथवा पर्यावरण संसाधनों का जितना अधिक प्रयोग किया जायेगा समाज का भौतिक विकास उतना अधिक होगा। समाज के भौतिक विकास के साथ-साथ जैव विविधता का विनाश अवश्य होगा। मनुष्य की लोलुप गिद्ध दृष्टि प्रकृति प्रदत्त अनुपम संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग कर सुखपूर्वक जीवन यापन पर टिकी है। फलस्वरूप वह अपने लिए एवं भावी पीढ़ी के लिए विनाश की पृष्ठभूमि तैयार कर रही है। हमें विकास के साथ-साथ पर्यावरण की मौलिकता पर ध्यान देना आवश्यक है। यदि भौतिक विकास की प्रक्रिया को नियंत्रित नहीं किया गया तो एक दिन भू-तल विद्यमान अन्यान्य अवयव समाप्त हो जायेंगे।

मानव की विकासशील प्रवृत्ति से प्राकृतिक वास पर संकट उत्पन्न हो गया है। जलवायु परिवर्तन की ओर अग्रसर है। वर्षा पर आधारित वनों पर इसका प्रभाव पड़ रहा है, वर्षा पर आधारित वनों पर इसका प्रभाव पड़ रहा है, वन नष्ट हो रहे हैं। इनमें रहने वाले अन्यान्य जीवों का अस्तित्व सदैव के लिए समाप्त हो रहा है। वनों में रहने वाली जन्तु प्रजातियों एवं वनस्पति जातियों की यथार्थ संख्या कितनी है जिनका विनाश हो रहा है, उनका ठीक ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। भू-तल पर जो प्राणि जातियाँ अवशेष हैं। उनकी पारिस्थितिकी एवं जैव-विविधता का अध्ययन एवं अनुसंधान तत्काल नितान्त आवश्यक हो गया है। क्षेत्र अथवा देश विदेश पर ही नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इस दिशा में अग्रसर होने की आवश्यकता है।

वर्तमान समय में पादप एवं प्राणियों की जातियों के संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है। संरक्षण की दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. स्थानिक संरक्षण:

जब जीव एवं वनस्पति जातियों को उनके वास्य क्षेत्र में ही संरक्षण प्रदान किया जाता है तब उसे स्थानिक संरक्षण कह जाता है। वर्तमान समय में अनेक राष्ट्रीय उद्यानों, वन्य जीव अभयारण्यों एवं जैव मण्डलीय क्षेत्रों की स्थापना की गयी है। जिसमें पादप एवं प्राणियों को उन्हीं के वास्य क्षेत्र इसके अन्तर्गत आ गये हैं।

2. अन्यत्र संरक्षण:

जब जीव एवं वनस्पति जातियों को उनके वास्य क्षेत्र से हटा कर अन्यत्र संरक्षित किया जाता है तब इसे अन्यत्र संरक्षण कहा जाता है। इस विधि में सकटग्रस्त जीवों व वनस्पतियों का सर्वेक्षण कर उन्हें उचित जलवायु प्रदान की जाती है। वन्य जीवों को कृत्रिम आवासों में स्थानान्तरित कर उन्हें उपयुक्त भोजन उपलब्ध कराया जाता है वनस्पतियों के संरक्षण के लिए कृत्रिम ग्रीन हाउस निर्मित किये जाते हैं।

प्राणि विज्ञान, उद्यानों, वनस्पतिक उद्यानों, बीज बैंकों, पराग एवं बीजाणु बैंकों आदि में देख-रेख के अन्तर्गत प्रजनन क्रिया को विकसित करना चाहिए, ये जैव संरक्षण के सबसे सुरक्षित स्थान होते हैं। उल्लेखनीय है कि जीन बैंक पर प्रतिबन्ध लगाना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि इनके द्वारा जैव विविधता को भारी क्षति पहुँच रही है। वर्तमान समय में तीव्र गति से जैव औद्योगिकी का विकास किया जा रहा है। इससे जैव विविधता को भयानक खतरा का सामना करना पड़ेगा। क्योंकि इन विधाओं का मुख्य उद्देश्य उपयोगी गुणों का चयन है।

औद्योगीकरण से जल, वायु, मृदा आदि प्रदूषण तीव्र गति से बढ़ रहा है। इसका प्रभाव जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों पर पड़ रहा है। फलस्वरूप प्रदूषण उत्पन्न करने वाली इकाइयों पर प्रतिबन्ध लगाना आवश्यक है। विकसित देशों में इसका प्रभाव अधिक देखा जा रहा है।

जैव विविधता के संरक्षण के लिए पर्यावरणीय अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। प्रजातियों एवं पारिस्थितिकी प्रणाली के विषय में अध्ययन बहुत कम हुआ है। पारिस्थितिकी प्रणाली, जीव-जन्तु समूहों, उनकी संख्या एवं प्रसार, प्रकृति, भोज्य पदार्थों की स्थिति आदि के विषय में सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है। साथ ही साथ विश्व स्तर पर प्रत्येक देश को जैव विविधता संरक्षण कानून बनाना चाहिए। अनेक परियोजनाओं के माध्यम से जैव विविधता के मूल्यांकन एवं प्रबन्धन की नितान्त आवश्यकता है। इसमें किन क्षेत्रों में किन कारणों से जैव विविधता का क्षरण हो रहा है। इसका समुचित ज्ञान प्राप्त होगा। फलस्वरूप संरक्षण की अनेक योजनाएं एवं परियोजनाएं तैयार की जा सकेंगी।

जनमानस में नैतिक बोध एवं कर्तव्य भावना का उदय होना जैव विविधता संरक्षण के लिए नितान्त आवश्यक है। जीवों, पेड़-पौधों एवं मनुष्यों के प्रति मनुष्य का क्या कर्तव्य होता है। का ज्ञान भी इस दिशा में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वहन कर सकता है। भारतीय धर्म ग्रन्थ इस परिप्रेक्ष्य में उपदेशात्मक है। अनेक कहानियों, कथानकों एवं कथाख्यानों के माध्यम से जीवों एवं वनस्पतियों के प्रति मनुष्य के कर्तव्य का वर्णन किया गया है। जीव-जन्तुओं एवं वनस्पतियों के अभाव अथवा कमी में प्रकृति का क्या स्वरूप होगा, इस विषय पर चिन्तन की आवश्यकता है। जैव विविधता एवं पारिस्थितिकी प्रणाली के संरक्षण के विषय में सभी लोगों को आगे आना होगा।

4.10 वन्यजीव संरक्षण अधिनियम 1972:

अधिनियम का मुख्य उद्देश्य राज्यों को परामर्श के लिए एक वन्य जीव परातर्ष मंडल का गठन, वन्य जीवों और पक्षियों के शिकार का नियमन व नियंत्रण, राष्ट्रीय वन्य अभ्यारण्यों व उपवनों की घोषणा व उसकी प्रक्रिया का निर्धारण वन्य जीवों के दर्जन अधिपत्य, हस्तांतरण व उनसे बनने वाली वस्तुओं से संबंधित व्यापार का नियम और अधिनियम विरुद्ध कार्य करने पर दंड की व्यवस्था करना है।

अधिनियम के अनुसार बिना सक्षम अधिकारी की आज्ञा वन्य जीवों को पालना, शिकार करना, व्यापार, वन्य जीवों से उत्पन्न सामग्री रखना, व्यापार करना, वन्य जीवों का मांस पकाना, खाना व खिलाना निषेध है। इन प्रवधानों का उलंघन करने पर अपराधी को सात वर्ष का कारावास अथवा पच्चीस हजार रुपये तक का जुर्माना अथवा दोनों का उलंघन करने पर अपराधी को सात वर्ष का कारावास अथवा पच्चीस हजार रुपये तक का जुर्माना अथवा दोनों दंड दिए जा सकते हैं। अधिनियम की धारा 50 में वन अधिकारियों को संदिग्ध अपराधी की तलाशी, सामान जप्ती, बिना वारंट गिरफ्तारी, जांच के लिए हिरासत में रखने के अधिकार प्रदान किये गये हैं। इसके अंतर्गत जुर्माने की सजा वन अधिकारी दे सकते हैं। सजा दिलाने के लिए मजिस्ट्रेट के सक्षम प्रस्तुत करना आवश्यक है। वन्य जीव अपराधियों के खिलाफ पुलिस कार्यवाही कर सकती है। अधिनियम की धारा 55 के अनुसार वन्य जीव प्रतिपालक रेंजर थानाधिकारी तहसीलदार आदि कानूनी कार्यवाही कर सकते हैं। अधिनियम की धारा 61 में वन्य जीवों के शिकार आदि पर दंड का प्रावधान किया गया है। कोई व्यक्ति यदि कानून का उलंघन करता है तो दो वर्ष तक का प्रतिरक्षा के लिए सदभावनापूर्ण किसी जीव को मार देता है। तो वह अपराध नहीं माना जाता। यदि वन्य जीव अपराध टायगर, पैन्थर काला हिरन, चिंकारा, गोह, गोड़ावण, तिलोर, बटेर, सेण्ड ग्राउज सियाहगोश, मरू बिल्ली या लोमड़ी, सियार से संबंधित हैं। अनुसूची प्रथम व द्वितीय के भाग दो के वन्य जीव हो तो अपराधी को कम से कम एक वर्ष कारागार और कम से कम 5,000 रुपये जुर्माने दंडित किये जाने का प्रावधान अधिनियम है। इसी प्रकार प्राणियों या इनसे बनी वस्तुओं का व्यापार करने पर प्रतिष्ठान के मालिक, मैनेजर, रसोईया और ग्राहक को गिरफ्तार करके अधिनियम के अंतर्गत उनके खिलाफ कानूनी कार्यवाही की जा सकती है। इन प्रयोजन के लिए प्रयुक्त उपकरणों, वाहनों हथियारों बर्तनों आदि को जब्त किया जा सकता है और ये वस्तुएं सरकारी मानी जाती हैं।

इस अधिनियम के कारण ही वर्तमान में भारत में अनेक राष्ट्रीय पार्क वन्य जीवन अभयारण्य स्थापित होने से विभिन्न संकटमय वन्य जीवों की जातियों के लोप होने पर रोक लगी है। देश के वन क्षेत्र के 4 प्रतिशत से भी अधिक हिस्से को वन अभयारण्य / राष्ट्रीय पार्क घोषित किया जा चुका है। इन संरक्षित क्षेत्रों का प्रबंधन अधिनियम 1972 के प्रावधान के तहत किया जाता है।, तो वन्य जीवों को संरक्षित करने के साथ-साथ वनों के संरक्षण में भी मदद मिलेगी।

4.11 भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य:

भारत में वन्य जीवों की सुरक्षा व संरक्षण हेतु 88 राष्ट्रीय उद्यानों एवं 441 वन्य जीव अभयारण्यों की स्थापना की जा चुकी है। भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों व अभयारण्यों में निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं।

उत्तर प्रदेश :	राष्ट्रीय पार्क, लखीमपुरी खीरी, चंबल राष्ट्रीय अभयारण्य,वांदा, तथा कैमूर अभयारण्य, उ० प्र० बिहार सीमा।
उत्तराखण्ड:	जिम कार्बेट नेशनल पार्क, नैनीताल; राजाजी राष्ट्रीय पार्क, देहरादून, फूलों की घाटी, गोविन्द वन्य जीव अभयारण्य,उत्तरकाशी, केदारनाथ अभयारण्य,चमोली
मध्य प्रदेश :	बांधव गढ़ राष्ट्रीय उद्यान, बांधव गढ़, (शहडोल), कान्हा-किसली राष्ट्रीय उद्यान, मंडला व बालाघट, सतपुड़ा, वन्य जीव अभयारण्य,होशंगाबाद, माधव राष्ट्रीय उद्यान, शिवपुरी, इन्द्रावती वन्य जीव अभयारण्य, बस्तार (जगदलपुर), संजय राष्ट्रीय उद्यान, सीधी (सरगुजा), कांकर वन्य जीव अभयारण्य, बस्तार (जगदलपुर);
बिहार :	हजारीबाग, नेशनल पार्क, हजारीबाग; बेतला नेशनल पार्क, बेतला (पालामू); लावालॉग अभयारण्य, लावालॉग (हजारीबाग); भीमबांध अभयारण्य, मुंगेर; महुआडीह अभयारण्य, पलामू; डलमा वन्य अभयारण्य, जेमशेदपुर; गौतम बुद्ध वन्य जीव अभयारण्य, गंगा तथा कांवरझील पक्षी अभयारण्य, बेगूसराय।
राजस्थान :	सरिस्का वन्य जीव अभयारण्य, अलवर; केवलादेव घना पक्षी विहार, भरतपुर; रणम्भौर वन्य जीव अभयारण्य व टाइगर प्रोजेक्ट, सवाई-माधोपुर; तथा राष्ट्रीय मरुउद्यान, जैसलमैर।
महाराष्ट्र :	पेंच राष्ट्रीय, नागपुर; नवगाम राष्ट्रीय उद्यान, भंडारे; तनसा वन्य जीव अभयारण्य, थाणे; बोरोविली राष्ट्रीय उद्यान, मुम्बई; टढ़ोहा राष्ट्रीय उद्यान, चंद्रपुर, पेंच राष्ट्रीय उद्यान, नागपुर तथा राधानगरी अभयारण्य, कोल्हापुर।
कर्नाटक :	बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान, बन्नरघट्टा राष्ट्रीय उद्यान, बंगलौर, सोमेश्वर वन्य जीव अभयारण्य, कनारा, डंडेली वन्य जीव अभयारण्य, धारवाड़, मुकम्बिल वन्य जीव अभयारण्य, कनारा, भद्रा अभयारण्य,

- चिकमंगलूर, तुंगभद्रा वन्य जीव अभयारण्य, बेल्लारी, शारावती घाटी वन्यजीव अभयारण्य, शिमोगा, नागरहोल राष्ट्रीय उद्यान, कुर्ग तथा रंगाथिट्टू पक्षी विहार, मैसूर।
- केरल :** पेरियार वन्य जीव अभयारण्य, इटुक्की, इरविकुलम राजमल्ले राष्ट्रीय उद्यान, इटुक्की तथा परम्बिकलुम वन्य जीव अभयारण्य पालघाट।
- गुजरात :** गिर राष्ट्रीय उद्यान, जूनागढ़, वाइल्ड एस अभयारण्य, सुरेंद्रनगर (कच्छ का छोटा रण)।
- असम :** काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान, जोरहाट, मानस वन्य जीव अभयारण्य, बारपेट, गरमपानी वन्य जीव अभयारण्य, दिफू तथा सोनाई रुमा वन्य जीव अभयारण्य, तेजपुर।
- पश्चिम बंगाल :** सुंदरवन टाइगर रिजर्व, चौबीस परगना तथा जलदापारा वन्य जीव अभयारण्य, जलपाईगुड़ी।
- तमिलनाडु :** मदुमुलाई वन्य जीव अभयारण्य, नीलगिरी (तमिलनाडु), अनामलाई वन्य जीव अभयारण्य, कोयम्बटूर (तमिलनाडु), वेदांतगल जलीय पक्षी विहार, चिंगलपुर (तमिलनाडु)।
- आंध्र प्रदेश :** कावल वन्य जीव अभयारण्य, आदिलाबाद (आंध्र प्रदेश), पंखाल वन्य जीव अभयारण्य, वारंगल (आंध्र प्रदेश), नागार्जुन सागर श्रीसैलम अभयारण्य, गुंतूर, प्रकासम, करनूल, महबूबनगर तथा नीलगोंडा (आंध्र प्रदेश)।
- उड़ीसा :** समलीपाल वन्य अभयारण्य, मयूरभंज (उड़ीसा), चंडका हाथी अभयारण्य, चंडका (उड़ीसा), सतकोसिया जॉर्ज अभयारण्य, धनकमाल (उड़ीसा), भारत का प्रथम सागरीय जीव व पक्षी अभयारण्य—चिल्का झील (उड़ीसा), क्षेत्रफल लगभग 900 वर्ग किमी०।
- हिमाचल प्रदेश :** नंदन कानन अभयारण्य, भवुनेश्वर, मनाली अभयारण्य, कुल्लू (हिमाचल प्रदेश)।
- अरुणाचल प्रदेश :** नामदाफा वन्य जीव अभयारण्य, तिरप (अरुणाचल प्रदेश)।
- जम्मू कश्मीर :** दाचीनाम राष्ट्रीय उद्यान, श्रीनगर (जम्मू कश्मीर)।

सारांश:

जैव विविधता का अथवा जैव विविधता के जीवों के बीच पाई जाने वाली जो विभिन्नता है, जो कि विभिन्न प्रजातियों के बीच और उनकी पारिस्थितिक तंत्रों की विविधता को भी समाहित करती है। जैसा कि हम सभी को ज्ञात है कि जैव विविधता का संपूर्ण मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। जैविक विविधता के बिना पृथ्वी पर मानव जीवन ही असंभव है। जैव विविधता चाहे जिस भी रूप में हो जैसे कि ईंधन, कपड़ा, भोजन तथा चारा आदि की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। पृथ्वी का जैविक धन जैव विविधता करोड़ों वर्षों से जैविक विकास की देन है। इसमें हुई निरंतर लगातार नुकसान ने मनुष्य के अस्तित्व के लिए गंभीर खतरा पैदा किया है। विकासशील देशों में जैव विविधता क्षरण ही चिंता का विषय है। एशिया, मध्य अफ्रीका के देश जैव विविधता संपन्न हैं, जहां तमाम प्रकार के पौधों तथा जानवरों की प्रजातियां पाई जाती हैं। विडंबना यह है कि अशिक्षा अर्थात् जैव विविधता की पूर्ण जानकारी की कमी, गरीबी, जनसंख्या विस्फोट आदि कारणों से इन देशों में जैव विविधता संरक्षण पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आज संपूर्ण विश्व में पौधों की लगभग 60,000 प्रजातियाँ एवं जंतुओं की 2,000 प्रजातियाँ विलुप्ति के कगार पर हैं। जैव विविधता के नष्ट होने के प्रमुख कारणों में मानव के द्वारा संसाधनों का अत्यधिक दोहन, जंतुओं का शिकार, वनों का विनाश, चिड़ियाघर, शोध के लिए विभिन्न प्रजातियों का उपयोग, विभिन्न बीमारियों और बढ़ता पर्यावरण प्रदूषण आदि शामिल हैं। विश्व में तेजी से हो रहा औद्योगीकरण का प्रभाव जैव विविधता पर ही पड़ रहा है। इससे पृथ्वी पर मौजूद कई प्रजातियां विलुप्त के कगार पर खड़ी हैं जो कई विलुप्त हो चुकी हैं। जबकि इन प्रजातियों की हमारे पर्यावरण का संतुलन बनाए रखने में मुख्य भूमिका होती है। उद्योग धंधों को विकसित करने के लिए कई शहर बसाए गए, बड़े पैमाने पर खनिज पदार्थों का दोहन किया गया तो कई बड़े-बड़े बांध बनाए गए। ऐसी सभी गतिविधियों के लिए विश्व में बड़े पैमाने पर जंगल काटे गए तो बहुत सारी खनन परियोजनाओं के लिए पहाड़ों को बर्बाद किया गया। इसका प्रभाव वहां की जैव विविधता पर पड़ा, वहां की अत्यधिक मात्रा में प्रजातियां नष्ट हो गईं। इन प्रजातियों के नष्ट होने का असर इससे जुड़ी हुई दूसरी प्रजातियों पर भी पड़ा, जबकि कई स्थानों पर बहुत सी प्रजातियाँ विभिन्न प्रकार के उद्योगों के प्रदूषण का शिकार बनीं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर 194 देशों ने लुप्तप्राय या अन्य जोखिम में आने वाली प्रजातियों को बचाने के लिए विभिन्न प्रकार की कार्ययोजनाएं तैयार करने के समझौते पर हस्ताक्षर किए हैं। इस समझौते पर विभिन्न प्रजातियों को लुप्त, गंभीर संकटग्रस्त और लुप्तप्राय की श्रेणी में बांटा गया है।

इस प्रकार हमने देखा कि जैव विविधता हम सबके लिए कितनी आवश्यक है। अगर हम इनमें संतुलन बनाए रोगे तो हमें इस प्रकृति से जीवन जीने लायक सबकुछ मिल सकता है। अन्यथा आने वाले समय में हमें संकट का सामना करना पड़ेगा जो हमारे लिए बहुत की भयानक साबित होगा।

पृथ्वी पर उपलब्ध जल, संसाधन के रूप में कुछ खास दशाओं में एक नवीकरणीय संसाधन ही जल का पारिस्थितिक तंत्र में पुनर्चक्रण होता रहता है, जिसे जल चक्र कहते हैं। अतः जल एक प्राकृतिक प्रक्रिया के तहत शोधित और मानव उपयोग योग्य बनता रहता है। नदियों का जल भी मानव द्वारा डाले गए कचरे की एक निश्चित मात्रा को स्वतः जैविक प्रक्रियाओं द्वारा शुद्ध करने में समर्थ है। लेकिन जब जल में प्रदूषण की मात्रा इतनी अधिक हो जाए कि वह स्वतः पारिस्थितिक तंत्र की सामान्य प्रक्रियाओं द्वारा शुद्ध न किया जा सके और मानव के उपयोग योग्य न रह जाए तो ऐसी स्थिति में यह नवीकरणीय नहीं रह जाता।

एक उदाहरण के तौर पर देखा जाए तो उत्तरी भारत के जलोढ़ मैदान हमेशा से भूजल में संपन्न रहे हैं, लेकिन अब उत्तरी पश्चिमी भागों में सिंचाई हेतु तेजी से दोहन के कारण इनमें अभूतपूर्व कमी दर्ज की गई है। भारत में जलभरों और भूजल की स्थिति पर चिंता जाहिर की जा रही है। जिस तरह भारत में भूजल का दोहन हो रहा है। भविष्य में स्थितियां काफी खतरनाक हो सकती हैं। वर्तमान समय में 29% विकास खंड या तो भूजल के दयनीय स्तर पर हैं या चिंतनीय हैं और कुछ आंकड़ों के अनुसार 2025 तक लगभग 60% ब्लॉक चिंतनीय स्थिति में आ जाएंगे।

ध्यातव्य है कि भारत में 60% सिंचाई हेतु जल और लगभग 85% पेयजल का स्रोत भूजल ही है, ऐसे में भूजल का तेजी से गिरता स्तर एक बहुत बड़ी चुनौती के रूप में उभर रहा है। वर्तमान समय में जल संसाधन की कमी इसके अवनयन और इससे संबंधित तनाव और संघर्ष विश्वराजनीति और राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण मुद्दे हैं। जल के कारण उत्पन्न विवाद राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण विषय बन चुका है।

मानव गतिविधियां इन कारकों पर एक बड़े मैपाने पर प्रभाव डाल सकती हैं। मनुष्य अक्सर जलाशयों के निर्माण द्वारा बेसिन की भंडारण क्षमता में वृद्धि और आर्द्रभूमि के जल को बहा कर बेसिन की क्षमता को घटार देते हैं। मनुष्य अक्सर अपवाह की मात्रा और उस की तेजी को फर्शबंदी और जलमार्ग निर्धारण से बढ़ा देते हैं।

अभ्यास प्रश्नोत्तरी

प्रश्न संख्या 1. जैव विविधता से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न संख्या 2. जैव विविधता के कौन-कौन से स्तर हैं?

प्रश्न संख्या 3. जैव विविधता का ह्रास मुख्यतः किन कारणों से हो रहा है?

प्रश्न संख्या 4. जैव विविधता को संरक्षित कैसे किया जा सकता है?

प्रश्न संख्या 5. दुर्लभ प्रजातियां किसे कहते हैं?

प्रश्न संख्या 6. विलुप्त प्रजातियां किसे कहते हैं?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :-

प्रश्न संख्या 1. जैव विविधता का संरक्षण स्थानिक संरक्षण एवं अन्यत्र संरक्षण विस्तारपूर्वक समझाइए?

प्रश्न संख्या 2. भारत की संकटग्रस्त एवं स्थानीय जातियों का उल्लेख कीजिए?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :-

1. जैव विविधता का अर्थ है।
 - (अ) विभिन्न प्रकार के पादप एवं वनस्पति
 - (ब) विभिन्न प्रकार के जंतु
 - (स) एक निर्धारित क्षेत्र में विभिन्न प्रकार के पादप एवं जंतु
 - (द) विभिन्न प्रकार के विदेशागत पादप एवं जंतु

उत्तर – (स)

2. निम्न में से कौन सी जाति लुप्त हो गई है।
(अ) बारहसिंगा (ब) चीता (स) डाइनासोर (द) काला हिरन
उत्तर- (स)
3. निम्न में से कौन सी जाति संकटग्रस्त जातियों में से एक है।
(अ) लाल पांडा (ब) अंटार्कटिक भेड़िया (स) अफ्रीकन हाथी (द) इनमें से कोई नहीं
उत्तर- (स)
4. सर्वप्रथम जैव विविधता शब्द का प्रयोग किया गया था।
(अ) ई0ओ0 विल्सन (ब) पाल विलियम्सन (स) डिकवेन राइट (द) क्रिस हम्फ्रिज
उत्तर- (अ)
5. किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित विविध प्रजातियों के मध्य अंतः संबंध का ज्ञान कहलाता है।
(अ) गामा विविधता (ब) अल्फा विविधता (स) बीटा विविधता (द) आनुवांशिक विविधता
उत्तर- (अ)
6. किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित प्रजातियों की कुल संख्या को कहते हैं।
(अ) गामा विविधता (ब) अल्फा विविधता (स) बीटा विविधता (द) आनुवांशिक विविधता
उत्तर- (ब)
7. किसी क्षेत्र विशेष में उपस्थित प्रजातियों की संरचनात्मक विविधता को कहा जाता है।
(अ) गामा विविधता (ब) अल्फा विविधता (स) बीटा विविधता (द) आनुवांशिक विविधता
उत्तर- (स)
8. हॉट स्पॉट की अवधारणा के प्रतिपादक थे।
(अ) ई0ओ0 विल्सन (ब) नार्मन मायर्स (स) डिकवेन राइट (द) क्रिस हम्फ्रिज
उत्तर- (ब)
9. जैव विविधता क्षरण के कारणों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक कौन सा है।
(अ) प्राकृतिक आवासों का विनाश (ब) वन्य जीवों का अवैध शिकार
(स) प्रदूषण (द) बाहरी प्रजातियों का प्रवेश
उत्तर- (अ)
10. भारत में सर्वाधिक जैव विविधता किस स्थान पर पाई जाती है।
(अ) शांत घाटी (केरला) (ब) कश्मीर घाटी में
(स) सूरमा घाटी में (द) फूलों की घाटी में
उत्तर- (अ)

संदर्भ

1. ओझा, एस0के0; पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण (सामान्य अध्ययन विशेषांक) 2003-04
2. ओझा, एस0के0; पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण, 2012-13
3. कौशिक अनुभा एवं कौशिक सी0पी0 (2017), न्यू एज इंटरनेशनल पब्लिशर
4. जागरण जोश, 09 दिसंबर, 2015, (पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी, भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण के लेख) के माध्यम से कुछ विचार
5. विकिपीडिया के माध्यम से कुछ सार एवं कुछ महत्वपूर्ण चित्रों की सहायता

इकाई 5

पर्यावरण प्रदूषण

- 5.1 परिभाषा
- 5.2 प्रदूषण के कारण, प्रभाव और नियन्त्रण के उपाय
 - 5.2.1 वायु प्रदूषण
 - 5.2.2 जल प्रदूषण
 - 5.2.3 मृदा प्रदूषण
 - 5.2.4 समुद्री प्रदूषण
 - 5.2.5 ध्वनि प्रदूषण
 - 5.2.6 ऊष्मीय प्रदूषण
 - 5.2.7 आणविक खतरे
- 5.3 ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन: नगरीय और औद्योगिक अपशिष्ट का कारण, प्रभाव एवं प्रबन्धन
- 5.4 प्रदूषण की रोकथाम में व्यक्ति की भूमिका
- 5.5 प्रदूषण सम्बन्धी केस अध्ययन
- 5.6 आपदा प्रबन्धन: बाढ़, भूकम्प, चक्रवात और भूस्खलन

‘प्रदूषण’ या ‘प्रदूषण के तत्व’ मनुष्यों द्वारा उत्पन्न वे ‘अवांछित वाह्य पदार्थ’ होते हैं जो कि प्राकृतिक संसाधनों जैसे वायु, जल, वातावरण एवं भूमि आदि को सम्मिलित या एकल रूप से प्रदूषित करते हैं। प्रदूषक की रासायनिक प्रकृति, सांद्रता और लंबी आयु अनेक वर्षों से पारस्थितिकी को निरंतर असंतुलित कर रही है। प्रदूषक ध्वनि, कीटनाशक, कार्बनिक मिश्रण, शाकनाशी, जहरीली गैस, कवकनाशी, रेडियोधर्मी पदार्थ हो सकते हैं।

सामान्य जीवन अथवा सरल शब्दों में ‘प्रदूषण’ शब्द का अर्थ होता है, ‘किसी वस्तु, तत्व अथवा जैविक घटकों को गंदा, अयोग्य अथवा सामान्य प्रायेग के लिए हानिकारक बनाना।’ तदनुसार प्राकृतिक संसाधनों का प्रदूषण, पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन का कारण बनता है। वर्तमान में हम प्राणघातक रूप से पर्यावरण प्रदूषण की समस्या से घिरे हुए हैं। कुदरती प्रदूषण, प्राकृतिक पर्यावरण की तुलना में बहुत तेज दर से पर्यावरण में किसी भी वाह्य या जहरीले पदार्थ का मिश्रण करता है। इस गंभीर सामाजिक समस्या के मुख्य कारण हैं औद्योगीकरण, वनों की कटाई और शहरीकरण, प्राकृतिक संसाधन को प्रदूषित करने वाले उत्पाद जो कि सामान्य जीवन की दिनचर्या के रूप में प्रयोग किए जाते हैं।

5.1 परिभाषा

जब एक निश्चित सीमा से अधिक प्राकृतिक पर्यावरण में मानव का हस्तक्षेप बढ़ने लगता है, तो इससे पर्यावरण को हानि पहुँचती है। पर्यावरण का यह विघटन समस्त जीवों के लिए हानिकारक होता है।

राष्ट्रीय पर्यावरण अनुसंधान परिषद् के अनुसार— “मानवीय क्रियाकलापों से उत्पन्न अपशिष्ट उत्पादों के रूप में पदार्थों एवं ऊर्जा के विमोचन से प्राकृतिक पर्यावरण में होने वाले हानिकारक परिवर्तनों को प्रदूषण कहते हैं।” प्रदूषण हमारे चारों ओर स्थित वायु, भूमि और जल के भौतिक, रसायनिक और जैविक विशेषताओं में अनावश्यक परिवर्तन है, जो मानव जीवन की दशाओं और सांस्कृतिक संपदा पर हानिकारक प्रभाव डालता है।

संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्र विज्ञान समिति की पर्यावरण प्रदूषण उप-समिति के भी 1965 के अपने प्रतिवेदन में प्रदूषण को निम्न रूप में परिभाषित किया है— “प्रदूषण मानवीय क्रियाकलापों का ऐसा उत्पाद है, जिसने प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ऊर्जा, प्रतिक्रियाएँ, विकिरण स्तरों तथा जीवों के भौतिक व रासायनिक संगठनों पर विपरीत प्रभाव डाला है, जिसके कारण मानव को प्रत्यक्ष रूप में तथा परोक्ष रूप से उत्पन्न जल संसाधन, जलापूर्ति, कृषि, जैविक उत्पादों, मानव के भौतिक स्वामित्व, मनोरंजन के अवसरों व नैसर्गिक सुंदरता की उपलब्धता में कमी आई है।

वैज्ञानिकों के अनुसार विगत पांच दशकों में पृथ्वी के औसत तापक्रम में 1° सेल्सियस की वृद्धि हुई है। अब यदि 3.6° सेल्सियस तापक्रम की वृद्धि होती है तो आर्कटिक एवं अंटार्कटिक के विशाल हिमखंडों का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा, परिणामस्वरूप समुद्र के जलस्तर में 10 इंच से लेकर 5 फुट तक की वृद्धि होगी। ऐसी स्थिति में मुंबई, कोलकाता, मद्रास, विशाखापट्टनम, कोचीन, तिरुअनंतपुरम और पणजी जैसे शहरों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

5.2 प्रदूषण के कारण, प्रभाव और नियन्त्रण के उपाय

पर्यावरण प्रदूषण का मुख्य कारण अदूरदर्शिता, भावी परिणामों के प्रति लापरवाही माना जा सकता है। जिसके कारण यह गंभीर समस्या और भी अधिक घातक हो जाती है और हमारा यही नकारात्मक दृष्टिकोण समस्या को सुलझाने में निरंतर बाधा उत्पन्न करता है। प्रो० राजेंद्र सिंह एवं डॉ० तेज बहादुर सिंह के संयुक्त अध्ययन के अनुसार प्रदूषण का वर्गीकरण निम्नलिखित है।

1. प्रकृति जन्य प्रदूषण
2. मानव जन्य प्रदूषण

1. प्रकृति जन्य प्रदूषण:

प्रकृति जन्य प्रदूषण के अंतर्गत वे प्रक्रियाएँ शामिल हैं जो प्रकृति से उत्पन्न होकर भी किसी प्रकार प्राकृतिक प्रदूषण उत्पन्न करने में सहायक होती है वस्तुतः प्रकृति द्वारा उत्पन्न प्रदूषण अधिक घातक नहीं होता जैसे ज्वालामुखी विस्फोट, प्राकृतिक आपदाएँ, भूमि क्षरण इत्यादि।

2. मानव जन्य प्रदूषण:

मानव जन्य प्रदूषण ही वास्तव में प्रदूषण का मुख्य कारक होता है। प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सभी प्रदूषण मानव निर्मित ही होते हैं जैसे ध्वनि प्रदूषण, औद्योगिक प्रदूषण, जल प्रदूषण एवं सांस्कृतिक प्रदूषण।

प्रदूषण नियन्त्रण के उपाय

हम दिनों दिन पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति लापरवाह होते जा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में घातक परिणाम हो सकते हैं। पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होकर अगर ध्यान न दें तो जन-जीवन के लिए परिणाम घातक हो सकते हैं। इसके लिए निम्न कार्य किए जाने आवश्यक हैं।

वृक्षारोपण कार्यक्रम: वृक्षारोपण कार्यक्रम युद्धस्तर पर चलाना, परती भूमि, पहाड़ी क्षेत्र, ढलान क्षेत्र में पौधा रोपण करना।

प्रयोग की वस्तु दोबारा इस्तेमाल: डिस्पोजेबल, ग्लास, नैपकिन, रेजर आदि का उपयोग दुबारा किया जाना।

भूजल सम्बन्धित उपयोगिता: नगर विकास, औद्योगिकरण एवं शहरी विकास के चलते पिछले कुछ समय से नगर में भूजल स्रोतों का तेजी से दोहन हुआ। एक ओर जहाँ उपलब्ध भूजल स्तर में गिरावट आई है, वहीं उसमें गुणवत्ता की दृष्टि से भी अनेक हानिकारक अवयवों की मात्रा बढ़ी है। शहर के अधिकतर क्षेत्रों के भूजल में विभिन्न अवयवों की मात्रा, मानक से अधिक देखी गई है। 35.5 प्रतिशत नमूनों में कुल घुलनशील पदार्थों की मात्रा से अधिक देखी गई। इसकी मात्रा 900 मिग्रा प्रतिलीटर अधिक देखी गई। इसमें 23.5 प्रतिशत क्लोराइड की मात्रा 250 मिलीग्राम प्रति लीटर से अधिक थी। 50 प्रतिशत नमूनों में नाइट्रेट, 96.6 प्रतिशत नमूनों में अत्यधिक कठोरता विद्यमान थी।

पॉलीथिन का बहिष्कार: पर्यावरण संरक्षण के लिए पॉलीथिन का बहिष्कार, लोगों को पॉलीथिन से उत्पन्न खतरों से अवगत कराएं।

कूड़ा-कचरा निस्तारण: कूड़ा-कचरा एक जगह पर एकत्र करना, सब्जी, छिलके, अवशेष, सड़ी-गली चीजों को एक जगह एकत्र करके वानस्पतिक खाद तैयार करना।

कागज की कम खपत करना:— रद्दी कागज को रफ कार्य करने, लिफाफे बनाने, पुनः कागज तैयार करने के काम में प्रयोग करना।

5.2.1 वायु प्रदूषण

वायुमंडल एक गैसीय आवरण है, जो पृथ्वी को चारों ओर से घेरे हुए है। वायु विभिन्न गैसों का यांत्रिक मिश्रण है। सामान्यतः वायु में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, .032 प्रतिशत कार्बन डाईऑक्साइड तथा शेष निष्क्रिय गैस तथा जलवाष्प होती है। मानव जीवन वायु के बिना असंभव है।

वायु प्रदूषण का अर्थ

जब वायुमंडल के बाह्य से विविध प्रदूषक तथा धूल, गैस और वाष्प आदि इतनी मात्रा में और अवधि में एकत्रित हो जाये कि उससे वायु के प्राकृतिक गुण में अन्तर आने लगे तथा उससे मानव स्वास्थ्य, सुखी जीवन और संपत्ति को हानि होने लगे व जीवन की गुणवत्ता बाधित हो तो उसे 'वायु प्रदूषण' कहते हैं।

वायु प्रदूषण के स्रोत:

वायु प्रदूषण की समस्या जटिल एवं गंभीर होती जा रही है, प्रदूषण संस्थानीय और वैश्विक स्तर पर बढ़ रहा है इसके लिए भौगोलिक सीमाओं का कोई बंधन नहीं है, मुख्य रूप से प्रदूषण स्थानीय समस्या है, इसके स्रोत एवं कारक एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं, त्वरित क्रिया करने वाली जहरीली गैस (मिथाइल आइसो साइनेट एवं फॉस्जीन), जो भोपाल गैस दुर्घटना के नाम से जानी जाती है, स्थानीय वायु प्रदूषण का प्रत्यक्ष उदाहरण है। यद्यपि वातावरण में परिवर्तन, अम्लीय वर्षा, ओजोन गैस का बढ़ना, ओजोन परत का क्षरण महाद्वीपीय एवं वैश्विक वायु प्रदूषण के उदाहरण हैं।

देश में वायु प्रदूषण की समस्या काफी जटिल है। पेट्रोलियम शोधनशालाओं, वस्त्र उद्योगों, रसायन उद्योगों और विद्युत उद्योगों से औद्योगिक प्रदूषण काफी अधिक होता है। देश के अधिकांश बड़े महानगरों में यातायात के कारण विशेषकर दुपहिया व तिपहिया वाहनों से वायु प्रदूषण सर्वाधिक होता है। कानुपर गर्द-गुबार में दिल्ली से तीन गुना आगे है। भारत में मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, कानपुर, दुर्गापुर, भिलाई, जमशेदपुर आदि शहरों में उद्योगों के कारण वायु प्रदूषण की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है।

आधुनिकता तथा विकास ने, बीते वर्षों में वायु को प्रदूषित कर दिया है। उद्योग, वाहन, प्रदूषण में वृद्धि, शहरीकरण कुछ प्रमुख घटक हैं। जिनसे वायु प्रदूषण बढ़ता है। ताप विद्युत गृह, सीमेन्ट, लोहे के उद्योग, तेल शोध उद्योग, खान, पेट्रोलियम उद्योग वायु प्रदूषण के मुख्य कारण हैं।

कार्बन मोनोऑक्साइड (CO)

यह गंधहीन, रंगहीन गैस है। जो कि पेट्रोल, डीजल तथा कार्बन युक्त ईंधन के पूरी तरह न जलने से उत्पन्न होती है। यह हमारे प्रतिक्रिया तंत्र को प्रभावित करती है और हमें नींद में ले जाकर भ्रमित करती है।

कार्बन डाईऑक्साइड (CO₂)

यह प्रमुख ग्रीन हाउस गैस है जो मानव द्वारा कोयला, तेल तथा अन्य प्राकृतिक गैसों के जलाने से उत्पन्न होती है।

क्लोरो फ्लोरो कार्बन (CFC)

यह वह गैस है जो मुख्यतः फ्रीज तथा एयरकंडीशनिंग यंत्रों से निकलती हैं। यह ऊपर वातावरण में पहुँचकर अन्य गैसों के साथ मिलकर उस ओजोन परत को प्रभावित करती है जो कि सूर्य की हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों को रोकने का कार्य करती हैं।

लैड

यह पेट्रोल, डीजल, लैड बैटरियाँ, दीवार रंगने के उत्पादों आदि में पाया जाता है और प्रमुख रूप से बच्चों को प्रभावित करता है। यह रासायनिक तंत्र को प्रभावित करता है और कैंसर को जन्म दे सकता है तथा अन्य पाचन सम्बन्धित बीमारियाँ पैदा करता है।

ओजोन

यह वायुमंडल की ऊपरी सतह पर पाई जाती है। यह महत्वपूर्ण गैस, हानिकारक अल्ट्रावायलेट किरणों से पृथ्वी की रक्षा करती है। लेकिन पृथ्वी पर यह एक अत्यंत हानिकारक प्रदूषक है। वाहन तथा उद्योग इसके उत्पन्न होने के प्रमुख कारण हैं। उससे आंखों में खुजली, जलन पैदा होती है, पानी आता है। यह हमारी सर्दी और न्यूमोनिया के प्रति प्रतिरोधक क्षमता को कम करती है।

नाइट्रोजन ऑक्साइड (NO_x)

यह धुआं पैदा करती है। अम्लीय वर्षा को जन्म देती है। यह पेट्रोल, डीजल, कोयले को जलाने से उत्पन्न होती है। यह गैस बच्चों को, सर्दियों में सांस की बीमारियों के प्रति संवेदनशील बनाती है।

सस्पेंडेड पार्टिकुलेट मैटर (SPM)

कभी-कभी हवा में धुआं-धूल वाष्प के कण लटके रहते हैं। यही धुंध पैदा करते हैं तथा दूर तक देखने की सीमा को कम कर देते हैं। इन्हीं के महीन कण सांस लेने से जीवों के फेफड़ों में चले जाते हैं, जिससे श्वसन क्रिया तंत्र प्रभावित हो जाता है।

सल्फर डाइऑक्साइड (SO₂)

यह कोयले के जलने से बनती है। विशेष रूप से तापीय विद्युत उत्पादन तथा अन्य उद्योगों के कारण पैदा होती है। यह धुंध, कोहरे, अम्लीय वर्षा को जन्म देती है और तरह-तरह की फेफड़ों की बीमारी पैदा करती है।

वायु प्रदूषण के प्रभाव

वायु प्रदूषण मनुष्य के स्वास्थ्य पर निम्न हानिकारक प्रभाव डालता है।

1. प्रदूषित वायु से श्वसन तंत्र प्रभावित होता है। अस्थमा, श्वसनीशोध, गले का दर्द, निमोनिया जैसे श्वसन रोगों इसी के प्रतिफल हैं।
2. प्रदूषण के कारण कैंसर (विशेषकर फेफड़े का कैंसर), हृदय रोग, उच्च रक्त चाप जैसी बीमारियां भी बड़े पैमाने पर हो रही हैं।
3. वायु में मिला कार्बनमोनो-ऑक्साइड (CO) रक्त में प्रवेश कर जाता है और तत्काल ऑक्सीजन का स्थान ले लेता है। यह हीमोग्लोबिन से मिलकर कार्बोक्सि हीमोग्लोबिन का निर्माण करता है जो शरीर के सभी महत्वपूर्ण अंगों को नुकसान पहुंचाता है।
4. वायु प्रदूषण के कारण शरीर के महत्वपूर्ण अंग दिल और मस्तिष्क प्रभावित होते हैं और दिल का दौरा पड़ने की घटनाओं में भी वृद्धि होती है।
5. सीसा, पारा और कैडमियम के प्रभाव के कारण रक्तचाप बढ़ सकता है तथा अनेक प्रकार के हृदय रोग हो सकते हैं। कैंसर, हृदय रोग, मधुमेह आदि के लिए वायुमंडल में सल्फर डाई-ऑक्साइड और नाइट्रोजन डाई-ऑक्साइड की अधिकता को भी जिम्मेदार ठहराया जा सकता है। सल्फर डाई-ऑक्साइड से एम्फायसीमा नामक रोग भी हो सकता है।
6. मानव तथा अन्य प्राणियों के समान पौधे भी वायु प्रदूषण से प्रभावित होते हैं। इससे पौधों की वृद्धि प्रभावित तो होती ही है, उनसे होने वाला उत्पादन भी घट जाता है।
7. वायु प्रदूषण की वजह से स्मारकों, निर्जीव पदार्थों और मूर्तियों को भी नुकसान पहुंचता है। मथुरा रिफाइनरी से निकलने वाले प्रदूषकों के कारण ताजमहल और मथुरा के प्राचीन मंदिर प्रभावित हो रहे हैं। उसी प्रकार दिल्ली रेलवे स्टेशन के इंजनों के धुएं तथा इंद्रप्रस्थ बिजली के घर के कोयले की राख से लाल किले के पत्थर प्रभावित हो रहे हैं।

वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय:

वायु प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए समग्र रूप से निम्न प्रयास किए जाने चाहिए।

1. औद्योगिक विकास के साथ ही वायु प्रदूषण के दुष्परिणामों को मद्दे नजर रखते हुए औद्योगिक प्रदेश के चारों ओर हरित पट्टी का विकास किया जाना चाहिए।
2. वाहनों का इंजन पुराना नहीं होना चाहिए तथा वाहनों से उत्पन्न धुएं पर छलनी तथा प्रश्च ज्वलक लगाया जाए। वाहनों में उपयोग में लिया जाने वाला डीजल संयोजी पदार्थों के मिश्रणयुक्त होना चाहिए।

3. घरेलू ईंधन के रूप में धुआं रहित ईंधन जैसे- हीटर, कुकिंग गैस, कुकिंग रेंज इत्यादि का प्रयोग किया जाना चाहिए, जिससे घरेलू स्रोतों से होने वाले वायु प्रदूषण से मुक्ति मिल सके।
4. परंपरागत ईंधन का उपयोग नियंत्रित सीमा में किया जाए तथा 'धूम रहित' चूल्हे का प्रयोग करना चाहिए।
5. वायु प्रदूषण के प्रति जनता को सचेत करके इसके हानिकारक दुष्परिणामों के बारे में जानकारी दी जानी चाहिए, जिसके अंतर्गत मानव शरीर पर पड़ने वाले घातक प्रभावों से आम जनता को परिचित कराया जाए। आम नागरिक के अतिरिक्त सरकारी संस्थानों तथा कर्मचारियों, अधिकारियों, राजनीतिज्ञों तथा उद्योगपतियों को भी वायु प्रदूषण के घातक परिणामों की जानकारी देनी चाहिए।
6. प्राणघातक प्रदूषण करने वाली सामग्रियों तथा तत्वों के उत्पादन एवं उपभोग पर तुरंत रोक लगानी चाहिए। जैसे ओजोन परत को हानि पहुंचाने वाली गैसों क्लोरो फ्लोरो-कार्बन आदि के उपभोग एवं उत्पादन में भारी कटौती की जानी चाहिए।
7. वनोन्मूलन को नियंत्रित करके वनरोपण के कार्य को तीव्र करना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुसार यदि किसी क्षेत्र के 33 प्रतिशत या इससे अधिक भाग पर वनावरण है तो प्रदूषण की तीव्रता परिलक्षित नहीं होती है।
8. वाहनों में सी0एन0जी0 ईंधन व यूरो-1 व यूरो-2 मानकों का कड़ाई से पालन होना चाहिए।
9. 'वायु प्रदूषण अधिनियम 1981' का कठोरता से पालन होना चाहिए।
10. यदि कोई नागरिक अथवा संस्था प्रदूषण संबंधी कोई शिकायत करता है तो उसे गुप्त रखते हुए उस पर राज्य प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रक मंडल द्वारा एक निश्चित अवधि कमे कार्रवाही करनी चाहिए और उसे सार्वजनिक करना चाहिए।

5.2.2 जल प्रदूषण :

जल एक प्रकृति प्रदत्त उपहार है। जल आर्थिक, सांस्कृतिक और जैविक दृष्टि से पृथ्वी का उपयोगी संसाधन है। यह एक मात्र ऐसा प्राकृतिक संसाधन है जिस पर मानव सभ्यता पूरी तरह आश्रित है। जल ही जीवन है और जब तक जल है, सिर्फ तक तक ही जीवन है। इसीलिए अगर जल का संकट है तो जीवन पर भी संकट छाएगा। यही कारण है कि यूनेस्को के महासचिव कोफी अन्ना के अनुसार: "यदि जल के स्रोतों और परिस्थितियों का सही तरीके से प्रबंध नहीं किया गया तो वर्ष 2025 तक विश्व की दो तिहाई जनसंख्या को जल की भीषण कमी का सामना करना पड़ेगा।" इसी कारण संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस वर्ष के "विश्व जल दिवस 22 मार्च, 2002" के लिए "विकास के लिए जल" का नारा दिया है।

जल प्रदूषण का आशय:

शुद्ध जल मानव के लिए एक आधारभूत आवश्यक प्राकृतिक संसाधन है, किंतु इसमें अवांछित बाह्य पदार्थों के सम्मिलित होने से अवनति आ रही है। सामान्यतः स्वच्छ जल में संतुलित सीमा से अधिक मात्रा में अवांछित तत्वों के समावेश के कारण उसका वास्तविक स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, ऐसे जल को 'प्रदूषित जल' कहते हैं। अर्थात् यदि किसी बाहरी तत्व की उपस्थिति से, जब जल के भौतिक व रासायनिक गुणों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन होता है तो वह परिवर्तन जल प्रदूषण कहलाता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (1996) के अनुसार - 'प्राकृतिक व कृत्रिम स्रोतों से उत्पन्न अवांछित बाह्य पदार्थों के कारण जल प्रदूषित हो जाता है तथा वह विषाक्तता तथा ऑक्सीजन की सामान्य स्तर से कम मात्रा के कारण जीव-जंतुओं के लिए हानिकारक हो जाता है। इसके कारण कई प्रकार के संक्रामक रोगों का प्रसार होने लगता है।'

जल की गुणवत्ता के मानव :

जल एक ऐसा रंगहीन द्रव है जो हाइड्रोजन का मोनो आक्साइड होता है। H_2O के सूत्र के द्वारा इसके संगठन को दर्शाया जाता है। जल का अधिकतम घनत्व 4° सेंटीग्रेट पर होता है और हिमांक बिंदु 0° सेंटीग्रेट एवं क्वथनांक 100° सेंटीग्रेट पर होता है।

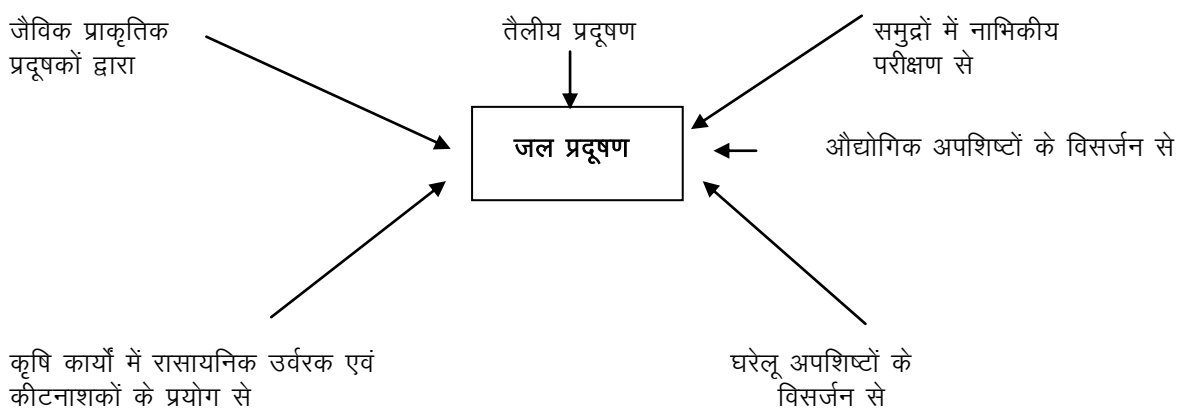
विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) 1971 के अनुसार जल की गुणवत्ता के मानक -

(क) भौतिक मानक : विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार पेयजल स्वच्छ, शीतल स्वादयुक्त तथा गंध रहित हो।

(ख) रासायनिक मानक : इसके बारे में विश्व स्वास्थ्य संगठन का मत है कि पेयजल का pH का मान 7 व 8.5 के मध्य हो, और उसमें निम्नलिखित से अधिक अपद्रव्यताएं नहीं होनी चाहिए।

सारणी 2.4
जल की गुणवत्ता

क्र०सं०	अपदृश्य	उच्चतम निर्धारित सीमा मिलीग्राम/लीटर
1.	कुल ठोस पदार्थ	500
2.	संपूर्ण कठोरता	1500
3.	सल्फेट (SO ₄)	200.00
4.	मैगनेशियम (Mg)	30.00
5.	क्लोरोइड्स (Cl ₂)	200.00
6.	कैल्शियम (Ca)	75.00
7.	लौह (Fe)	0.10
8.	जिंक (Zn)	5.00
9.	तांबा (Cu)	0.05
10.	मैंगनीज (Mn)	0.05
11.	साइनाइड (Cn)	.05
12.	आर्सेनिक (As)	0.05
13.	सीसा (Pb)	0.05
14.	कैडमियम (Cd)	0.005
15.	पारा (Hg)	0.001
16.	फिलोनिक पदार्थ	0.001



चित्र -1 – जल प्रदूषण के विभिन्न स्रोत

जल प्रदूषण के कारण:

जल प्रदूषण के निम्न कारण सामान्यतः देखे जा सकते हैं।

1. साबुन एवं डिटर्जेंट पदार्थों का जल स्रोतों में मिलने से।
2. चिकनाई युक्त पदार्थ, तेल एवं पेट्रोलियम पदार्थों का जल स्रोतों में मिलना।

3. फैक्ट्री एवं उद्योगों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ, रासायनिक विषाक्त तत्व आदि का जल स्रोतों में मिश्रण।
4. उर्वरक एवं कीटनाशक पदार्थों का जल स्रोतों में मिश्रण।
5. आणविक ऊर्जा एवं पावर हाउस से निकला उष्ण जल तथा आणविक अवशिष्ट पदार्थों का जल स्रोतों में मिश्रण।
6. मानव व पशु, मल-मूत्र आदि का जल स्रोतों में मिश्रण।
7. सड़े-गले आहार, फल, सब्जी, पेड़-पौधे तथा अन्य कार्बनिक एवं अकार्बनिक पदार्थों का जल स्रोतों में मिश्रण।
8. जल भंडारण स्थलों की गंदगी एवं नियमित स्वच्छता का अभाव।
9. अपद्रव्य पदार्थों का जल स्रोतों में मिश्रण।
10. जल स्रोतों का सार्वजनिक स्नान तथा आमोद-प्रमोद इत्यादि हेतु प्रयोग।

जल प्रदूषण का प्रभाव:

जल प्रदूषण के कारण निम्न रोग उत्पन्न होते हैं।

1. विषाणुजन्य रोग : पीलिया, पोलियो, डेंगू आदि।
2. जीवाणुजन्य रोग : हैजा, टायफाइड, पेचिश, अतिसार आदि।
3. प्रोटोजोआजन्य रोग : अमिबारुग्णता, जिয়ার्डिया रुग्णता आदि।
4. कृमिजन्य रोग : गोल कृमि, कृषाकृमि, सूत्रकृमि आदि।
5. लेप्टोस्पाइरा रुग्णता : वेल्स रोग।

जल प्रदूषण से अभिप्राय जल निकायो जैसे कि झीलों, नदियों, समुद्रों और भूजल के पानी के संदूषित होने से है। जल प्रदूषण, इन जल निकायों के पादपों और जीवों को प्रभावित करता है और सर्वदा यह प्रभाव न सिर्फ इन जीवों या पादपों के लिए अपितु संपूर्ण जैविक तंत्र के लिए विनाशकारी होता है।

जल प्रदूषण का मुख्य कारण मानव या जानवरों की जैविक या फिर औद्योगिक क्रियाओं के फलस्वरूप पैदा हुए प्रदूषकों को बिना किसी समुचित उपचार के सीधे जल स्रोतों में विसर्जित कर दिया जाना है।

जल प्रदूषण एक प्रमुख वैश्विक समस्या है। इसके लिए सभी स्तरों पर चल रहे मूल्यांकन और जल संसाधन नीति में संशोधन की आवश्यकता है। क्योंकि जल प्रदूषण के कारण पूरे विश्व में कई प्रकार की बीमारियाँ और लोगों की मौत हो रही हैं। जिसमें 580 लोग भारत के हैं। चीन में शहरों का 90 प्रतिशत जल प्रदूषित होता है। वर्ष 2007 में एक जानकारी के अनुसार चीन में 50 लाख से अधिक लोग सुरक्षित पेयजल की पहुँच से दूर हैं। यह परेशानी सबसे अधिक विकसित देशों में होती है। उदाहरण के लिए अमेरिका में 45 प्रतिशत धारा में बहते जल, 47 प्रतिशत झील, 32 प्रतिशत खाड़ी के जल के प्रति वर्ग मील को प्रदूषित जल के श्रेणी में लिया गया है।

तालिका एक : भारत में जल प्रदूषण से संबंधित कतिपय आंकड़े।

तालिका एक : अपशिष्ट जल

राज्य	प्रथम श्रेणी के नगरों की संख्या	मल व्यवस्था सुविधा विहीन जनसंख्या प्रतिशत	अपशिष्ट उत्पन्न	जल मिलियन लीटर एकत्रित	प्रतिदिन उपचारित
संपूर्ण भारत	142	56.6	7006.74	4306.67	2755.94
चंडीगढ़	1	0.0	90.80	90.80	22.74
दिल्ली	1	25.0	708.24	531.00	444.92
पश्चिमी बंगाल	5	91.6	543.78	61.02	34.05
उत्तर प्रदेश	22	42.3	833.36	575.12	2.72
तमिलनाडु	17	58.9	323.36	159.3	52.98
राजस्थान	7	69.4	195.04	68.96	—

पंजाब	4	53.9	118.15	140.40	27.7
उड़ीसा	4	70.9	74.02	24.82	—

तालिका : दो

राज्य	प्रथम श्रेणी के नगरों की संख्या	मल व्यवस्था सुविधा विहीन जनसंख्या प्रतिशत	अपशिष्ट उत्पन्न	जल मिलियन लीटर एकत्रित	प्रतिदिन उपचारित
मणिपुर	1	100.00	9.84	—	—
महाराष्ट्र	17	45.1	1812.58	1140.40	860.67
मध्यप्रदेश	11	78.6	315.4	118.09	40.86
केरल	5	78.6	154.00	43.12	—
जम्मू कश्मीर	2	100.00	82.26	—	—
कर्नाटक	11	28.6	398.73	398.73	374.19
हरियाणा	2	86.3	14.52	2.83	—
गुजरात	7	26.7	538.18	538.18	521.86
बिहार	11	73.2	309.69	195.93	126.65
असम	1	100.0	272.4	—	—
आंध्र प्रदेश	13	70.4	347.01	254.26	246.29

मापन:

जल प्रदूषण को मापा भी जा सकता है। इसके मापन हेतु कई विधियाँ उपलब्ध हैं।

रासायनिक परीक्षण:

जल के कुछ नमूने लेकर रासायनिक प्रक्रिया द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि उसमें कितनी अशुद्धता है। इसमें मुख्यतः pH, और जीवों द्वारा ऑक्सीजन की आवश्यकता आदि है।

जैविक परीक्षण:

जैविक परीक्षण में पेड़-पौधे, जीव-जंतु आदि का उपयोग किया जाता है। इसमें इनके स्वास्थ्य और बढ़ने की गति आदि को देखकर उनके रहने के स्थान और पर्यावरण की जानकारी मिलती है।

जल प्रदूषण पर नियंत्रण:**जल शोधन:**

जल प्रदूषण पर नियंत्रण हेतु नालों का नियमित रूप से साफ-सफाई करना चाहिए। ग्रामीण इलाकों में जल निकास हेतु पक्के नालियों की व्यवस्था नहीं होती है। इस कारण इसका जल कहीं भी अस्त-व्यस्त तरीके से चले जाता है और कि नदी नहर आदि जैसे स्रोत तक पहुँच जाता है। इस कारण नालियों को ठीक से बनाना और उसे जल के किसी भी स्रोत से दूर रखने आदि का कार्य भी करना चाहिए।

औद्योगिक अपशिष्ट रोकना:

कई उद्योग वस्तु के निर्माणा के बाद शेष बची सामग्री जो किसी भी कार्य में नहीं आती है, उसे नदी आदि स्थानों में डाल देते हैं। कई बार आस-पास के इलाकों में भी डालने पर वर्षा के जल के साथ यह नदी या अन्य जल के स्रोतों तक पहुंच जाता है। इस प्रदूषण को रोकने हेतु उद्योगों द्वारा सभी प्रकार के शेष बचे सामग्री को सही ढंग

से नष्ट किया जाना चाहिए। कुछ उद्योग सफलतापूर्वक इस नियम का पालन करते हैं और सभी शेष बचे पदार्थों का या तो पुनः उपयोग करते हैं या उसे सुरक्षित रूप से नष्ट कर देते हैं। इसके अलावा इस तरह के पदार्थों को कम करने हेतु अपने निर्माण विधि में भी परिवर्तन किए हैं। जिससे इस तरह के पदार्थ बहुत कम ही बचते हैं।

5.2.3 मृदा प्रदूषण:

भूमि समाज के लिए प्रकृति का अनुपम निःशुल्क उपहार है। इसमें सृजन एवं पोषण का सामर्थ्य है इस कारण यह समस्त जीवधारियों के अस्तित्व का आधार है। इसी आधारिक उपादेयता के कारण समाज में भूमि को माता सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। इससे ही अनाज, वनोपज, औषधि, विविध खनिज, जल आदि उपयोगी पदार्थ प्राप्त होते हैं। अतएव इसे 'रत्न प्रसवा' कहा जाता है। पृथ्वी के धरातल के एक-चौथाई भाग पर भूमि है, किंतु उसमें मानव उपयोगी भूमि केवल 4448 लाख वर्ग किलोमीटर है। जनसंख्या वृद्धि से भूमि उपयोग में विविधता एवं सघनता आई है। फलस्वरूप भूमि के भौतिक, रासायनिक या जैविक गुणों में कोई भी अवांछित परिवर्तन, जिसका कुप्रभाव मानव तथा अन्य जीवों पर पड़े या जिससे भूमि की प्राकृतिक गुणवत्ता तथा उपयोगिता नष्ट होती है।

भारत भूमि की शस्य संपदा को अत्यंत संपन्न है। यहां का भौगोलिक क्षेत्र विश्व के समस्त भौगोलिक क्षेत्र का केवल 2.47 प्रतिशत भाग है, जबकि विश्व की समस्त जैविक विविधता का 8 प्रतिशत भाग यहां है। विश्व के जैवविविधता संपन्न कुल 12 प्रमुख क्षेत्रों में से दो उत्तर-पूर्व और पश्चिमी घाट भारत में हैं। भारत भूमि की प्रचुर एवं विविध संपदा इस आकार की विश्व की कई अन्य अर्थव्यवस्थाओं के लिए दुर्लभ है। परंतु आज इस अस्तित्व का आधार ही क्षतिग्रस्त करने वाले विविध कारकों में एक प्रमुख कारक भूमिरक्षण है। इसके लिए तत्काल प्रभावी प्रयास करने की आवश्यकता है।

मृदा प्रदूषण का आशय:

मनुष्य की विविध गतिविधियों अथवा भूमि के दुरुपयोग द्वारा मिट्टी के भौतिक, रासायनिक व जैविक स्थितियों में बदलाव, जिसके कारण मिट्टी की गुणवत्ता व उर्वरता में क्षरण हो जाए, भू-प्रदूषण अथवा मृदा प्रदूषण कहलाता है।

मृदा प्रदूषण, जल व वायु प्रदूषण के इस रूप से भिन्न है कि इसमें पाए जाने वाले प्रदूषक लंबे समय तक विद्यमान रहते हैं। बढ़ते शहरीकरण के कारण भवनों के निर्माण में वृद्धि हुई है और इस कारण कूड़े-कचरे के निस्तारण के लिए उपलब्ध भूमि में कमी हुई है।

मृदा प्रदूषण के कारण:

मृदा प्रदूषण के निम्न कारण हैं—

भूमि प्रदूषण के मुख्य कारण है।

- कृषि में उर्वरकों, रसायनों तथा कीटनाशकों का अधिक प्रयोग।
- औद्योगिक इकाइयों, खानों तथा खादानों द्वारा निकले ठोस कचरे का विसर्जन।
- भवनों, सड़कों आदि के निर्माण में ठोस कचरे का विसर्जन।
- कागज तथा चीनी मिलों से निकलने वाले पदार्थों का निपटान, जो मिट्टी द्वारा अवशोषित नहीं हो पाते।
- प्लास्टिक की थैलियों का अधिक उपयोग, जो जमीन में दबकर नहीं गलती।
- घरों, होटलों और औद्योगिक इकाइयों द्वारा निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थों का निपटान, जिसमें प्लास्टिक, कपड़े, लकड़ी, धातु, कांच, सेरामिक, सीमेंट आदि सम्मिलित हैं।

उपरोक्त कारणों के साथ-साथ वर्तमान में पॉलीथीन अपशिष्ट मृदा प्रदूषण का प्रमुख स्रोत बन गए हैं। इससे सर्वाधिक मृदा प्रदूषण होता है, क्योंकि यह ऐसा तत्व है, जिसका विघटन सैकड़ों वर्षों तक नहीं होता और यह जमीन में अपने मूल स्वरूप में ही बना रहता है। इससे रिसने वाली रसायन मिट्टी तथा जल को प्रदूषित करते हैं।

मृदा प्रदूषण के प्रभाव:

भूमि के विभिन्न स्रोतों से प्रदूषण के कारण मानव एवं जैव समुदाय पर दूरगामी प्रभाव पड़ता है। मृदा प्रदूषण के कारण निम्नांकित प्रभाव देखे जा सकते हैं—

1. शहरी अपशिष्ट से मृदा की गुणवत्ता समाप्त होती है।
2. उद्योगों के अपशिष्टों के कारण भूमि की उर्वरा शक्ति प्रभावित होती है।
3. प्लास्टिक जैसे अपशिष्ट जो भूमि में समाप्त नहीं होते हैं, भूमि के उपजाऊपन को समाप्त करते हैं।

4. रासायनिक उर्वरक आवयक पोषक तत्व प्रदान करते हैं, लेकिन इनके अत्यधिक प्रयोग से मिट्टी के भौतिक व रासायनिक गुणों में भारी परिवर्तन आ जाता है। इसके परिणामस्वरूप मृदा के स्वाभाविक गुण जिनसे उर्वरता बनी रहती है, नष्ट होते जा रहे हैं।
5. मृदा प्रदूषण के व्यापक प्रभाव के कारण ही भूमि में कैल्शियम, मैग्नीशियम, सल्फर, लोहा, तांबा, जिंब, बोरान, मालीब्डेनम, मैगनीज, नाइट्रोजन पोटैशियम व फास्फोरस जैसे आवश्यक तत्वों की मात्रा में गंभीर कमी होती जा रही है।
6. नहरों के कारण भूमिगत जल लवणयुक्त हो जाता है और उसमें क्षार तत्वों की प्रधानता बढ़ जाती है। अर्थात् सेम की समस्या उत्पन्न हो जाती है, सेम की समस्या के कारण नहरों और बांधों के आसपास की भूमि अनुपजाऊ हो जाती है।
7. वर्षा के द्वारा प्रदूषित वायु में उपस्थित SO_2 , सल्फ्यूरिक अम्ल में परिवर्तित होकर भूमि में चली जाती है। यह अम्ल पौधों की विभिन्न जैविक क्रियाओं को प्रभावित करता है।
8. सभी विषैले पदार्थ मृदा प्रदूषण द्वारा खाद्य शृंखला के अंग बन गए हैं। इनसे युक्त भोजन मनुष्य और जानवरों में विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। इसी कारण अमेरिका, स्वीडन, कनाडा, हंबरी व डेनमार्क में CO_2 के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया है।

मृदा अथवा भूमि प्रदूषण से अभिप्राय जमीन पर जहरीले, अवांछित और अनुपयोगी पदार्थों के भूमि में विसर्जित करने से है, क्योंकि इससे भूमि का निम्नीकरण होता है तथा मिट्टी की गुणवत्ता प्रभावित होती है। लोगों की भूमि के प्रति बढ़ती लापरवाही के कारण भूमि प्रदूषण तेजी से बढ़ रहा है।

5.2.4 समुद्री प्रदूषण:

सागरीय जल प्रदूषण:

जीवन को संयत रखने का श्रेय प्राप्त करने वाले महासागर पृथ्वी के धरातल के 71 प्रतिशत क्षेत्रफल को आवृत किए हुए हैं। ये महासागर विश्व की ऑक्सीजन आपूर्त का 70 प्रतिशत सृजित करते हैं। लेकिन वृहद् औद्योगिकरण की प्रवृत्ति से प्रोत्साहित विकसित देशों के औद्योगिक कचरे एवं अपशिष्ट पदार्थों के निक्षेप एवं विशाल तेल टैंकरों से निरसृत तेल का समुद्र में सामुद्रिक पारिस्थितिक तंत्र को भयावह स्थिति में झोंक रहा है। औद्योगिक कचरा, मलमूत्र, कीटनाशक दवाओं एवं उर्वरकों का कृषि क्षेत्रों में विक्षेपण, जीवाश्म ईंधन का कचरा एवं अपशिष्ट पदार्थ तथा अन्य भू-धरातलीय अपशिष्ट, प्रदूषित मलवा एवं पवन प्रवाह जैसे माध्यमों के द्वारा सागर में मिलाए जाने से सामुद्रिक की विशुद्धता में ह्रास हो रहा है।

भू-धरातलीय अशुद्धियों, तटीय एवं गहरे समुद्र तल से निःसृत ज्वालामुखी पदार्थों की अशुद्धियों, सामुद्रिक मृत जीवों, प्लास्टिक जालों तथा सिंथेटिक पदार्थों के निक्षेपण से समुद्र प्रदूषित हो रहे हैं। आणविक एवं रासायनिक परीक्षण, तेल टैंकरों से तले रिसाव, पोताश्रियों पर माल उतारते वक्त जल में गिरने से भी समुद्र प्रदूषित होता है। इसके परिणामस्वरूप अटलांटिक महासागर से चीन सागर तक सभी जगह समुद्र में भारी धातुओं एवं CO_2 जैसे रसायनों के विषैले भंवर बन गए हैं। इसी प्रकार हिंद महासागर के तटीय क्षेत्रों में बसे 95 करोड़ लोगों की बस्तियों में मल-जल के निकास की समुचित व्यवस्था नहीं होने के कारण सारा गंदा जल समुद्र में छोड़ दिया जाता है। भूमध्य सागर के तट पर बसे 10 करोड़ लोग और प्रतिवर्ष यहां आने वाले 10 करोड़ से अधिक पर्यटकों के कारण भूमध्य सागर सर्वाधिक प्रदूषित सागर बन गया है। वस्तुतः विश्व के सभी समुद्र कमोबेश प्रदूषण की चपेट में आ गए हैं।

सागरीय जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव:

जल में प्रदूषक पदार्थों की उपस्थिति से जलीय पादप एवं जंतु तो प्रभावित होते ही हैं मनुष्य भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। वास्तव में संपूर्ण जैव समुदाय को असाध्य क्षति का सामाना करना पड़ता है। सागरीय जल प्रदूषण के दुष्प्रभाव इस प्रकार हैं।

1. विषाक्त रसायनों से प्रदूषित जल के कारण जलीय पौधों एवं जीव-जंतुओं की मृत्यु हो जाती है। नदियों, झीलों, तालाबों व अन्य जलाशयों के प्रदूषित जल द्वारा सिंचाई करने से फसलें नष्ट हो जाती हैं।
2. अत्यधिक प्रदूषित जल के कारण मृदा का भी प्रदूषण हो जाता है, उसकी उर्वरता नष्ट हो जाती है तथा उपयोगी मृदावासी सूक्ष्म जीव मारे जाते हैं।
3. वाहित प्रदूषित जल में कवक, बैक्टीरिया, शैवाल तीव्रता से वृद्धि करते हैं तथा बड़े-बड़े समूहों के रूप में एकत्रित होकर पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।
4. प्रदूषित जल में कोई अधिक हो जाने से सूर्य का प्रकाश गहराई तक नहीं पहुँच पाता है, जिससे अनेक जलीय पौधों की प्रकाश संश्लेषण की क्रिया तथा वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

5. तापीय जल प्रदूषण के कारण जल के सामान्य तापक्रम में वृद्धि होने से पारिस्थितिकी तंत्र का संतुलन बिगड़ जाता है। प्लवक तथा शैवालों की तीव्र वृद्धि होने से जल में ऑक्सीजन की कमी हो जाती है और जीव-जंतु मरने लगते हैं।
6. समुद्रों के तैलीय प्रदूषण से जलीय जंतु विशेष कर मछलियों एवं जलपक्षी मुख्य रूप से प्रभावित होते हैं। वे समुद्र तल पर बिछी तैलीय परत का भेद नहीं कर सकते और उसी से चिपककर मर जाते हैं।
7. उद्योगों से निःसृत औद्योगिक कचरे एवं विषैले रसायनों से हुए प्रदूषित जल को पीकर अनेक पालतू जानवर जैसे गाय, बैल तथा भैंस आदि मर जाती हैं।
8. प्रदूषित जल का सेवन करने से संक्रामक रोगों तथा कई प्रकार के खतरनाक रोगों जैसे- हैजा, पीलिया, टाइफाइड, अतिसार, पेचिस, फेफड़ों का कैंसर तथा पेट का रोग होने लगता है। भारत में 30 से 40 प्रतिशत लोगों की मृत्यु प्रदूषित जल के कारण होती है।
9. अनेक विषैले रासायनिक पदार्थों के अतिरिक्त कुछ रेडियोधर्मी पदार्थ भी जल में उपस्थित रहते हैं, जो जीवों के शरीर में अत्यंत धीमी गति से एकत्रित होते रहते हैं। ये पदार्थ यकृत, गुर्दे तथा मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव डालते हैं।

उपरोक्त दुष्प्रभाव के कारण सागरीय जल प्रदूषण को नियंत्रित करनी की अति आवश्यकता है।

सागरीय जल प्रदूषण नियंत्रण के उपाय:

सागरीय जल प्रदूषण को नियंत्रित करने के उपाय निम्न प्रकार हैं—

1. औद्योगिक इकाइयों को इस बात के लिए मजबूर किया जाना चाहिए कि वे कारखानों से निकलने वाले अपशिष्टों एवं मल-जल को बिना शोधित कर नदियों, झीलों या तालाबों में विसर्जित न करें।
2. देश में इस प्रकार की तकनीक का विकास किया जाना चाहिए ताकि उत्पादकता को प्रभावित किए बिना जल के उपयोग को कम किया जा सके। इससे गंदे जल के बहाव की समस्या अवश्य ही कम होगी और प्रदूषित जल का प्रयोग कम मात्रा में संभव हो सकेगा।
3. नगरों, कस्बों तथा गांवों में शौचालयों की स्थापना भी कराई जानी चाहिए।
4. सरकार को मृतक पशुओं के जलाशयों में विसर्जन पर पूर्ण प्रतिबंध लगाना चाहिए तथा सीवर संशोधन संयंत्रों की व्यवस्था करनी चाहिए।

5.2.5 ध्वनि प्रदूषण

शोर एक अवांछित ध्वनि है। सीमा से अधिक ध्वनि कानों को अच्छी नहीं लगती तथा कुप्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर पड़ता है, इसे 'ध्वनि प्रदूषण' कहते हैं। कोई भी ध्वनि जब मंद होती है तो मधुर लगती है और जब तीव्र होती है तो शोर। ऐसी प्रत्येक ध्वनि जब मानसिक क्रियाओं में विघ्न उत्पन्न करने लगे तो शोर मानी जाती है।

सामान्यतः 90 डेसीबल से अधिक ध्वनि प्रदूषित ध्वनि है। बढ़ते कल कारखानों के विकास, यातायात के अनियमित साधनों, मनुष्यों की बढ़ती आपाधापी से ध्वनि प्रदूषण को जन्म दिया है, जिससे मानसिक क्रियाओं में विघ्न उत्पन्न होने लगा है।

तालिका : एक: ध्वनि तीव्र का मानक स्तर अनुभव।

क्र०सं०	ध्वनि अनुभव	ध्वनि का मान डेसीबल में
1	अत्यधिक कष्टपूर्ण	120 या अधिक
2	कष्टपूर्ण	100-120
3	बहुत ध्वनि	75-100
4	सामान्य ध्वनि	50-75
5	शांत	30-50
6	अत्यधिक शांत	15-30
7	केवल सुनाई देने योग्य	15 से कम

ध्वनि प्रदूषण के स्रोत:

ध्वनि प्रदूषण निम्न स्रोतों से उत्पन्न होता है—

1. प्राकृतिक स्रोत:

प्राकृतिक स्रोत द्वारा उत्पन्न शोर घातक नहीं होता क्योंकि इसकी प्रकृति अस्थायी एवं प्रभाव क्षेत्र व्यापक होता है। बिजली की कड़क, बादलों की घड़-घड़ाहटा तीव्र हवाएँ, आंधी, तूफान आदि इसमें सम्मिलित हैं।

2. मानवीय स्रोत:

मानवीय स्रोत के अंतर्गत उद्योग, वायुयान, मोटर वाहन, रेलगाड़ी, लाऊड स्पीकर, रेडियो, टेलिविजन, चुनाव प्रचार, धार्मिक प्रचार, संगीत के रंगारंग कार्यक्रमों से उत्पन्न ध्वनि सम्मिलित है। विश्व के विकसित राष्ट्रों की भांति भारत में भी महानगरों में तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण परिवहन मार्गों पर वाहनों का दबाव बढ़ा है तथा कारखानों का केंद्रीकरण हो रहा है।

तालिका : दो: रिहाइशी ध्वनि का मानक स्तर जो हानिकारक नहीं (डेसीबल में)

1	ग्रामीण क्षेत्र	25-35
2	उपनगरीय	30-40
3	नगरीय, आवासीय	35-40
4	नगरीय, आवासीय तथा व्यवसायिक	40-50
5	नगरीय	45-55
6	औद्योगिक क्षेत्र	50-60

ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव:

ध्वनि प्रदूषण के निम्न प्रभाव देखे जा सकते हैं।

1. सामान्य से अधिक ध्वनि वार्तालाप में बाधा उत्पन्न करती है।
2. ध्वनि प्रदूषण व्यक्ति की कार्यक्षमता और एकाग्रता को प्रभावित करता है।
3. ध्वनि प्रदूषण के कारण चिड़चिड़ापन, थकान, सिरदर्द जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।
4. अस्पताल और शैक्षणिक संस्थाओं के समीप ध्वनि प्रदूषण होने के कारण मरीजों और छात्रों को परेशानी होती है।
5. उद्योगों में जहाँ मशीनें अत्यधिक ध्वनि प्रदूषण करती हैं वहाँ श्रमिकों के बहरे होने की संभावना होती है।
6. ध्वनि प्रदूषण से हृदय गति बढ़ने, रक्त वाहिनियों का संकुचन, रक्तचाप में परिवर्तन और मांसपेशियों में तनाव जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

नगरीय क्षेत्र में 4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ध्वनि प्रदूषण में वृद्धि हो रही है। 10 लाख व उसकी अधिक जनसंख्या वाले महानगरों में ध्वनि का स्तर 70-90 डेसीबल के मध्य मिलता है। कोयंबटूर, त्रिवेंद्रम, कानपुर, लखनऊ महानगरों में ध्वनि प्रदूषण निरंतर बढ़ता जा रहा है, जिसके कारण मनुष्यों में उच्च रक्तचाप की बीमारियाँ पाई जाती हैं। औद्योगिक श्रमिक शोर जन्य बहरेपन के शिकार हो गए हैं।

तालिका : तीन: विभिन्न ध्वनि स्रोतों से उत्पन्न ध्वनि शक्ति (डेसीबल)में।

ध्वनि स्रोत	ध्वनि शक्ति (डेसीबल)
राकेट इंजन	180
प्रोपलर	150
जेट विमान	140

डिस्कॉ	120
मोटर हार्न	110
भारी ट्रैफिक	90-100
व्यस्त कार्यालय	80
सामान्य ट्रैफिक	70
गलियों का शोर	40-70
घर की बात चीत	30
दीवार घड़ी की टिकटिक	20
पत्तियों की खड़खड़ाहट	10
सुनने की शुरुवात	0

तालिका : चार : ध्वनि स्तर एवं दैनिक प्रभाव

ध्वनि स्रोत	शोर स्तर डेसीबल	उच्चतम सुरक्षित प्रभाव समय
आरा मशीन	115	5 मिनट
डीजल इंजन	104	20 मिनट
समाचार पत्र प्रेस	100	48 मिनट
वैद्युत शक्ति टर्बाइन	100	48 मिनट
पाप संगीत	100	48 मिनट
आटा चक्की	96	2 घंटे
मोटर गाड़ी	95	2.5 घंटे
डिस्को	90	8 घंटे

तालिका – पाँच: मानव जीवन पर पर शोर का प्रभाव।

शोर का स्तर (डेसीबल)	मानव पर शोर का प्रभाव
160 या अधिक	स्थायी बहरापन, एवं अन्य हानियाँ
140	कुछ मिनटों तक सुनने पर कान में दर्द, अस्थायी बहरापन, पागलपन
130-135	नासीर, उल्टी, सुस्ती, इत्यादि
120	केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र पर प्रभाव, मस्तिष्क एवं तंत्रिका तंत्र पर घातक प्रभाव, स्मृति ह्रास, गर्भवति महिलाओं में प्रसव पीड़ा में वृद्धि
110	त्वचोत्तेजन
100	हृदय की धड़कन का बढ़ना, रक्त वाहिनियों का सिकुड़ना, रक्त संचार में कमी, थकान, उच्च रक्त चाप, चिड़चिड़ापन, गैस्ट्रिक अल्सर
90	कान के आंतरिक भाग को क्षति

85	श्रवण दोष, बहरापन
80	सिर दर्द, थकान, तनाव, कार्यक्षमता में ह्रास
60	बेचेनी, मानसिक तनाव, अनिद्रा
10	कोई प्रभव नहीं

ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

ध्वनि प्रदूषण को नियंत्रण करने के लिए जन-चेतना जागृत करने के साथ-साथ निम्न सुझावों को अपनाया जाना चाहिए—

1. उद्योगों में मशीनों का उचित रख-रखाव किया जाना चाहिए।
2. वाहनों के इंजनों को सही स्थिति में रखकर ध्वनि प्रदूषण कम किया जाना चाहिए।
3. आवासीय क्षेत्रों में ध्वनि की सीमा निर्धारित करके उसका कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।
4. राजस्थान ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण अधिनियम 1963 जैसे अधिनियम बनाकर उनका प्रभावी क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।
5. ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण फैलाने वाले प्रसार यंत्रों (लाउड स्पीकर) आदि का सीमित और कम आवाज रखकर प्रयोग में किया जाना चाहिए। इसके लिए आमजन में चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए।
6. तीव्र ध्वनि उत्पन्न करने वाले पटाखों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
7. तीव्र ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपकरणों के स्थान पर कम ध्वनि वाले उपकरणों को प्रयोग में लाना चाहिए।
8. अस्पताल और शिक्षण संस्थाओं के आसपास ध्वनि की सीमा निर्धारित करके हॉर्न और लाउड स्पीकर आदि पर प्रतिबंध लगा देना चाहिए।
9. अत्यधिक ध्वनि वाले उद्योगों में श्रमिकों को कर्णप्लग उपलब्ध किए जाने चाहिए।
10. यातायात के नियमों का सुचारु रूप से पालन किया जाना चाहिए।

वैध स्थिति

1970 के दशक तक सरकारों ने शोर को पर्यावरणीय समस्या की तुलना में एक 'उपद्रव' के रूप में ही देखा था। अमेरिका में राजमार्ग और वैमानिक शोर-शराबे के लिए संघीय मानक बनाए गए हैं। यहाँ प्रांतों और स्थानीय सरकारों के पास विशेष अधिकार हैं जो भवन निर्माण संहिता, शहरी नियोजन तथा सड़क विकास से संबंधित हैं। कनाडा और यूरोपीय संघ कुछ ऐसे राष्ट्रीय, प्रांतीय या राज्य के कानून हैं जो ध्वनि के खिलाफ हमारी रक्षा करते हैं।

शोर कानून और नियम, नगरपालिका के बीच व्यापक भिन्नता पाई जाती है जो वास्तव में कुछ शहरों में बिल्कुल देखी नहीं जाती है। एक अध्यादेश में उपद्रव वाले किसी भी शोर-शराबे के लिए सामान्य निषेध हो सकता है अथवा दिन के समय कुछ विशेष गतिविधियों के लिए शोर-शराबे के स्तर हेतु विशेष दिशानिर्देश निर्धारित कर सकता है।

5.2.6 ऊष्मीय प्रदूषण

विश्व के सामान्य तापक्रम में होने वाली अवांछनीय वृद्धि जिसका दुष्प्रभाव जीवमण्डल पर पड़े, ऊष्मीय प्रदूषण कहते हैं। वैश्विक तापमानों में निरन्तर वृद्धि ज्वलन्त पर्यावरणीय समस्या के रूप में सामने आयी है।

ऊष्मीय प्रदूषण मुख्यतः प्राकृतिक परिवर्तन है किन्तु अनेक मानवीय क्रिया कलापों से प्रभावित हो रहा है, इसके मुख्य स्रोत निम्न हैं।

1. ग्रीन हाऊस प्रभाव पैदा करने वाली गैसों से विश्व तापमान में वृद्धि जैसे कार्बन डाईऑक्साइड, मिथेन, सी. एफ.सी, नाइट्रस ऑक्साइड, आदि में वृद्धि से।
2. उद्योगों से निकलने प्रदूषक एवं ताप शक्ति गृहों से निसृत ऊष्मा।
3. वाहनों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि से।
4. वनों की अत्यधिक कटाई से।
5. बढ़ते जल प्रदूषण के कारण प्रदूषित जल की सतह पर उपस्थित प्रदूषकों द्वारा ताप का अधिक अवशोषण जलीय तापमान में वृद्धि करता है।
6. ओजोन परत के क्षरण से।

7. वनों की आग, युद्ध में होने वाली बमबारी, परमाणु परीक्षण, ज्वालामुखी उद्गार आदि से।

ऊष्मीय प्रदूषण का प्रभाव

1. जल चक्र में अत्यधिक बदलाव से अकाल, सूखा व बाढ़ जैसे प्राकृतिक प्रकोपों में वृद्धि।
2. हिमानियों के पिघलने की दर तीव्र होने से नदियों के जल स्रोत सूखने के आसार।
3. समुद्रों के जलस्तर में वृद्धि।
4. ओजोन परत क्षरण के कारण पराबैंगनी किरणों का हानिकारक प्रभाव।
5. जलीय तापमान वृद्धि से अनेक जलीय जीव एवं वनस्पति जातियों के लुप्त होने का खतरा।
6. जलवायु परिवर्तन से कृषि उत्पादन के प्रभावित होने का अत्यधिक खतरा।

ऊष्मीय प्रदूषणक नियन्त्रण

पृथ्वी पर बढ़ते ऊष्मीय प्रदूषण को नियन्त्रित करने के निम्न उपाय हैं।

1. ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाली तथा ग्रीन हाऊस गैस उत्पन्न करने वाली गैसों के उत्पादन पर तुरन्त रोक लगाना।
2. ताप वृद्धि करने वाले उद्योगों पर उन्नत तकनीक का प्रयोग कर ताप को नियन्त्रित किया जाए।
3. नगरीय क्षेत्रों में पर्याप्त खुले स्थल रखते हुए वाहनों तथा यातायात में नियन्त्रण।
4. वनों की कटाई पर प्रभावी रोक के साथ अधिकाधिक वृक्षारोपण।
5. झीलों व समुद्र को यथा सम्भव स्वच्छ रखना।
6. परमाणु परीक्षण पर अन्तराष्ट्रीय रोक पर सहमति के प्रयास।

5.2.7 नाभिकीय प्रदूषण : आणविक खतरे

पर्यावरण में रेडियोधर्मी पदार्थों की बहुलता भी पर्यावरण प्रदूषण का एक बहुत बड़ा कारण है। रेडियोधर्मी तत्व जैसे यूरेनियम, थोरियम स्वयं ही विघटित हो जाते हैं, जिससे ऊर्जा का विमोचन होता है। परमाणु शक्ति का यही आधार है। रेडियोधर्मी पदार्थों की क्रियाशीलता से हुए प्रदूषण को 'रेडियोधर्मी प्रदूषण' कहा जाता है। परमाणु बिजली घरों के रियेक्टरों में रेडियोधर्मी पदार्थों का उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है, जिससे ऊर्जा की विशाल मात्रा प्राप्त होती है और अवशेष के रूप में राख बनती है। इसी राख को परमाणु कचरा कहते हैं। इस परमाणु कचरे से भी प्रदूषण फैलता है।

नाभिकीय प्रदूषण का प्रभाव

नाभिकीय प्रदूषण का प्रभाव निम्न रूपों में दिखाई देता है—

1. वंशानुगत विकृति उत्पन्न होती है।
2. गर्भस्थ शिशुओं में जन्म जाती बिमारियाँ होती हैं।
3. शरीर में माइटोसिस क्रिया बंद हो जाती है जिससे रक्त की कमी होती है।
4. इन विकिरणों का प्रभाव मस्तिष्क, आंतों एवं अस्थिमज्जा पर भी होता है।
5. इसी के साथ विकिरण से महिलायें बांझ व पुरुषों में नपुंसकता उत्पन्न होती है।
6. वायु में मौजूद रेडियोएक्टिव कण मनुष्य के श्वसन तंत्र पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालते हैं। इसके अलावा खाद्य श्रृंखला के द्वारा उपभोग के माध्यम से इनका अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ता है।
7. रेडियोएक्टिव विकिरण का मानव स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। परमाणु कचरे से निरंतर हानिकारक विकिरण निकलते हैं जिससे कैंसर जैसे का जन्म होता है।

नाभिकीय प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

रेडियोएक्टिविटी के कुछ हानिकारक प्रभावों के बावजूद नाभिकीय शक्ति व रेडियोएक्टिव पदार्थों के अन्य लाभकारी उपयोग आधुनिक विकास गतिविधियों के महत्वपूर्ण अंग हैं। पर्यावरण सुरक्षा के प्रति सचेत देश भी प्रमुखतः विद्युत उत्पादन के लिए नाभिकीय शक्ति पर निर्भर रहे हैं। विद्युत उत्पादक के अन्य स्रोतों की तुलना में नाभिकीय स्रोत का पर्यावरण पर प्रभाव न्यूनतम होता है, लेकिन पर्यावरण के लिए सुरक्षित बनाने हेतु इस संबंध में कुछ निगरानी व नियंत्रणकारी उपाय करने होंगे।

1. रेडियोएक्टिव प्रदूषकों पर नियंत्रण के लिए सभी विशेष उपाय अपनाने चाहिए और इन सभी उपायों का लक्ष्य यह होना चाहिए कि रेडियोएक्टिव प्रदूषण का स्तर स्वीकृत सीमा से अधिक न हो।

2. ऐसे औद्योगिक अपशिष्ट जिनमें रेडियोएक्टिव तत्व हों, इनको उचित उपचार के पश्चात ही बहिष्कावित करने की अनुमति होनी चाहिए।
3. इस प्रकार की तकनीक विकसित की जानी चाहिए, जिनके द्वारा इन अपशिष्टों का पूर्ण उपचार के बाद उपयोग किया जा सकता है।
4. व्यावसायिक रूप से उपयोग होने वाले विकिरण से अधिक व्यक्ति प्रभावित होते हैं। इसको रोकने के लिए कड़े कदम उठाए जाने चाहिए।
5. रेडियोएक्टिव पदार्थों के साथ यदि विकिरण की मात्रा कम करना असंभव हो तो ऐसे उपाय अपनाने चाहिए कि इस विकिरण से संपर्क अवधि कम से कम हो। कार्य शीघ्र पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं का तेजी से संचालन किया जा सकता है अथवा कर्मचारियों की संख्या बढ़ाई जा सकती है।

अतः इन विनाशकारी हथियारों का पृथ्वी या सागर में कहीं भी परीक्षण नहीं करना चाहिए। मानव समुदाय को इन परीक्षणों के विरुद्ध आवाज उठाते हुए चिर शांति स्थापित करने की दिशा में अपना योगदान देना चाहिए।

5.3 ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन: नगरीय और औद्योगिक अपशिष्ट का कारण, प्रभाव एवं प्रबन्धन

5.3.1 ठोस अपशिष्ट के परिभाषा एवं स्रोत

मानव द्वारा उपयोग के उपरान्त परित्यक्त ठोस तत्वों या पदार्थों को ठोस अपशिष्ट कहते हैं। इसमें विभिन्न प्रकार के डिब्बे, बोतल, कांच, पॉलिथिन बैग, प्लास्टिक सामान, राख, घरेलू कचरा, लोह-लकड़, आदि सम्मिलित होते हैं। जनसंख्या वृद्धि तथा उपभोगवादी जीवनशैली के कारण लगातार ठोस अपशिष्ट पदार्थों की मात्रा में वृद्धि हो रही है जो एक गम्भीर समस्या का स्वरूप लेता जा रहा है। ठोस अपशिष्ट पदार्थों का नियमित संग्रहण व समुचित स्थानों पर भली-भांति प्रतिपादन ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन कहलाता है।

ठोस अपशिष्ट पदार्थों के मुख्य स्रोत हैं।

घरेलू एवं नगरपालिका अपशिष्ट:

घरों से निकलने वाला कूड़ा-करकट तथा सार्वजनिक स्थलों पर एकत्रित कचरा नगर निकायों के लिए एक बड़ी समस्या है। इसमें डिब्बे, बोतल, कांच, पॉलिथिन बैग, प्लास्टिक सामान, राख, घरेलू कचरा, लोह-लकड़, टिन, ब्लेड, कागज आदि सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त पुराने वाहन, टायर, फ्रिज, इलेक्ट्रॉनिक सामान आदि का निस्तारण विकट समस्या है।

औद्योगिक अपशिष्ट:

औद्योगिक इकाइयों द्वारा अनेक प्रकार के अपशिष्ट छोड़े जाते हैं, भूमि और जल प्रदूषण के प्रमुख कारक हैं। चीनी कारखानों से निकलने वाली खोई, तापीय ऊर्जा संयंत्रों से उत्पादित राख, तांबा व एल्यूमिनियम, प्रगलन संयंत्रों से निकलने वाले खतरनाक रसायन, उर्वरक इकाइयों से निकलने वाले अपशिष्ट इसके उपयुक्त उदाहरण हैं।

कृषिजनित अपशिष्ट:

फसल लेने के बाद खेतों में बचे डण्डल, पत्ते, घास-फूस आदि कृषि जनित अपशिष्ट कहलाते हैं। खेतों पड़े रहने वाले ये पदार्थ अधिक समय व अधिक मात्रा में होने पर समस्या पैदा करते हैं।

ठोस अपशिष्ट के अन्य स्रोत:

खनन अपशिष्ट, मृत जानवरों का कंकाल, इमारती पत्थरों की कीटिंग व पॉलिश के दौरान निकलने वाली स्लरी, बुझड़घरों से निकलने वाला अपशिष्ट, अस्पतालों से निकलने वाला बायो मडिकल वेस्ट, पोल्टी फॉर्म का कचरा आदि ठोस अपशिष्ट के अन्य स्रोत हैं।

5.3.2 ठोस अपशिष्ट का प्रबन्धन:

1. ठोस अपशिष्ट का नियमित एकत्रण एवं निस्तारण।
2. विघटनीय एवं अविघटनीय कचरे का पृथक-पृथक संग्रहण जिससे निस्तारण एवं पुनःचक्रण सुविधाजनक हो।
3. किसी भी प्रकार के अपशिष्ट का खुले में विसर्जन न किया जाय।
4. ज्वलनशील अपशिष्ट के निस्तारण हेतु नगर निकायों द्वारा इन्सिनेटर की स्थापना।
5. ठोस अपशिष्ट का समुचित निस्तारण न करने वाली संस्था व व्यक्तियों पर कठोर कार्यवाही।

5.4 प्रदूषण की रोकथाम में व्यक्ति की भूमिका

मानव जीवन में पर्यावरण का विशेष महत्व है। उसका प्रभाव होता है। मानव संस्कृति और मानव जीवन के विकास, उन्नयन में सबसे महत्वपूर्ण योगदान पर्यावरण का ही रहता है। पर्यावरण की महत्ता, संवर्धनशीलता और उपयोगिता को समझने के लिए कहा जाता है कि जैसे जलचर बिना जल के जीवित नहीं रह सकते। उसी प्रकार उपयुक्त पर्यावरण के बिना प्रत्येक जीव, प्राणी, वनस्पति नहीं रह सकते हैं। भिन्न स्थानों और प्रदेशों में पर्यावरण भिन्न स्वरूपकों में दिखता और मिलता है। हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में पर्वत, चट्टानें, वनस्पति, जंगल और अनेक प्रकार के जीव-जंतु हैं तथा सर्दी, बर्फ व पानी की बहुतायत है, तो रेत, ताप, ऊष्मा, मरुस्थल का आधिक्य राजस्थानी क्षेत्रों में है। पर्यावरण का निर्माण सम्मिलित रूप से स्थान विशेष में प्राप्त होने वाली सभी तत्व तथा वहां की जलवायु मिलकर ही करते हैं। ऋषि-मुनि वैदिक युग में पर्यावरण के महत्व को अच्छी तरह से जानते और पहचानते थे, यही कारण है कि यदि ग्रंथों में प्रकृति और उसके घटक तत्वों के प्रति विशेष सम्मान और पूजा का भाव परिलक्षित होता है और ऐसी ही प्रेरणा संप्रेषित होती है। नीति-नियम भी उन दिनों तदनु रूप ही बनाए जाते थे। पर्यावरण की तरफ पश्चिमी जगत का ध्यान आकर्षण पिछले कुछ दशकों में ही हुआ है। प्रारंभ में पारिस्थितिकी यानि भौगोलिक पर्यावरण तक ही सीमित रहा था। उस समय मृदा, जल, और वायु को ही मुख्यतः पर्यावरण के अंतर्गत माना जाता था। बाद में पर्यावरण के अर्थ को विस्तृत करते हुए नई परिभाषा दी गई। मानव पारिस्थितिकी या ह्यूमन इकोलॉजी का निर्माण 'मानव के चारों ओर के भौतिक एवं सांस्कृतिक घेरे से संपन्न होने वाली क्रियाओं, परिवर्तनों, अंतः क्रियाओं और तदजनित प्रभावों से ही होता है।' इस परिभाषा के तहत मानव समुदाय के रहन-सहन, खान-पान के साथ विचारों को भी माना जाने लगा।

प्रदूषण की रोकथाम में सामान्य व्यक्ति की भूमिका: निम्न प्रकार से हो सकती है।

1. अपने को प्रकृति का अभिन्न अंग समझकर जीवन के आधारभूत तत्वों जैसे भूमि, जल तथा वायु की पवित्रता बनाए रखकर।
2. प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार को सीमित एवं नियोजित करे।
3. पृथ्वी पर गहराते जल संकट को देखते हुए जल के दुरुपयोग व अपव्यय को रोकना और अधिका-अधिक जल संचय द्वारा।
4. परम्परागत ऊर्जा के स्थान पर वैकल्पित ऊर्जा स्रोत का उपयोग करके।
5. वाहनो की नियमित जांच व उचित रख-रखाव कर वायु प्रदूषण नियन्त्रण करके।
6. कृषि में जैविक खाद व जैव कीटनाशकों का प्रयोग कर।
7. वनों की रक्षा व वनीकरण करके।
8. ध्वनि विस्तारक यन्त्रों का प्रयोग सीमित मात्रा में आवश्यकतानुसार करके।
9. धरेलू कूड़ा-करकट का उचित निस्तारण द्वारा।
10. सी.ए.सी उत्सर्जन करने वाले उपकरणों की संख्या सीमित करके।
11. दैनिक जीवन में पॉलिथनी थैलियों के स्थान पर कागज व कपड़े की थैलियों का उपयोग कर।
12. पर्यावरण संरक्षण तथा प्रदूषण नियन्त्रण कार्यक्रमों में सहयोग करके आदि।

5.5 प्रदूषण सम्बन्धी केस अध्ययन

भारत में जल प्रदूषण की समस्या:

वर्तमान युग में पर्यावरण प्रदूषण एक विश्वव्यापी समस्या है। जनसंख्या के बढ़ते दबाव और तीव्र गति से बढ़ते औद्योगिकरण के कारण प्राकृतिक एवं समाज वैज्ञानिकों में मानव स्वास्थ्य और पारिस्थितिक संतुलन को लेकर चिंता व्याप्त है। भारत में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का जन्म न केवल नगरीकरण, औद्योगिक विकास और कृषि के आधुनिकरण के कारण हुआ है, अपितु इसके लिए दयनीय सामाजिक, आर्थिक दशाएँ भी उत्तरदायी हैं।

भारत में लगभग 6,000 किलोमीटर लंबी तटीय सीमा से लगे समुद्र में प्रदूषण का तीव्र प्रसार हो रहा है। वर्तमान में भारत की अधिकांश नदियाँ, झीलें तथा जलाशय ही नहीं, भूमिगत जल भी प्रदूषण की चपेट में आ गए हैं। भारत में 70 प्रतिशत जल प्रदूषित जल है। राजस्थान में एक बड़े क्षेत्र में फ्लोराइड युक्त प्रदूषित जल के कारण यहाँ की पीढ़ी दर पीढ़ी अस्थि रोग से ग्रसित है, वहीं जोधपुर व पाली क्षेत्रों में करीब 1,500 कपड़ा रंगाई-छपाई केंद्रों से निकले प्रदूषित जल के कारण स्थानीय क्षेत्रों के कुओं का जल अत्यंत प्रदूषित व रंगीन हो गया है। उत्तर प्रदेश व बिहार के कुछ स्थानों में खतरनाक रेडियोधर्मी तत्व भूमिगत जल में पाए गए हैं।

कागज, चमड़ा, रासायनिक खाद्य, औषधियाँ निर्माण करने वाले उद्योग प्रदूषित जल के साथ सीसा, जिंक, मैग्नीज के कणों, अमोनियम साइनाइड, फिनोल आदि के अवशेषों को जमीन पर तथा नदियों में बहा देने से जमीन

की उर्वरा शक्ति क्षीण होने के साथ-साथ नदियों का जल भी प्रदूषित होता जा रहा है। उद्योगों के अवशिष्ट, घरेलू गंदा जल, खेतों में सिंचाई के बाद निकला जल तथा भूमि का कटाव, नदियों में सामूहिक स्नान, धार्मिक अनुष्ठान मवेशियों के स्नान, नदियों के किनारे मुर्दों को जलाने तथा छोटे बच्चों व मवेशियों के शवों को नदी में डालने से प्रदूषण होता है। सामूहिक स्नान के समय रोगों को फैलाने वाले बैक्टीरिया, वायरस और कवक पानी में फैल जाते हैं। धार्मिक अनुष्ठानों के समय नदी में फूल-पत्तियों, दूध, दही, सिर के बाल, आटा, अस्थियां और राख डाले जाते हैं, परिणामस्वरूप नदियों के जल प्रदूषण में बढ़ोत्तरी होती है।

भारत में 13 बड़ी नदियाँ लगभग 80 प्रतिशत जनतों को प्रभावित करती है। मानव की भोगवादी सभ्यता ने नदियों को प्रदूषित करके गंदे नालों में परिवर्तित कर दिया है।

देश की प्रमुख झीलें भी प्रदूषण से ग्रस्त हैं। नैनीताल की प्रसिद्ध नैनीझील आसपास के 14 नालों से लाई गई गंदगी, गाद व मिट्टी के भराव के फलस्वरूप अपनी प्राकृतिक सुंदरता खो रही है। धरती का स्वर्ग व पर्यटकों का ध्यान बरबस आकर्षित करने वाली यह झील 24 किलोमीटर से सिकुड़कर 10 वर्ग किमी. के दलदल तक सीमित रह गई है। इसी प्रकार कलकत्ता की प्रसिद्ध साल्ट लेक जो 80 वर्ग किलोमीटर में फैली थी, आज लगभग आधी रह गई है। हैदराबाद में स्थित हुसैन सागर झील 300 कारखानों एवं 50,000 की जनसंख्या की गंदगी व नालों के कारण प्रदूषित है। राजस्थान की लगभग सभी झीलें प्रदूषित हैं और प्रसिद्ध सांभर झील अत्यधिक नमक विदोहन व प्रदूषण से प्रभावित है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड ने राज्यों के प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों से परामर्श करके 22 ऐसे गंभीर रूप से प्रदूषित क्षेत्रों की पहचान की है, जिनमें प्रदूषण नियंत्रण हेतु विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

5.6 आपदा प्रबंधन: बाढ़, भूकम्प, चक्रवात और भूस्खलन

बाढ़, भूस्खलन, भूकंप एवं चक्रवात प्राकृतिक घटनाएँ हैं, किंतु मानवीय गतिविधियों एवं क्रिया कलापों के कारण इन आपदाओं की पुनरावृत्ति की दर में बढ़ोत्तरी हुई है।

(1) बाढ़:

सामान्य रूप से नदियों में क्षमता से अधि पानी आ जाने से किनारे तोड़कर अथवा बांध तोड़कर, जब पानी शहरों, कस्बों, खेतों में चला जाता है तो इसे बाढ़ कहते हैं। विश्व के कुल क्षेत्रफल का 3.5% बाढ़ से प्रभावित मैदानी क्षेत्र जिस पर विश्व की 16% जनसंख्या रहती है।

बाढ़ के मुख्य कारण प्राकृतिक है जैसे कम समय में, एक ही क्षेत्र में लगातार अधिक वर्षा अथवा लंबे समय तक घनघोर वर्षा, नदी के प्रवाह में वर्षा के कारण अचानक ऊफान आना इत्यादि।

बाढ़ के मानवजनित कारकों में बड़ी नदियों के आस-पास के वनों की अंधा-धुंध कटाई, जिससे भूमि की जल अवशोषण क्षमता में कमी आ जाती है, जिससे जल प्रवाह की रुकावट भी समाप्त हो जाती है एवं वर्षा का सारा जल तेजी से नदियों की ओर प्रवाहित होकर उनके स्तर में बढ़ोत्तरी कर देता है। इसी प्रकार शहरीकरण, पुल, बांध, नहरें इत्यादि को अवैज्ञानिक तरीकों से बनाने के कारण भी बाढ़ जैसी गतिविधियों में बढ़ोत्तरी होती है। कई बार बांधों व नहरों के अचानक टूट जाने के कारण भी बाढ़ आती है। हमारे देश में उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल के गांगेय क्षेत्र व उत्तर पूर्व के ब्रह्मपुत्र क्षेत्र बाढ़ के लिए काफी संवेदनशील क्षेत्र माने जाते हैं, जहाँ प्रतिवर्ष बाढ़ का प्रकोप होता है।

बाढ़ से इन क्षेत्रों में जो क्षति होती है वह देश में हुई कुल क्षति का लगभग 62% है। देश में प्रतिवर्ष बाढ़ से सार्वजनिक संपत्ति की क्षति लगभग 950 करोड़ रुपए होती है। जिससे लगभग 500 लोगों एवं 1 लाख पशुओं की मृत्यु होती है।

बाढ़ का प्रबंधन:

बाढ़ ग्रसित क्षेत्र अधिकतर ज्ञात होते हैं। अतः बाढ़ प्रबंधन हेतु उन क्षेत्रों में स्थाई दीर्घकालीन योजनाओं की आवश्यकता है। जिस प्रकार राष्ट्रपति श्री अब्दुल कलाम द्वारा देश देश की प्रमुख नदियों को जोड़ने की योजना प्रस्तावित की गई है, जिस पर कार्य आरंभ करने हेतु वैज्ञानिकों की समिति गठित हो चुकी है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य ही यह है कि प्रतिवर्ष कहीं बाढ़ तो कहीं सूखे की समस्या उत्पन्न न हो। बाढ़ क्षेत्रों में अधिक वृक्षारोपण व वन संरक्षण उपायों को बढ़ावा देना चाहिए। तथा नदियों के निचले भाग में अभियांत्रिकी प्रयोगों के द्वारा बाढ़ नियंत्रण कुंड बनाकर नदी का उफान कम किया जा सकता है। नदियों के किनारे ऊँचे करके भी बाढ़ पर नियंत्रण किया जा सकता है।

अस्थाई उपायों में मानसून आने से पूर्व बाढ़ नियंत्रण केंद्रों की स्थापना, मौसम विभाग द्वारा संभावित इलाकों में चेतावनी, जन-धन की रक्षा हेतु उपाय, संचार व्यवस्था का आधुनिक प्रबंधन इत्यादि सम्मिलित है।

(2) भूकंप:

मुख्य रूप से प्राकृतिक कारणों के कारण भूमि में उत्पन्न हुई हलचल भूकंप कहलाता है। भूगर्भ में चट्टानीय विस्तार के कारण पैदा होने वाली हलचल एक बहुत बड़ी प्राकृतिक आपदा है। एवं इसकी तीव्रता रिक्टर पैमाने पर मापी जाती है।

भूकंप जिस बिंदु से शुरू होता है अर्थात् जहाँ से उत्पन्न होता है वह उसका केंद्र माना जाता है। इस जगह भूकंप की तीव्रता सर्वाधिक होती है एवं जैसे-जैसे केंद्र से दूरी बढ़ती जाती है भूकंप का प्रकोप कम होता जाता है, चूंकि तीव्रता में कमी आती जाती है।

भूकंप के मुख्य कारण प्राकृतिक ही हैं, किंतु कई मानवीय गतिविधियाँ भी इसमें अपनी अहम भूमिका निभाती हैं जैसे- बड़े-बड़े बांधों के निर्माण से भूमि में हलचल पैदा होना, अथवा खाली पड़ी खदानों में भारी मात्रा में कचरे आदि को डालने से अथवा पानी के धीरे-धीरे जमीन में रिसने की प्रक्रिया कई वर्षों तक चले तो भी एक असंतुलन सा उत्पन्न हो जाता है। एवं भूकंप जैसी घटनाओं में वृद्धि होती है।

भूकंप से होने वाली क्षति भूकंप की तीव्रता पर निर्भर करती है। भारत में 26 जनवरी, 2000 को लातूर कच्छ से शुरू होकर गुजरात में तबाही मचाने वाले भूकंप की विनाशलीला को शायद ही भारत कभी भूल पाए। वह क्षेत्र आज तक वापस अपनी संतुलन अवस्था प्राप्त नहीं कर पाया है, वहां आज तक छोटे-छोटे झटके आते रहते हैं।

भूकंप के विनाशकारी प्रभावों के रूप में, पहाड़ों से भूस्खलन, प्रचंड बाढ़, शहरों व नगरों की क्षति, मानव निर्मित संरचनाओं की क्षति व जन-धन की अपूरणीय क्षति इत्यादि शामिल है।

भूकंप का प्रबंधन:

1. भूकंप की आशंका वाले क्षेत्रों में खान, बांध बनाना इत्यादि कार्य वैज्ञानिकों की सलाह के बिना नहीं करने चाहिए तथा किसी भी चीज का निर्माण पूरी तरह वैज्ञानिकी तकनीक के अनुसार ही करना चाहिए।
2. भूकंप आशंकित क्षेत्रों में इमारतों का निर्माण आर0सी0सी0 ढांचा बनाकर करना चाहिए। इससे अधिक नुकसान नहीं होता है।
3. प्राकृतिक आपदा प्रबंधन केंद्र तथा प्रशिक्षण आधुनिक तकनीकों से युक्त होना चाहिए।
4. जन-साधारण को भूकंप आने पर, खुले मैदानों की तरफ आ जाना चाहिए तथा यह प्रशासन का दायित्व है कि उस क्षेत्र के लोगों को प्रारंभिक उपायों से अवगत कराएँ।
5. ऊँची इमारतों में कमरों के विभाजन, दरवाजे व खिड़कियाँ हल्की लकड़ी के बने होने चाहिए।
6. आपदा के समय सामुदायिक कार्यों द्वारा मदद को प्राथमिकता देनी चाहिए।

(3) चक्रवाती तूफान:

सामान्य रूप से गर्म उष्णकटिबंधी समुद्र के कम दबाव वाले क्षेत्रों में चक्रवाती तूफान की उत्पत्ति होती है। इसे पश्चिम उत्तर प्रशांत महासागर में टाइफून उत्तर अटलांटिक और मैक्सिको की खाड़ी में हरिकेन व बंगाल की खाड़ी व अरब सागर में चक्रवात या साइक्लोन कहते हैं।

सामान्यतः चक्रवात की सामान्य गति 100 किलोमीटर प्रति घंटा होती है। किंतु कभी-कभी यह प्रलयकारी हो जाता है व समुद्र किनारे के गांवों, शहरों, वन, जन, धन की अत्यधिक क्षति का कारण बनता है। इसके प्रबंधन हेतु रेडार व भू-स्थैतिक निरीक्षक उपग्रहों द्वारा सूचाओं के आधार पर समय पूर्व जन सामान्य को चेतावनी, मछुआरों को समय पूर्व सूचना का इंतजाम, प्रशासन द्वारा क्षेत्र को खाली करवाना आदि आवश्यक सावधानियाँ हैं। इसके साथ ही ऐसे क्षेत्रों में अन्न भंडार, दवा उपलब्धता, जन साधारण को आपदा संबंधी ज्ञान इत्यादि का भी पूरा प्रबंधन होना चाहिए।

समुद्र के किनारों पर वनों के विकास द्वारा, वायु के वेग को रोका जा सकता है।

(4) भूस्खलन:

पर्वतीय क्षेत्रों में विशाल चट्टानों के खिसक कर भूमि पर आ जाने को भूस्खलन कहते हैं। भूस्खलन एक प्राकृतिक आपदा है, किंतु कई मानवीय गतिविधियाँ जैसे खनन के समय ढाल का ध्यान न देना, पहाड़ी इलाकों में बांधों का निर्माण इत्यादि भी इसमें योगदान देते हैं।

प्राकृतिक रूप से भूकंप के कारण भी चट्टानें ढीली होकर गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव द्वारा नीचे की ओर खिसक जाती है।

भारत में कुमाऊँ की पहाड़ियाँ, जम्मू कश्मीर, पश्चिमी घाट, दक्षिण भारत में नीलगिरी की पहाड़ियाँ उत्तर पूर्व के पहाड़ी भाग आदि में भूस्खलन की घटनाएँ होती हैं। इसके प्रबंधन हेतु घनघोर वर्षा के दिनों में जनमानस को भूस्खलन की चेतावनी, इन क्षेत्रों में बड़े बांधों के निर्माण को मान्यता न देना, ढालों की सुरक्षा हेतु उन पर वनस्पति को उगाना आदि प्रयासों को अपनाना चाहिए।

आपदा होने पर प्रबंधन केंद्रों पर आधुनिक उपकरणों की व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे मुख्य मार्ग से चट्टानें हटाई जा सकें। परिवहन फिर से सुचारु रूप से चल सकें, फंसे लोगों को सुरक्षित रूप से बाहर निकाला जा सके। प्रशासन को आपदा ग्रसित लोगों हेतु जनसहयोग से भोजन, शरण, स्वास्थ्य आदि की उचित व्यवस्था भी करनी चाहिए।

प्रश्न (Question)

- प्रश्न 1. वायु प्रदूषण से क्या तात्पर्य है? वायु प्रदूषकों के प्रकार बताइए।
- प्रश्न 2. वायु प्रदूषण के प्रभावों व नियंत्रण के उपायों पर टिप्पणी लिखिए।
- प्रश्न 3. जल प्रदूषण क्या है? एवं इसके कारणों पर टिप्पणी लिखिए।
- प्रश्न 4. जल प्रदूषण के प्रभावों व नियंत्रण के उपायों पर प्रकाश डालिए।
- प्रश्न 5. मृदा प्रदूषण व सके होने के कारण समझाइए।
- प्रश्न 6. शोर प्रदूषण क्या है? इसके क्या कारण हैं?
- प्रश्न 7. तापीय प्रदूषण क्या है? इसके कारणों व प्रभाव पर टिप्पणी लिखिए।
- प्रश्न 8. नाभिकीय प्रदूषण को संक्षेप में समझाइए।
- प्रश्न 9. बाढ़, भूकंप, चक्रवात व भूस्खलन के प्राकृतिक व मानव-जनित पर विस्तार को विस्तार से समझाइए।
- प्रश्न 10. प्राकृतिक आपदाओं के प्रबंधन पर संक्षिप्त टिप्पणी दीजिए?

इकाई – 6

सामाजिक मुद्दे एवं पर्यावरण

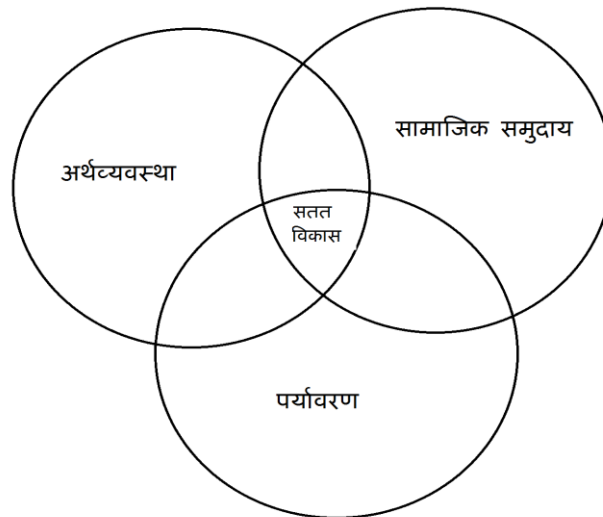
- 6.1** : अनिर्वहनीय से निर्वहनीय तक
- 6.2** : ऊर्जा से सम्बन्धित नगरीय समस्याएँ
- 6.3** : जल संरक्षण, वर्षा जल का संचय तथा जल संभरों का प्रबन्धन
- 6.4** : जनता का पुनर्वास, इनकी समस्याएँ एवं सरकार, केस अध्ययन।
- 6.5** : पर्यावरण सम्बन्धी नैतिकता: समस्या एवं सम्बन्धित समाधान।
- 6.6** : जलवायु परिवर्तन: भूमण्डलीय तापन, अम्लीय वर्षा, ओजोन परत का ह्रास, परमाणु दुर्घटनाएँ एवं विध्वंस, केस अध्ययन।
- 6.7** : बंजर भूमि का उद्धार
- 6.8** : उपभोक्तावाद एवं अपशिष्ट पदार्थ।
- 6.9** : Environmental protection Act.
- 6.10** : वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, 1972
- 6.11** : वन संरक्षण अधिनियम, 1980
- 6.12** : वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981
- 6.13** : जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1974
- 6.14** : पर्यावरण संबंधी कानून लागू करने में आने वाली समस्याएँ
- 6.15** : जन जागरूकता

मानव ने प्रकृति के गोद में जन्म लिया है। पर्यावरण एवं मानव के मध्य अभिन्न सम्बन्ध है। मनुष्य अपनी विभिन्न आवश्यकताओं के पूर्ति के लिए प्रकृति पर निर्भर रहा है, किन्तु विगत शताब्दी से उसने प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक शोषण प्रारम्भ कर दिया। इसके परिणाम स्वरूप पर्यावरण की अपूरणीय क्षति हुई। मानव की संस्कृति, समाज, सभ्यता, जीवनशैली इत्यादि।

6.1 अनिर्वहनीय से निर्वहनीय तक

लगभग तीन दशक पहले विश्व को विकसीत तथा विकासशील देशों में बाँटा गया। इस विभाजन का आधार आर्थिक था। उस समय आर्थिक स्थिति को मानव विकास का मापक माना जाता था। उन देशों को विकसीत कहा गया, जहाँ लोग अपेक्षाकृत धनी थे तथा ये देश आर्थिक रूप से विकसित थे। जहाँ दूसरी ओर, वे देश थे जो आर्थिक रूप से पिछड़े थे तथा अधिकांश जनसंख्या निर्धन थी वे विकासशील देश कहलाये। अधिकांश यूरोपीय तथा उत्तरी अमेरिकी देश जो प्रारम्भिक चरणों में औद्योगिकृत हो गये थे, आर्थिक रूप से अधिक उन्नत हैं। इन देशों ने न केवल अपने प्राकृतिक संसाधनों को पूर्णतः उपयोग करके समाप्त कर दिया है बल्कि अपने आपको और अधिक आर्थिक रूप से उन्नत बनाने हेतु अब विकासशील देशों के प्राकृतिक संसाधनों को उपयोग कर रहे हैं इस प्रकार से विकास हुआ जिसके परिणाम स्वरूप धनी देश और धनी होते गये तथा निर्धन देश और पिछड़ते गये। मात्र अर्थिक वृद्धि के लिए किये गये विकास से पर्यावरणीय ह्रास हुआ है जिसका लोगो के जीवन पर सीधा व गम्भीर प्रभाव पड़ा है।

1970 के दशक तक अधिकांश विकास विशेषज्ञों को यह समझ में आ गया कि सिर्फ आर्थिक विकास से लोगों को अच्छी जीवन शैली नहीं दी जा सकती है। इसके लिए उन्नत एवं उत्तम पर्यावरण की आवश्यकता भी है। मात्र आर्थिक विकास की अन्धी दौड़ ने गम्भीर पर्यावरणीय समस्याओं को जन्म दिया जैसे:- वायु एवं जल प्रदूषण, निर्वनीकरण, अत्याधिक कचरा की समस्या तथा अन्य समस्याएँ। इन समस्याओं ने मानव जीवन तथा उनकी संपत्ति को गंभीर रूप से प्रभावित किया है।



निर्वहनीय अथवा सतत विकास की अवधारणा

राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों का एक समूह ऐसा है जिसके पास सभी संसाधन उपलब्ध हैं, वहीं दूसरी ओर ऐसे लोगों का समूह है जिनके पास बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं हैं। आर्थिक विकास के फलस्वरूप असमानता की यह खाई और चौड़ी और गहरी होती जा रही है।

दशकों पहले महात्मा गांधी ने एक ऐसी ग्रामीण समुदाय की संकल्पना की थी, जिसका विकास एक मजबूत पर्यावरण प्रबन्धन पर आधारित था। उन्होंने साफ-सफाई पर जोर दिया था। गांधी जी ने इस प्रकार एक ऐसे भारतीय समाज की कल्पना की थी जिसमें सड़के धूल रहित तथा साफ सुथरी हों, लोगों की कुटियों का निर्माण वायुसंचार को ध्यान में रखकर किया जाए। घरों के निर्माण में पुनः चाक्रित हो सकने वाली सामग्री का उपयोग हो और ग्रामों में ही उत्पादित वस्तुओं का प्रयोग किया जाए। गांधी जी के बताये हुए संतत जीवन शैली के ये सिद्धान्त आज के समय

विकास की योजनाओं में प्रयोग किये जा रहे हैं। गांधी जी के अनुसार पृथ्वी सभी मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में तो सक्षम है लेकिन लोगों के लाभ की पूर्ति नहीं कर सकती है।

वर्तमान समय में विश्व एक ऐसे चौराहे पर खड़ा है जहाँ मानव जीवन की गुणवत्ता की कीमत पर लघु आबादी के लिए आर्थिक विकास की एक होड़ लगी हुई है। इस स्थिति में समाज को असतत् विकासीय रणनीतियों को पूर्णतः छोड़ना होगा तथा पर्यावरण को ध्यान में रख कर विकास की रणनीतियाँ बनानी होंगी। इस प्रकार का सतत् विकास वर्ष 1972 में तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमति इन्दिरा गांधी ने स्टॉकहोम सम्मेलन में कहा था कि निर्धनता सबसे बड़ा प्रदूषण फैलाने वाला कारक है। अर्थात् एक और जहाँ अत्यधिक धनी देश गम्भीर पर्यावरणीय समस्याओं से ग्रसित हैं वही दूसरी ओर एशिया, अफ्रीका तथा दक्षिण अमेरिका के कम विकसित देशों में विभिन्न प्रकार की ऐसी पर्यावरणीय समस्याएँ हैं जो गरीबी से जुड़ी हैं। विकासशील देश बढ़ती जनसंख्या द्वारा की जा रही संसाधनों के अतिदोहन से ग्रसित हैं।

विश्व स्तर पर संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग की आवश्यकता को महसूस किया जा रहा है। क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों तथा उनसे उत्पन्न होने वाली सम्पत्ति को लेकर विश्व में तनाव की एक गम्भीर स्थिति है जिसके कारण देशों के मध्य तथा कभी कभी देश के अन्दर ही गृह युद्ध जैसी स्थिति बन सकती है। अब यह प्रश्न उठता है कि एक नये प्रकार का विकास कैसे लाया जाए जिससे विश्व में बढ़ते असंतोष की गम्भीर समस्या का समाधान किया जा सके।

समस्या के संतोषजनक समाधान के लिए यह आवश्यक है कि सभी देश सहयोग करें अन्यथा संपूर्ण मनुष्य जाति का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाएगा। विश्व बैंक दल द्वारा स्थापित अंतर्राष्ट्रीय विकास पर 'पियरसन कमीशन' ने अपनी 1969 की रिपोर्ट में यह विचार व्यक्त किया कि "कौन अब यह कह सकता है कि कुछ दशकों में उसका देश कहाँ होगा बिना यह पूछे कि विश्व कहाँ होगा। यदि हम चाहते हैं कि विश्व सुरक्षित तथा समृद्धशाली हो तो हमें लोगों की सामान्य समस्याओं पर ध्यान देना होगा।"

'पियरसन कमीशन' ने अपनी रिपोर्ट में दस उद्देश्य प्रस्तुत किए जो विकास के मानक कहे जा सकते हैं। ये दस उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

1. स्वतंत्र तथा सामान्यपूर्ण व्यापार का एक ढांचा उत्पन्न किया जाए जिससे विकसित देश तथा विकासशील देश ऐसे प्राथमिक माल पर आयात शुल्क एवं अत्यधिक कर समाप्त करें जिसका उत्पाद वे स्वयं नहीं करते हैं।
2. निजी निवेशों की प्रोन्नति तथा निवेशकों के विशेष जोखिम की समाप्ति।
3. विकासशील देशों की सहायता इस उद्देश्य से ही जानी चाहिए कि वे स्वतः पोषणीय विकास के मार्ग पर पहुँच सकें।
4. सहायता में वृद्धि करके उसे विकसित देश के राष्ट्रीय उत्पाद के एक प्रतिशत तक पहुँचाया जाए।
5. ऋण अनुतोष सहायता का वैध रूप होना चाहिए।
6. प्रक्रिया संबंधी बाधाओं को पहचान कर दूर किया जाना चाहिए।
7. तकनीकी सहायता के संस्थागत आधार को मजबूत किया जाना चाहिए।
8. जनसंख्या की वृद्धि पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।
9. शिक्षा एवं शोध के ऊपर अधिक खर्च किए जाने चाहिए।
10. विकास सहायता की बहुराष्ट्रीयकृत वृद्धि किया जाना चाहिए।

24 अक्टूबर, 1970 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने द्वितीय विकास दशक (1971-1980) के लिए अंतर्राष्ट्रीय विकास रचना कौशल की नीति संबंधी दस्तावेज स्वीकार किया तथा इसमें उपयुक्त दस उद्देश्यों को भी रखा।

अगस्त-सितम्बर, 1980 में इसी प्रकार तृतीय विकास दशक घोषित किया गया। विकास की वर्तमान विधि संस्थागत ढांचे पर आधारित है। संयुक्त राष्ट्र व्यापार एवं विकास पर सम्मेलन (UNCTAD), संयुक्त राष्ट्र विकास प्रोग्राम (UNDP) विश्व बैंक, संयुक्त राष्ट्र औद्योगिक विकास संस्था समुदाय आदि संस्थाएँ इस समय महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। मार्च 1988 को 1990-1995 के लिए पर्यावरणीय रचना कौशल को संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण प्रोग्राम (UNEP) ने स्वीकार किया। इसमें यह तय किया गया कि भविष्य में संयुक्त राष्ट्र, राष्ट्रों को ऐसे विकास में सहायता देगा जो पोषणीय या सहनीय हो अर्थात् विकास ऐसा जो पर्यावरण पर बुरा प्रभाव न डाले। यह तय किया गया कि वर्ष 2000 तक इसी बात पर बल दिया जाएगा। गैर-सरकारी पर्यावरण एवं विकास पर विश्व कमीशन ने भी इसी बात पर बल दिया। अतः संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण दर्शन का आधार पोषणीय विकास है तथा यह विश्व पर्यावरण कार्यवाही का भाग बन गया है।

22 दिसंबर, 1990 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने चौथा विकास दशक (1991–2000) घोषित किया तथा विकासशील देशों के तीव्रगति से विकास के लिए व्यापक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय उपाय अपनाने को कहा। महासभा ने यह स्वीकार किया कि तृतीय विकास दशक अधिकतर उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल रहा। महासभा ने विकसित देशों से कहा कि निरस्त्रीकरण से मुक्त धन को विकासशील देशों की औपचारिक सहायता में लगाए। औद्योगिक विकास पर बल देते हुए महासभा ने कहा कि औद्योगिकरण के विकास की दर 8 प्रतिशत से बढ़कर 10 प्रतिशत होनी चाहिए।

यह तो स्पष्ट हो चुका है कि विश्व को लघु आबादी के आर्थिक विकास के लक्ष्यों को बदलकर ऐसे लक्ष्य बनाने होंगे जो दीर्घावार्थ के संततीय विकास के सिद्धान्त पर आधारित हैं। इस प्रकार का विकास न केवल वर्तमान समय में जीवित मनुष्य की जीवन की आवश्यकता की पूर्ति करते हुए जीवन की गुणवत्ता बनाने रखे, बल्कि आने वाली मानव पीढ़ियों का भी कल्याण करेंगे। वर्तमान समय के आर्थिक विकास के अन्तर्गत विश्व के प्राकृतिक संसाधनों का तीव्रता से दोहन हो रहा है। परिणामस्वरूप आने वाली पीढ़ियाँ हमसे भी अधिक पर्यावरणीय समस्याओं से ग्रसित होंगी। अतः वर्तमान समय का विकासीय प्रारूप असतत् माना जा रहा है जो दीर्घावार्थ तक नहीं चल पाएगा।

रियो सम्मेलन (1992)

विकास के नवीन सिद्धान्त को 'सतत् विकास' के नाम से जाना गया। ये सभी मुद्दे वर्ष 1992 में ब्राजील के रियो-डी-जेनिरो में सम्पन्न हुए सम्मेलन में विश्व के सामने लाये गये। इस दौरान संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन के लिए अनेक दस्तावेज़ तैयार किये गये। इन दस्तावेजों के द्वारा यह बात विश्व के सामने रखी गयी कि पर्यावरण एवं विकास दोनों घनिष्टता से जुड़े हैं तथा विश्व समुदाय को पृथ्वी की देखभाल की आज बहुत आवश्यकता है।

सतत् विकास एवं इसकी विशेषताएँ:

सतत् विकास से तात्पर्य एक ऐसे विकास से है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं की पूर्ति, भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर पूरा करे। अर्थात् वर्तमान में प्राकृतिक संसाधनों का सर्वोत्तम अथवा अनुकूलतम उपयोग करें जिससे इन संसाधनों का संरक्षण हो सके तथा भावी पीढ़ियाँ अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। सतत् विकास की विशेषताएँ निम्नवत् हैं:

- संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग।
- दीर्घावार्थ विकास।
- महाद्वीपों, देशों, जातियों, वर्गों, लिंग तथा आयु वर्गों के बीच न्याय संगतता।
- इसके अन्तर्गत सामाजिक विकास एवं आर्थिक अवसर आते हैं।
- पर्यावरण संरक्षण।
- लोगों के जीवन स्तर में सुधार के सिद्धान्त पर आधारित है।
- पारिस्थितिक तन्त्र की सुरक्षा एवं संरक्षण।
- यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे जीवन स्तर में सुधार होगा और पर्यावरण पर प्रभाव कम होगा।
- सतत् विकास इस तथ्य पर जोर देता है कि पर्यावरणीय आवश्यकताएँ तथा मानवीय आवश्यकताएँ दोनों परस्पर एक दूसरे पर निर्भर हैं।

सतत् विकास की शर्तें मात्र किसी विचार को सामने रखने से वह अस्तित्व में नहीं आता इसके लिए क्रियान्वयन की आवश्यकता होती है। सतत् विकास को बनाये रखने की कुछ विशेष शर्तें हैं:

- किसी भी अर्थिक विकास की गतिविधि को प्रारम्भ करने से पहले उसके पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों पर विचार किया जाना चाहिए।
- अनेक विकास योजनाओं के पर्यावरण प्रभाव का आंकलन जैसे— बाँध निर्माण, खनन, सड़क निर्माण, उद्योग व पर्यटन विकास के प्रारम्भ होने से पहले इनसे होने वाले पर्यावरणीय प्रभावों का गहन अध्ययन किया जाना चाहिए।
- हमें विकास की आवश्यकता है लेकिन स्वस्थ व साफ सुथरी नदियों एवं वनीकरण को बढ़ावा भी देना होगा ताकि पारिस्थितिक तन्त्र को बेहतर ढंग से चलाया जा सके।
- हमें देश के नागरिक होने के नाते तथा वैश्विक नागरिक होने के नाते विकास के प्रतिमानों का लगातार निरीक्षण करना होगा।

- नागरिकों को इतना जागरूक होना होगा कि अगर उनके आस-पास या क्षेत्र में कोई विकास योजना शुरू हो रही है या चलाई जा रही है तो इस बात का पता रखा जाए की ये पर्यावरण संरक्षण के नियमों का तथा नागरिकों के अधिकारों का उल्लंघन तो नहीं कर रहे है।
- जब कहीं बड़ी विकासीय योजना पास होती है तो सरकार के आदेशानुसार एक पर्यावरणीय प्रभाव आंकलन की रिपोर्ट भी प्रकाशित की जाती है तथा उस क्षेत्र में सार्वजनिक सुनवाई की एक बैठक की जाती है ताकि स्थाई लोगों की इस योजना के क्रियान्वयन में सहमति व भागीदारी हो सके।

ऐसे क्षेत्रों के नागरिकों का कर्तव्य है कि वे इन बैठकों में प्रतिभागिता करें तथा पर्यावरण प्रभाव आंकलन की रिपोर्ट को अच्छे से अध्ययन करे। अगर किसी बिन्दु का उल्लंघन हो तो अपनी बातों को समिति के सामने, बैठकों में रखना चाहिए ताकि पैसा कमाने के लोभियों पर नियंत्रण किया जा सके। हम समाज के किसी एक वर्ग के आर्थिक विकास का समर्थन नहीं कर सकते जो पर्यावरण को बर्बाद करे जिससे गरीबों का जीवन भी बर्बाद हो जाए।

6.2 ऊर्जा से सम्बन्धित नगरीय समस्याएँ:

नगरीय केन्द्र ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में भारी मात्रा में ऊर्जा का उपयोग करते है। यद्यपि वर्तमान की तुलना में पूर्व में शहरों में ऊर्जा की आवश्यकता कम थी। पारम्परिक भारतीय घरों में तापमान समायोजन की कम आवश्यकता होती थी क्योंकि भवन निर्माण में प्रयोग की गई सामग्री लकड़ी तथा ईंटें वर्तमान में प्रयोग की जाने वाली सामग्री कंकरीट, काँच, स्टील-की तुलना में तापमान परिवर्तन को बेहतर ढंग से नियंत्रित करती थी।

1950 के दशक तक नगरीय केन्द्रों में खाना बनाने हेतु ईंधन की लकड़ी अथवा लकड़ी के कोयला का प्रयोग होता था तथा इसमें चिमनी लगी होती थी जिससे धुआं ऊपर चला जाता था। लेकिन जब अपार्टमेंट ब्लॉकस् की संस्कृति नगरों में विकसित हुई तो ईंधन के जलने से उत्पन्न धुआं एक समस्या बन गया, फलस्वरूप कैरोसीन (मिट्टी का तेल) का प्रयोग ईंधन के रूप में होने लगा। 1970 के दशक तक आते-आते बिजली तथा प्राकृतिक गैस का प्रयोग शुरू हुआ।

ठंडी जलवायु क्षेत्रों में भवन निर्माण में काँच का प्रयोग ग्रीन हाऊस प्रभाव हेतु किया जाता है जबकि भारत की गम जलवायु में नगरीय क्षेत्रों में भवन निर्माण में काँच का प्रयोग करने उनके भीतर तापमान अत्यधिक हो जाता है जिनको ठंडा करने हेतु बड़े-बड़े वातानुकूलन की आवश्यकता होती है जिसमें बहुत अधिक मात्रा में ऊर्जा लगती है यद्यपि पहले समय में पंखों का चलन था, जब तक भवन निर्माण में प्राकृतिक सामग्री का प्रयोग होता था अथवा काँच व लोहे, एल्युमिनियम का प्रयोग नहीं होता था। भवनों में लिफ्ट तथा प्रकाश हेतु भी ऊर्जा का प्रयोग होता है।



ग्रामीण क्षेत्र का कच्चा घर एवम् नगरीय क्षेत्र के पक्के घर

नगरीय परिवहन तन्त्र ऊर्जा के मुख्यतः जीवाश्म ईंधन पर निर्भर है। नगरों में अधिकतर लोग अपने परिवहन के साधन प्रयोग करते है। क्योंकि सार्वजनिक परिवहन में अत्याधिक भीड़ है तथा आवश्यकता के मुकाबले अर्याप्त है। अप्रर्याप्त सार्वजनिक परिवहन के कारण मध्यम आय वाले लोग भी अपने वाहन का प्रयोग करते है जिससे सड़कों में भीड़ होती है तथा तापमान वृद्धि की समस्या सामने आती है।



नगरीय एवम् परिवहन तन्त्र

वाहनों में जलने वाले जीवाश्म ईंधन से कार्बन मोनोक्साइड का उत्सर्जन होता है जिससे नगरीय जनसंख्या में सांस की समस्या तथा सांस से सम्बन्धित बीमारियाँ हो जाती है अतः यह परम आवश्यक है कि सार्वजनिक परिवहन तन्त्र को कुशल एवं विकसित किया जाए। इससे व्यक्तिगत वाहनों के प्रयोग में कमी आएगी। हमें पर्यावरण के प्रति जागरूक होना होगा तथा अपनी दिन प्रतिदिन की प्रक्रियाओं में ऊर्जा का प्रयोग कम करना होगा। जिस दिन हम इतने जागरूक हो जाएंगे कि बेकार में जलते बल्ब अथवा ट्यूब को बन्द करेंगे, तो पर्यावरण बेहतर से बेहतर बनता चला जाएगा।

6.3 जल संरक्षण, वर्षा जल का संचय तथा जल संभरों का प्रबन्धन:

6.3.1 जल संरक्षण:

जल शाब्दिक अर्थ में विश्व में जीवन का स्रोत है। हमारी पृथ्वी पर 70 प्रतिशत जल है लेकिन यह अधिकांशतः महासागरों के रूप में उपलब्ध है। विश्व में मात्र 3 प्रतिशत जल पीने योग्य है। इस 3 प्रतिशत में भी केवल 1 प्रतिशत जल पेयजल के रूप में पृथ्वी की सतह पर पाया जाता है। शेष 02 प्रतिशत ध्रुवीय क्षेत्रों में बर्फ और ग्लेशियर के रूप में है। विश्व में जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि से पेयजल की समस्या उत्पन्न हो गई है। एक तरफ पेयजल का संकट है तो दूसरी ओर अनेक देश जल प्रदूषण के संकट का सामना कर रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण विश्व में प्रति व्यक्ति पानी की उपलब्धता कम होती जा रही है।

शुद्ध जल की कमी एक गम्भीर समस्या का रूप ले चुकी है। यह समस्या और अधिक गम्भीर न हो इसलिए जल संरक्षण पर पर्यावरणीय संरक्षण के अन्तर्गत सबसे अधिक ध्यान दिया जा रहा है। वन विनाश के कारण पृथ्वी की सतह नग्न हो चुकी है परिणाम स्वरूप पानी का धरातलीय प्रवाह तेज हो जाता है और जल का धरातल में रिसाव नहीं हो पाता है। जिससे उपधरातलीय जल स्तर नीचा होता चला जाता है। पानी के कुओं को अधिक से गहरा करना आज की एक आवश्यकता बन चुकी है क्योंकि अधिकतर क्षेत्र जल के लिए कुओं पर निर्भर हैं। इन कुओं को गहरा करने के लिए पैसा तो लगता ही है और साथ में भूमिगत जल भण्डार भी खाली होता जाता है। इस भूमिगत जल भण्डार को दोबारा भरने में कई वर्षों की अवधि लग जाती है। अगर धरातलीय जल का सही से रिसाव होता रहे।

केस अध्ययन

ऊर्जा दक्षता संयुक्त राज्य अमेरिका में होने वाले कुल हरित गृह उत्सर्जन का लगभग 35 प्रतिशत के लिए नगरीय आवासीय एवं वाणिज्यिक सुविधाएँ हैं।

अत्यधिक ऊर्जा उपयोग तथा कार्बन डाई ऑक्साइड उत्सर्जन से नगरीय क्षेत्रों के ऊपर गर्म द्वीप की स्थिति बन जाती है तथा उच्च तापमान की स्थिति विकसित होती है।

अतः यह आवश्यक है कि भवन ऊर्जा दक्ष है अर्थात् कम ऊर्जा का प्रयोग करके कार्य सम्पन्न किये जाए।

भूमि उपयोग में हो रहे बदलाव के कारण निर्वनीकरण एवं मरुस्थलीकरण का फैलाव हो रहा है जिसके परिणाम स्वरूप जो नदियाँ पहले सदावाहिनी हुआ करती थीं वो धीरे-धीरे मौसमी नदियों में बदल रही हैं। कुछ क्षेत्रों

में मानसून के बाद कुछ नदियाँ सूख जा रही है क्योंकि जलस्तर और नीचे जा रहा है। इस समस्या को और गंभीर बनाता है तेजी से बढ़ता हुआ धरातलीय बहाव जो बिना रिसाव के बहकर निकल जाता है।

जल का बँटवारा सभी क्षेत्रों में बराबर होना चाहिए, घरेलू, खेती उपयोग में या नगरीय एवं औद्योगिक उपयोग हेतु हो। जब हम पानी को बर्बाद करते हैं तो हम यह नहीं सोचते कि इससे हम सब का जीवन किस प्रकार से प्रभावित होता है। इसके अतिदोहन एवं प्रदूषण से पीने के पानी की समस्या खड़ी हो गई है। अतः जल संरक्षण समग्र मानव कल्याण से बहुत निकटता से जुड़ा है।

भारत में परम्परागत ढंग से पानी को इकट्ठा करने की पद्धति तथा उसे सुचारू रूप से उपयोग करने की प्रथा कई पीढ़ियों से चली आ रही है। लेकिन दुर्भाग्यवश ये तन्त्र व प्रथाएँ हाल के कुछ दशकों में भुला दी गई हैं। देश के सभी गाँवों में आम तालाब हुआ करते थे। कहीं-कहीं झीलें हुआ करती थी। इन प्राकृतिक भण्डारण बिन्दुओं में बरसात में वर्षा का जल एकत्रित होता था जिसे शुष्क ऋतु में लोग सावधानीपूर्वक खेती तथा घरेलू उपयोग के लिए प्रयोग करते थे।

अंग्रेजी काल में विशेष रूप से बढ़ती नगरीय बस्तियों को जल आपूर्ति हेतु अनेक बंधों का निर्माण किया गया। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में बड़े बंधों का निर्माण शुरू किया गया जिसका उद्देश्य जनसंख्या की खाद्य सुरक्षा हेतु हरित क्रांति को सुदृढ़ बनाना था। हरित क्रांति से भुखमरी की समस्या से छुटकारा मिला तथा अन्न की कमी काफी हद तक कम हुई लेकिन पानी की कमी की समस्या तथा उपज से प्राप्त खाद्य के वितरण से सम्बन्धित बड़ी समस्याएँ देश के सामने खड़ी हो गई। नकदी फसलों जैसे गन्ना के लिए और अधिक जल की आवश्यकता पड़ी फलस्वरूप ऐसे अत्याधिक सिंचाई वाले क्षेत्र जलभराव तथा अनुत्पादकता से ग्रसित हो गये। क्योंकि भारी सिंचाई वाली कृषि भूमि से अतिरिक्त जल बहुत तीव्रता से वाष्पीकरण होने से मिट्टी के नीचे के जल तथा नमक को ऊपर खींच लेता है। यह नमक मिट्टी की ऊपरी धरातल पर आकर जमा हो जाता है। इसे लवणीकरण कहते हैं। जिससे भूमि अनुत्पादक हो जाती है। नमक की इतनी मात्रा को कम कर पाना बहुत महंगा और बार-बार करना असंभव है। राष्ट्रीय एवं स्थानीय स्तर पर जल के निम्न स्तर के प्रबन्धन के दुष्प्रभावों को देखते हुए आज देश को एक नई जल नीति की आवश्यकता है।

राष्ट्रीय पेयजल मिशन

भारत सरकार ने इस मूल आवश्यकता की पूर्ति करने हेतु 1986 में राष्ट्रीय मिशन आरम्भ किया था। सातवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भिक वर्ष 1985 में भारत में 1,61,772 ऐसे समस्याग्रस्त गाँव थे जहाँ या तो कोई स्वच्छ पेयजल स्रोत न था या निकटतम जलस्रोत 1.6 किमी. से अधिक दूर था। जल मिशन ने राष्ट्रीय स्तर पर सम्मेलन, गोष्ठियाँ व कार्यशालाएँ आयोजित कीं, सर्वेक्षण कराये तथा देश में उपलब्ध समस्त वैज्ञानिक व तकनीकी जानकारी एकत्रित की। जिसके आधार पर देश की पेयजल क्षेत्र की समस्त मूल समस्याओं का पता लगाया गया और समाधान से सम्बन्धित विधिवत् कार्यक्रम बनाकर उन्हें क्रियान्वित किया।

पेयजल मिशन कार्यक्रमों के अंतर्गत निम्न उप मिशन हैं—

- खारेपन पर नियंत्रण
- फ्लोरोसिस पर नियंत्रण
- जल गुणवत्ता की निगरानी,
- गिनीकृमिकों को दूर करना
- जल संरक्षण और भूमिगत जल संपूर्ति
- वैज्ञानिक तरीकों के जल स्रोतों का पता लगाना।

देश में 55 मिनी-मिशन जिलों का चुनाव किया गया है, जहाँ पेयजल समस्या अति दुश्कर है। उप मिशन के कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रारम्भ में तीन मिनी-मिशन जिलों में कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिए गए थे। इनके अंतर्गत निम्नलिखित जल सर्वेक्षण एवं शोधन कार्यक्रम हाथ में लिए गए हैं।

(क) लौह दूर करने वाले संयंत्रों की स्थापना	11,780
(ख) फ्लोराइड दूर करने के संयंत्र	130

(ग) जल गुणवत्ता जांच प्रयोगशालाएँ	85 (स्थिर) और 17 (चल)
(घ) खारापन दूर करने के संयंत्र	130
(ङ) गिनीकृमि दूर करना (स्टेप कुओं को स्वच्छ कुओं में बदलना)	5,578

इसके अतिरिक्त पेयजल व्यवस्था की सुविधाएँ सुलभ कराने में, सोलर फोटोवोल्टिक पम्पिंग—प्रणालियाँ, रिंग निष्पादन, वैज्ञानिक रूप में जल स्रोतों का पता लगाना आदि सम्मिलित है। ग्रामीण पेयजल व्यवस्था के क्षेत्र में भारत की उपलब्धि देखते हुए संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के अंतर्गत 'SAFE WATER-2000' विषय पर सितंबर 1990 में नई दिल्ली में विश्व सम्मेलन आयोजित किया गया था।

जल संसाधनों का संरक्षण

जल की कमी, स्थानिक और ऋतुवत् असमानता, बढ़ती मांग और तेजी से फैलते प्रदूषण की दृष्टि से जल-संसाधन का संरक्षण आवश्यक हो गया है।

इसके लिए निम्न प्रयास करने आवश्यक हैं:

1. जल को अप्रदूषित रखना,
2. जल संग्रहण और इसके अपवाह को रोकना है,
3. छोटे-बड़े सभी नदी जल संसाधनों का वैज्ञानिक प्रबंधन।

वर्षा जल संग्रहण

यह भूमिगत जल के पुनर्भरण को बढ़ाने की तकनीक है। इस तकनीक में स्थानीय रूप से वर्षा जल को एकत्रित करके भूमि जल भंडारों में संग्रहित करना शामिल है, जिससे स्थानीय घरेलू मांग को पूरा किया जा सके। वर्षा जल संग्रहण के उद्देश्य ये हैं:

1. भू-जल प्रदूषण को रोकना,
2. मृदा अपरदन को कम करना,
3. सड़कों पर जल फैलाव को रोकना,
4. भू-जल की गुणवत्ता को सुधारना, जल की निरंतर जल मांग को पूरा करना,
5. भू-जल में वृद्धि करने हेतु पुनर्भरण तथा जलस्तर को ऊँचा उठाना,
6. नालियों को रोकने वाले सतही जल प्रवाह को कम करना,
7. ग्रीष्म ऋतु और सूखे के समय जल की घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता करना।

भू-जल के भंडारों के पुनर्भरण की कम लागत वाली अनेक तकनीक अब उपलब्ध हैं। इनमें से छत के वर्षा जल का संग्रहण, खुदे हुए कुओं का पुनः भरण, हैंडपंपों का पुनर्भरण, रिसाव, गड्ढों का निर्माण, खेतों के चारों ओर खाइयाँ और छोटी-छोटी सरिताओं पर बांधिकाएँ और रोक बांध बनाना विशेष उल्लेखनीय है।

राष्ट्रीय जल नीति, 2002

01 अप्रैल, 2002 को राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद् ने 'राष्ट्रीय जल नीति', 2002 को स्वीकृत प्रदान की। इस नीति के प्रमुख मुद्दे निम्न हैं। संशोधित राष्ट्रीय जल नीति में प्राथमिकताओं का क्रम निम्न प्रकार निर्धारित किया गया है—

- सबके लिए पेयजल की व्यवस्था।
- सिंचाई जल व्यवस्था।
- जल विद्युत उत्पादन।
- पारिस्थितिक संतुलन हेतु नदियों में निर्धारित सीमा तक जल प्रवाह बनाए रखना।

- कृषि और गैर कृषि उद्योग तथा परिवहन के लिए जल उपयोग रखा गया है।

नई जल नीति में राज्यों को सलाह दी गई है कि वे जल संसाधनों के एकीकृत प्रबंधन व विकास के ध्येय से संस्थागत उपाय करें। इन उपायों में नदी जल व नदी भूमि संबंधी समस्याओं के समाधान हेतु 'रिवर बेसिन आर्गेनाइजेशन' गठित करना भी सम्मिलित है।

इस नीति में वर्तमान सिंचाई परियोजनाओं के रख-रखाव को नई परियोजनाओं के बराबर अथवा उनसे अधिक वरीयता दी गई है। अंतर्राज्यीय नदी, थालों (बेसिन्स) के विकास और प्रबन्धन के वैधानिक और गैर वैधानिक उपाय करना, बांधों के सुरक्षा परीक्षण और रख-रखाव के कानूनी प्रावधान अपनाना भी सम्मिलित है। सिंचाई और जल विद्युत परियोजनाओं के कारण विस्थापित लोगों के पुनर्वास और अन्य सुविधाओं के लिए एक राष्ट्रीय नीति अपनाना, पानी के विभिन्न कार्यों में प्रयोग के लिए ऐसा शुल्क ढांचा तैयार करना, जिससे कम से कम संचालन और रख-रखाव खर्च की प्रतिपूर्ति हो जाए। प्रदूषित जल का निर्धारित मानकों के अनुरूप उपचार करना, बाढ़ प्रबंधन और जल प्रबंधन में सामुदायिक और संबद्ध निजी क्षेत्र की भागीदारी को बढ़ावा देना और जल संग्रहण, भंडारण एवं वितरण के परंपरागत तरीकों के साथ-साथ भूमिगत जल पुनर्भरण, वर्षा जल संग्रहण और नदी जल के आवश्यकता के अनुरूप व्यापक स्थानांतरण जैसे नए उपाय अपनाना भी सम्मिलित है। अतः अब गंभीरतापूर्वक इन प्रावधानों को लागू किया जाना अत्यंत आवश्यक है।

केस अध्ययन

पानी पंचायत, जनपद पुणे, महाराष्ट्र

महाराष्ट्र के पुणे जनपद में एक गाँव है मेहर जो कि सूखा ग्रस्त क्षेत्र में बसा हुआ है। पहले यहाँ के लोग अच्छी फसल नहीं उगा पाते थे तथा पीने का पानी भी अपर्याप्त था। विलासराव सैलखे ने पानी पंचायत के नाम से एक आन्दोलन चलाया जिसका मुख्य उद्देश्य इस सूखा प्रवण क्षेत्र में जल संरक्षण करना था। प्रारम्भ में मंदिर के एक बंजर व अकृषित भूमि पर जलागम प्रबन्धन शुरू किया गया और धीरे-धीरे व्यापक सूक्ष्म जलागम प्रबन्धन कार्यक्रम के अर्न्तगत मृदा संरक्षण एवं जल संचयन द्वारा इस क्षेत्र में अतिरिक्त जल की स्थिति आ गई।

गाँव की कुल 16 हैक्टेयर भूमि में से 9.6 हैक्टेयर पर खेती की जाने लगी, 2.4 हैक्टेयर भूमि पर वनीकरण किया गया तथा 4 हैक्टेयर भूमि को टपकन टैंक के रूप में बदल दिया गया। कुंओ एवं भूमि तटबन्ध बनाये गये। जब गाँव वालों ने देखा कि सैलखे के मात्र 24 एकड़ भूमि पर 200 कुन्तल अनाज पैदा हुआ और उसी क्षेत्र में 40 एकड़ भूमि पर मात्र 10 कुन्तल, तो सभी गाँव वालों ने ऐसा ही करना प्रारम्भ कर दिया। फलस्वरूप वह क्षेत्र तीव्रता से हरित एवं उत्पादक बन गया।

कृषि कार्यों में जल की बचत करना

- टपकन सिंचाई में जल की सप्लाई पौधों की जड़ों में किसी पाईप के माध्यम से की जाती है ताकि पानी बूँद-बूँद टपक कर सीधे पौधों की जड़ों में जाता है जिससे पानी की बचत होती है।
- छोटे-छोटे रिसाव टैंकों को बनाकर तथा वर्षाजल संचय से घरेलू एवं कृषि हेतु पानी एकत्रित किया जा सकता है।
- घरों की छतों से एकत्रित जल को स्टोर किया जा सकता है एवं जलभरण के पुनः भरण में भी प्रयोग किया जा सकता है।

नगरीय क्षेत्रों में पानी की बचत

- पानी के पाइप एवं टंकियों को टपकने से रोकना।
- बाँध से नगरीय केन्द्रों को पाइपों के द्वारा जल की आपूर्ति के दौरान 50 प्रतिशत जल बर्बाद हो जाता है।

अतः बढ़ती जल की माँग की आपूर्ति के स्थान पर जल को विवेकपूर्ण ढंग से प्रयोग करके जल की बढ़ती माँग को कम करना एक बेहतर विकल्प है। जिससे आवश्यकता भी पूरी होगी और जल संरक्षण भी हो सकेगा।

6.3.2 वर्षा जल संचय

वर्तमान समय में विश्व जल संकट के दौर से गुजर रहा है इसलिए आवश्यक है कि प्रत्येक बूँद को बर्बाद होने से बचाया जाए और उपयोग में लाया जाए। इसके लिए आवश्यक वर्षा जल का संग्रह किया जाए ताकि वर्षा ऋतु के बाद जल का प्रभावी ढंग से उपयोग किया जा सके।

सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में पारम्परिक ढंग से जल संग्रह किया जाता है। जल संग्रह के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि उसे प्रदूषित होने से बचाया जाए क्योंकि संग्रहित जल में शैवाल एवं सूक्ष्म जीव-जन्तु पैदा हो जाते हैं जिससे बीमारी व संक्रमण का खतरा पैदा हो जाता है।

वर्षा जल संचय की नवीन तकनीक:—(1) वर्षा जल संचय की नवीन तकनीकी में घरों की छतों का वर्षा का जल एक ढंके हुए गड्ढों में एकत्रित हो जाता है। यह तकनीक मुख्यतः सूखाग्रस्त क्षेत्रों में अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है जहाँ पर शुद्ध पानी की कमी है। यद्यपि इस तकनीक के साथ कुछ व्यवहारिक समस्याएँ हैं जैसे— गड्ढों का निर्माण करने में अधिक खर्च आता है।



वर्षा जल संग्रह तकनीक

केस अध्ययन

राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में पुराने समय से परम्परागत वर्षा जल संचय का प्रयोग होता आया है जिसके अन्तर्गत एकत्रित जल को खेती हेतु उपयोग किया जाता है इस क्षेत्र में अनेक प्रकार के वर्षा जल संचय तंत्र विकसित हैं। जो निम्न प्रकार हैं।

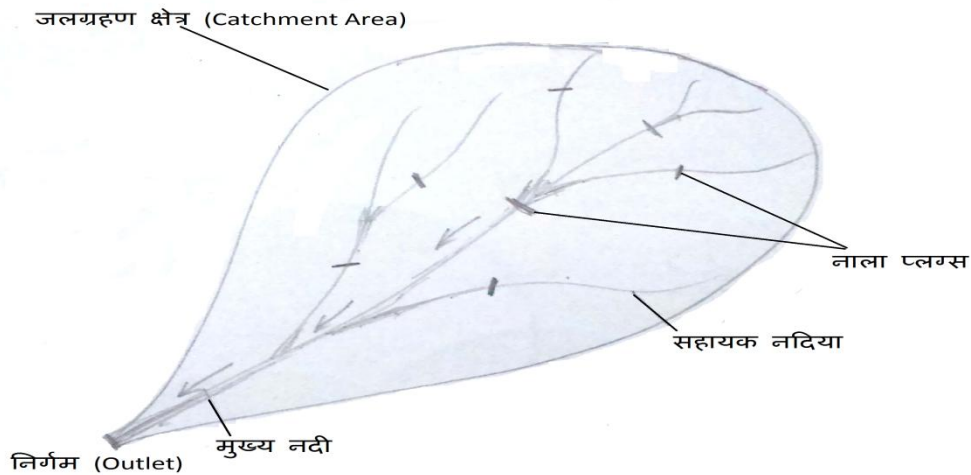
- मेढ़बन्दी: इसके अन्तर्गत पहाड़ी ढालों पर पत्थरों से निर्मित एक तटबन्ध बनाया जाता है जिससे कृषि हेतु एक समतल खेत तैयार हो जाता है। यह तन्त्र भूमि कटाव से सुरक्षा प्रदान करता है तथा नमी को बनाये रखता है।
- नाडा/बन्धा: इनका निर्माण धाराओं एवं नालियों के ऊपर पत्थरों से चैक बाँधों के रूप में किया जाता है। इनका निर्माण उर्वर भूमि के ऊपर बहते जल को रोककर संग्रहित करने हेतु किया जाता है। मानसून के दौरान में क्षेत्र जल में डूब जाते हैं। यह भूमि सिल्ट के जमा होने से न केवल उर्वर हो जाती है बल्कि मिट्टी में अधिक मात्रा में पानी एकत्रित हो जाता है। इन बन्धों की ऊँचाई, समुद्रतल से ऊँचाई बढ़ने के साथ-साथ कम होती जाती है।
- हेम्बर: अस्थायी रूप से मौसमी धाराओं पर पत्थरों, टहनियों एवं कीचड़/ गारा से बने हुए बाँधों को हेम्बर कहते हैं। इसका निर्माण उस समय होता है जब पानी का बहाव इतना कम हो कि उसे खेतों में न ले जाया जा सके।
- चक: चक एक बड़ा खेत होता है जिसकी चारों ओर एक पत्थरों से बनी सीमा होती है जिसको कोट कहते हैं। चक के अन्दर वृक्षारोपण, चारा के लिए घास, कन्दूर बन्ध तथा ढोले पत्थर के चैक बाँधों का विकास होता है। चक का उपयोग चारा एवं ईंधन को लकड़ी हेतु किया जाता है। यह मिट्टी कटाव एवं भूजल पुर्नभरण के लिए महत्वपूर्ण है।

- तालाब: मेवाड़ क्षेत्र तालाबों के लिए जाना जाता है। उदयपुर नगर अपने अनेक तालाबों के लिए प्रसिद्ध है, इसलिए इसे झीलों का शहर कहा जाता है। पांच बीघा से कम क्षेत्रफल के तालाबों का तलई/तलयी कहते हैं, एक मध्यम विस्तार की झील को बन्ध या तालाब कहते हैं तथा बड़ी झील को सागर या समंद कहा जाता है।
- साघा कुँआ: मेवाड़ी भाषा में साझा का अर्थ होता है साथी, साझा कुएं खुले हुए खुदे कुएं होते हैं जिनके एक से अधिक मालिक होते हैं। इनके द्वारा सभी मालिक मिलकर जल को बॉटकर खेती की सिंचाई करते हैं। इनको सामान्य संपत्ति संसाधन माना जाता है। उदयपुर जिले में लगभग 70,000 साझा कुएँ हैं जो अपने मालिकों को पानी उपलब्ध कराते हैं तथा 80 प्रतिशत सिंचित भूमि को पानी पहुँचाते हैं।
- छतों के वर्षाजल संचय की दूसरी तकनीकी के अन्तर्गत जल को एकत्रित किया जाता है ताकि उसका रिसाव भूमि के नीचे हो सके। इससे भूमिगत जल स्तर में वृद्धि होती है। इसके फलस्वरूप आसपास के कुँआओं में वर्षभर पानी की उपलब्धता बनी रहेगी।

6.3.3 जलागम प्रबन्धन

जलागम— नदियाँ धाराओं के रूप में जन्म लेती हैं और पर्वतीय ढालों से बहती हुई घाटियों में प्रवेश करती हैं जहाँ वे दूसरी धाराओं से मिलती हैं। कई धाराएँ मिलकर एक नदी को जन्म देती हैं। ये छोटी-बड़ी धाराएँ जो मुख्य नदी में आकर मिलती हैं, सहायक नदियाँ कहलाती हैं। एक नदी में एक निश्चित क्षेत्र का जल बहकर आता है यह क्षेत्र उस नदी का जलागम अथवा कैचमेन्ट क्षेत्र कहलाता है। इस जलागम क्षेत्र के अपवाह तन्त्र का प्रबन्धन, जलागम प्रबंधन कहलाता है।

जलागम (Watershed)



जलागम प्रबन्धन के अन्तर्गत जल एवं मृदा प्रबन्धन तथा वनस्पतीय क्षेत्र में वृद्धि एवं विकास करना है। अगर जलागम के अन्दर जल का प्रभावी ढंग से प्रबन्धन होता है तो इसमें रहने वाले समुदायों को घरेलू, कृषि एवं उद्योगों के लिए पानी की भरपूर मात्रा में उपलब्धता रहेगी। जलागम प्रबन्धन से क्षेत्र की कृषि विकसित होती है तथा समुदाय आर्थिक रूप से समृद्ध हो जाता है।



नाला प्लगस

जलागम प्रबन्धन तन्त्र

जलागम प्रबन्धन का प्रारम्भ स्थानीय लोगों के साथ सहयोग स्थापित करने से होता है। स्थानीय लोगों के साथ मिलकर पहले निम्नीकृत भूमि पर नियंत्रण किया जाता है। लोगों का जागरूक होना अति आवश्यक है। लोगों को यह लगना चाहिए कि उन्हें उनके क्षेत्र में पानी की मात्रा शुद्धता उपलब्ध जल के प्रबन्धन से सम्भव है। जब यह बात लोगों के समक्ष में आ जाती है। तो जलागम प्रबन्धन के समुदाय का सहयोग मिल जाता है और प्रबन्धन कार्य अधिक प्रभावी ढंग से चलेगा एवं सफल होता है।

प्रबन्धन के चरण

(क) **उपयुक्त मृदा संरक्षण उपायों को लेना:** इसके अन्तर्गत ढालों पर समोच्च रेखाओं के सहारे लम्बी खाइयों को खोदना एवं ढोले बनाना ताकि वर्षा जल का संचयन किया जा सके। यह संचित जल भूमि में रिसकर संग्रहित हो जाता है जिससे भूमिगत जल संग्रह का पुर्नभरण हो जाता है। इस प्रक्रिया से मृदा में नमी रहेगी जिससे पेड़ पौधों का विकास होगा जो इन बाह्यों की मानसून के समय रक्षा करेंगे तथा मिट्टी कटाव को भी रोकेंगे। यह हरे भरे चराग के रूप में विकसित होंगे जिससे चारा की पूर्ति होगी। लेकिन यह चरागाह तभी बचे रह सकते हैं अगर स्वतन्त्र चराई न होकर जानवरों को घरों में चारा खिलाया जाए।

(ख) **नाला प्लगस का निर्माण:** धाराओं को ऊपर कुछ निश्चित बिन्दुओं पर नाला प्लगस का निर्माण होता है ताकि बहते हुआ जल को रोका जा सके और एकत्रित जल को मानसून के पश्चात घरेलू एवं कृषि कार्यों हेतु उपयोग किया जा सके। इन उपायों को प्रयोग करके हम एक बेहतर जलागम प्रबन्धन कर सकते हैं जिससे जल स्तर में वृद्धि होगी तथा धाराओं एवं नालों में पूरे वर्ष पानी उपलब्ध रहेगा।

जलागम प्रबन्धन के सिद्धान्त

- जलागम प्रबन्धन एक भूमि प्रबन्धन कार्यक्रम है जो एक क्षेत्र को उसके जल संसाधन की दृष्टि से देखता है।
- इसका प्रयोग नदियों के उद्भव से उसकी समुद्र में मिलने तक के सफर का प्रबन्धन में किया जा सकता है।
- जलागम प्रबन्धन के अन्तर्गत एकल धाटी इकाई के प्रबन्धन को भी किया जा सकता है।
- नाला प्लगस एवं खाद्यों द्वारा भूमिगत जल पुर्नभरण/अच्छे जलागम प्रबन्धन का एक बड़ा पहलू है।
- निर्वनीकरण का प्रमुख कारण पानी की अपर्याप्त उपलब्धता है। ऐसे क्षेत्रों का पुर्नवरीकरण जलागम प्रबन्धन का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

6.4 जनता का पुर्नवास: इनकी समस्याएँ एवं सरोकार

बड़ी-बड़ी विकास परियोजनाएँ जैसे बड़े बाँध खनन राष्ट्रीय उद्यानों की घोषणा इत्यादि से क्षेत्रों में रह रहे समुदायों के लोगों को जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इन योजनाओं के कार्यान्वयन हेतु इन लोगों को उनके घरों से खेतों से हटा दिया जाता है।

हम में से ऐसा कौन है जो उस घर को छोड़कर कहीं और चला जाए जहाँ वो पैदा हुआ खेला कूदा। और फिर कभी वापिस न आने दिया जाए। लोगों को उनके घरों से उखाड़कर कहीं और बसने के लिए छोड़ देना एक

गम्भीर मुद्दा है। इस प्रक्रिया से लोगों के मस्तिष्क पर एक मनोवैज्ञानिक असर होता है। मुख्य रूप से आदिवासी लोग इस प्रक्रिया से अत्यधिक प्रभावित होते हैं क्योंकि ये लोग अपने चारों ओर के प्राकृतिक संसाधनों से बहुत निकटता से जुड़े होते हैं। जिस कारण से ये लोग दूसरे अनजान स्थान पर जाकर बस नहीं पाते हैं। इसलिए ऐसी परियोजनाओं, जिसमें लोगों को विस्थापित किया जाए, को वहाँ के स्थानीय लोगों की मर्जी के बिना किर्यान्वित नहीं करना चाहिए।

अकेले भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हरित क्रान्ति को सफल बनाने हेतु हजारों बाँधों का निर्माण किया गया जिसके फलस्वरूप लाखों की संख्या में लोग विस्थापित हुए। बाँधों का निर्माण एक तरह से इन गरीब लोगों की कीमत पर ही बनाये जाते हैं जो शक्तिहीन होते हैं। सरकार को चाहिए कि इन विस्थापित लोगों हेतु कृषि भूमि उपलब्ध कराई जाए तथा इनको एक बेहतर जीवन यापन की सुविधाएँ दी जाए। लेकिन कुछ ही स्थानों पर हो पाया है। अधिकतर मामलों में ये सभी सुविधाएँ विस्थापित लोगों को उपलब्ध कराने में सरकार विफल रही है।

पुर्नवास के लिए वैकल्पिक भूमि की आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि हमारे अतिजनसंख्या वाले देश में अच्छी कृषि भूमि की उपलब्धता बहुत कम है। अतः अधिकतर परियोजनाओं से प्रभावित लोगों को व्यर्थ बंजर भूमि उपलब्ध कराई जाती है। पुर्नवास का अर्थ मात्र भूमि प्रदान करना नहीं है बल्कि उनके परिवार की और सुविधाओं का ध्यान देना भी है।

नर्मदा बचाओ आन्दोलन एक ऐसा अभियान है जो कई दशकों से चल रहा है। और यह महान लड़ाई वहाँ के रहने वाले लोग अपनी उर्वर भूमि को बचाने हेतु लड़ रहे हैं। यह आन्दोलन यह दिखाता है कि लोग अपनी भूमि के लिए कितने गंभीर एवं मरने के लिए तैयार हो सकते हैं।

पुर्नवास की बड़ी समस्या:

पुर्नवास न केवल योजनाओं से प्रभावित हुए लोगों को आर्थिक, सामाजिक मनोवैज्ञानिक रूप से प्रभावित करता है और उन पर दबाव बनाता है बल्कि उन क्षेत्र के लोगों पर भी दबाव बनाता है जो इन क्षेत्रों में पहले से ही रह रहे हैं जहाँ इन विस्थापितों को बसाया जाता है। अतः दोनों समुदाय दबाव को भुगतते हैं और भाविष्य में यह संभावना बन जाती है कि ये दोनों समुदाय उस खेत के संसाधनों के लिए संघर्षरत न हो जाए।

केस अध्ययन

देशज जनजाति

विश्व की अनेक जनजातियों में से एक अंडमान की जरावा जनजाति आज सिकुड़ रही है। उनके प्रथागत अधिकारों को छीना जा रहा है। जिससे उनके अस्तित्व पर एक सवाल खड़ा हो गया है। इन आदिवासियों को इनके परम्परागत तौर तरीकों को छोड़ने पर बाध्य होना पड़ रहा है फलस्वरूप देशज जनजातीय जनसंख्या घटती जा रही है।

हालांकि कुछ परिस्थितियों में लोगों ने स्वयं सरकार से अपने पुर्नवास हेतु याचिका डाली है। जैसे— गुजरात क गिर क्षेत्र में रहने वाले लोगों ने इच्छा व्यक्त की है कि उन्हें कोई वैकल्पिक भूमि दी जाए ताकि वे शान्तिपूर्वक खेती कर सकें व जीवन यापन कर सकें। क्योंकि गिर क्षेत्र में हमेशा शेरों का खतरा बना रहता है। शेर उनके पालतू जानवरों को खा जाते हैं। लेकिन सरकार अब तक उनके लिए उपयुक्त क्षेत्र देने में असमर्थ रही है।

6.5 पर्यावरण सम्बन्धी नैतिकता : मामले एवं संभावित समाधान (Environmental Ethics: Issues and possible solutions)

पर्यावरण सम्बन्धित नैतिकता अथवा पर्यावरण नैतिकता के अन्तर्गत उन मामलों का अध्ययन किया जाता है जो व्यक्तियों के मौलिक अधिकारों एवं मानव कल्याण से सम्बन्धित हैं। पर्यावरण नैतिकता वर्तमान एवं भविष्य दोनों समय में व्यक्तियों की आवश्यकताओं से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत पृथ्वी पर रहने वाले अन्य जीवित प्राणियों के अधिकारों का भी अध्ययन किया जाता है।

6.5.1 संसाधनों के उपभोग का स्वरूप एवं उनके न्यायसंगत उपयोग की आवश्यकता (Resource Consumption Pattern and the Need for their equitable Utilization)

पर्यावरण नैतिकता के अन्तर्गत संसाधनों के उपभोग का स्वरूप एवं संसाधनों के न्यायसंगत उपयोग से सम्बन्धित मुद्दों का अध्ययन किया जाता है। कोई भी व्यक्ति ठीक प्रकार से संसाधनों का उपयोग कर रहा है या नहीं, यह इसके अन्तर्गत देखा जाता है। विश्व में कुछ लोग संसाधनों का उपभोग अपनी विलासिता के लिए करते हैं, वहीं दूसरी ओर कुछ लोगों को खाद्यान्न की उपलब्धता भी नहीं हो पाती है।

वर्ष 1985 में अनिल अग्रवाल ने "भारत की पर्यावरणीय स्थिति" की सर्वप्रथम रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमें इस बात पर जोर दिया गया कि भारत में पर्यावरणीय समस्याओं का कारण धनी लोगों द्वारा संसाधनों के अतिदोहन के प्रतिमान (Patterns) हैं जिसके फलस्वरूप निर्धन लोग और अधिक निर्धन होते जा रहे हैं। इस रिपोर्ट में प्रथम बार यह माना गया कि आदिवासी, मुख्यतः महिलाएँ एवं समाज के अन्य उपेक्षित वर्गों को आर्थिक विकास के दायरे से बाहर रखा गया है।

अनिल अग्रवाल द्वारा बताये गये 8 प्रस्ताव :-

अनिल अग्रवाल ने 8 ऐसे प्रस्ताव रखे जो पर्यावरण नैतिकता से जुड़े मुद्दों के लिए लाभदायक हैं।

1. धनी वर्ग द्वारा संसाधनों का अतिदोहन भारत में पर्यावरण के विनाश का व्यापक रूप से मुख्य कारण है।
2. पर्यावरण विनाश से सबसे अधिक पीड़ित निर्धन लोग हैं।
3. अगर कहीं पर प्रकृति को पुनःनिर्मित (पुनर्वनीकरण) भी किया जा रहा है तो वह परिवर्तन अथवा रूपांतरण निर्धनों की आवश्यकताओं के लिए न होकर, धनी वर्गों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हो रहा है।
4. पीड़ित निर्धनों में भी पर्यावरण विनाश से सबसे अधिक पीड़ित उपेक्षित संस्कृति एवं व्यवसाय है और इन सभी में भी महिलाएँ सबसे अधिक पीड़ित हैं।
5. समाज एवं संस्कृति को सम्पूर्ण रूप में समझे बिना उचित सामाजिक एवं आर्थिक विकास नहीं किया जा सकता है।
6. अगर हमें निर्धनों की चिंता है तो सकल प्रकृति उत्पाद (Gross Nature Product) को नष्ट नहीं किया जा सकता है। प्रकृति का संरक्षण एवं पुनःनिर्माण आज मानव जाति की सर्वोच्च प्राथमिकता बन गई है।
7. सकल प्रकृति उत्पाद में वृद्धि तभी सम्भव है, यदि हम लोगों और सामान्य संपत्ति संसाधनों (Common Property Resources) के मध्य बढ़ते अलगाव को रोक सकें और उसे दूसरी ओर मोड़ सकें।
8. विश्व संरक्षण रणनीति (World Conservation Strategy) की तर्ज पर मात्र ग्रामों के सतत् विकास (Sustainable Development) की बात करना अपर्याप्त है। जब तक हम सतत नगरीय विकास नहीं कर लेते तब तक हम नगरीय पर्यावरण एवं इस पर निर्भर ग्रामीण लोगों की रक्षा नहीं कर सकते हैं।

मैं हमेशा आश्चर्यचकित हो जाता हूँ और क्रोधित भी जब लोग ग्रामीणों के लिए पर्यावरण शिक्षा की बात करते हैं। पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता तथाकथित शिक्षित लोगों के लिए है न कि अन्य लोगों हेतु।

—अनिल अग्रवाल,

"तीसरी दुनिया के देशों में मानव-प्रकृति के बीच पारस्परिक क्रिया" (Human & Nature Interaction in a Third-World Country)

पर्यावरण पतन (Environmental degradation) से प्रभावित होने वाले सामाजिक वर्ग :-

समाज के अधिकांश वर्गों को पर्यावरण पतन के प्रभाव महसूस नहीं होते हैं। पर्यावरण पतन से सबसे अधिक प्रभावित होने वाले वर्ग हैं।

1. निर्धन लोग
2. महिलाएँ
3. वनों पर निर्भर जनजातीय लोग
4. नदियों एवं धाराओं पर निर्भर रहने वाले पारम्परिक मछुवारे।

5. तटीय क्षेत्रों में रहने वाले लोग, जो मछली पकड़ते हैं, समुद्री पारिस्थितिक तन्त्र के पतन से गंभीर रूप से प्रभावित होते हैं।
6. ईंधन लकड़ी संग्राहक (Fuelwood gatherers) जो विभिन्न प्रकार के वनीय क्षेत्रों में तथा आसपास रहते हैं।
7. चरवाहे (Pastoralists) :- सामान्य घास के मैदान के पतन से चरवाहों के ऊपर गंभीर प्रभाव पड़ता है।
8. समाज के अनेक उपेक्षित वर्ग सबसे अधिक प्रभावित होते हैं।

वन संसाधनों का न्याय संगत उपयोग :-

(Equitable use of Forest Resources)

सामान्यतः यह कहा जाता है कि ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले गरीब लोग ईंधन लकड़ी एकत्रित करते हैं जिस कारण से वन विनाश हो रहा है। लेकिन यह हम भूल जाते हैं कि धनी लोग इनसो कहीं अधिक इमारती लकड़ी का उपभोग करते हैं।

बायोमास आधारित उद्योगों (कपास के कपड़ों का उद्योग, कागज, प्लाइवुड, रबड़, साबुन, चीनी, जूट, तम्बाकू, चॉकलेट, खाद्य प्रसंस्करण एवं पैकेजिंग) को भूमि, ऊर्जा, सिंचाई तथा वन संसाधनों की आवश्यकता पड़ती है। क्या हम इस संसाधनों का अतिदोहन करते समय या इन्हें बेकार करते समय थोड़ा सा भी सोचते हैं? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है जिसे हमें सोचना चाहिए।

नगरीय क्षेत्रों में पढ़े लिखे लोग, ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले लोगों की तुलना में अत्यधिक मात्रा में संसाधनों एवं ऊर्जा का उपयोग करते हैं। नगरीय लोग इन संसाधनों से दूर रहते हैं इसलिए उनके लिए एक अच्छी तरह से तैयार पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता है ताकि वे संसाधनों से सम्बन्धित मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनें। जबकि ग्रामीण लोगों में प्राकृतिक संसाधनों के संवाहनीय उपयोग की समझ होती है क्योंकि वे इन संसाधनों के निकट रहते हैं। ग्रामीण समुदाय प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के तरीकों से भी भलीभाँति परिचित होते हैं। यद्यपि अनेक ऐसी पर्यावरणीय समस्याएँ जो इन ग्रामीण समुदायों के व्यवहार क्षेत्र से बाहर हैं। जैसे – वैश्विक गरमपन, पर्यावरण प्रदूषण समस्याएँ आदि। इसीलिए इन ग्रामीण समुदायों हेतु एक विशेष प्रकार की पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता है जो उनके जानकारी के अन्तराल (Gap of information) से सम्बन्धित है। ग्रामीण स्थानीय पारम्परिक ज्ञान प्रणाली को आधार मानकर नई संकल्पनाओं को बनाया जाना चाहिए। अर्थात् पारम्परिक प्रणाली को नवीन प्रणालियों से जोड़ना।

भारत में सामान्य सम्पत्ति संसाधन (Common Property Resources) के अन्तर्गत वन, चरागाह तथा जलीय पारिस्थितिक तन्त्र आते थे। उस समय जब अंग्रेजों को पानी के जहाज बनाने एवं अन्य उपयोगों हेतु लकड़ी की कमी महसूस हुई तो उन्होंने वन क्षेत्रों को "सरकारी संरक्षित वनों" में बदल दिया ताकि वे वहाँ इमारती लकड़ी के पेड़ों को उगा सकें। इस कारण से स्थानीय लोगों को वनीय संसाधनों से अलग कर दिया गया और वो उनकी सुरक्षा नहीं कर पाये। फलस्वरूप बड़े पैमाने पर वनावरण को नुकसान हुआ तथा बंजर भूमि का विस्तार हुआ।

भूतकाल में, परम्परागत ग्रामीण तन्त्र का प्रबन्धन स्थानीय पंचायतों द्वारा किया जाता था और चरागाह, ईंधन लकड़ी संग्रह से सम्बन्धित सख्त नियम थे जिनका सभी पालन करते थे। प्राकृतिक संसाधनों का लगभग सभी में बराबर बटवारा होता था। जो लोग नियमों का उल्लंघन करते थे उन्हें पंचायतों द्वारा दण्ड दिया जाता था। इस प्रकार सामान्य सम्पत्ति संसाधन स्थानीय समुदायों द्वारा सुरक्षित एवं संरक्षित रखे जाते थे। लेकिन जैसे-जैसे भूमि उपयोग बदलता गया, ये स्थानीय तन्त्र भी विलुप्त होता गया तथा असततीय प्रथाओं का विकास होता गया जिसका कारण अपर्याप्त विकास योजनाओं की रणनीतियाँ थीं।

6.5.2 उत्तरी एवं दक्षिणी देशों में न्यायसंगतता एवं असमानता :-

(Equity-Disparity in the Northern and Southern Countries)

पर्यावरणीय नैतिकता इस विषय से भी सम्बन्धित है कि संसाधन किसके पास है तथा ये संसाधन किस प्रकार से वितरित हैं। इसका अध्ययन विभिन्न स्तरों पर किया जा सकता है। वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय नैतिकता विशाल उत्तर-दक्षिण विभाजन को देखता है।

आर्थिक रूप से सम्पन्न देशों में प्रति व्यक्ति संसाधन एवं ऊर्जा खपत सबसे अधिक है। तथा यहाँ पर सबसे अधिक संसाधनों की बर्बादी होती है।

आर्थिक रूप से उन्नत देशों ने अपने प्राकृतिक संसाधनों को लगभग समाप्त कर दिया है। अब ये देश विकासशील देशों के प्राकृतिक संसाधनों को खरीद रहे हैं। ये देश संसाधनों की दृष्टि से तो अमीर हैं लेकिन आर्थिक रूप से गरीब हैं। इन गरीब विकासशील देशों की जनसंख्या इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों पर अपने जीवन निर्वाह के लिए निर्भर है।

इस अनुचित आर्थिक प्रथा को उचित एवं न्यायिक आर्थिक प्रथा में बदलना समय की आवश्यकता है।

उत्तर-दक्षिण विभाजन (North-South Divide)

यूरोप एवं उत्तरी अमेरिका के धनी औद्योगिक देशों एवं दक्षिण एवं दक्षिण-पूर्व एशिया तथा दक्षिण अमेरिका के विकासशील देशों के मध्य आवश्यकताओं एवं संसाधन उपलब्धता तथा विकास को लेकर स्थिति में सापेक्ष अन्तर।

6.5.3 ग्रामीण एवं नगरीय न्यायसंगतता के मामले :- (Urban-rural equity issues)

ग्रामीण समुदाय की सामान्य भूमि का उपयोग नगरीय क्षेत्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जा रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों की आम सम्पत्ति संसाधनों (Common Property Resources) पर अब औद्योगिक एवं नगरीय क्षेत्रों का विस्तार हो रहा है जिसके फलस्वरूप ग्रामीण समुदाय, मुख्यतया भूमिहीन एवं मजदूर वर्ग, निर्धनता के चक्र में उलझ रहे हैं और नगरीय लोग और अमीर होते जा रहे हैं। नगरीय धनी वर्गों को आवश्यकता है वे लोग ग्रामीणों को अथवा उन सभी को जिनसे वे संसाधनों को प्राप्त करते हैं, उचित मूल्य प्रदान करें।

6.5.4 लिंग समानता की आवश्यकता :-

(The Need for Gender Equity)

पूरे भारत में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, महिलाएँ पुरुषों से अधिक समय तक कार्य करती हैं फिर भी महिलाओं की हालत दरिद्र बनी रहती है। ये महिलाएँ प्रातःकाल से लकड़ी एकत्रित करना, चारा एकत्रित करना, लकड़ियों को बाजार में बेचकर आना, खाना बनाना, सफाई करना, बच्चे संभालना इत्यादि कार्यों में लगकर रात तक कार्य करती रहती हैं। इन कार्यों हेतु ये महिलाएँ कई कि०मी० तक पैदल चलती हैं। इन कार्यों हेतु 10 से 12 घण्टे लगते हैं। ग्रामीण पर्यावरण का वैसे तो महिलाओं द्वारा नियन्त्रण होना चाहिए लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों के आम संसाधनों एवं क्रियाकलापों में पुरुषों का नियन्त्रण है। दुर्भाग्यवश महिलाओं को अपने को, विकसित करने एवं अपनी बात रखने का अवसर नहीं मिल पाता है।

पुरुषों एवं महिलाओं के बीच ये खाई उन ग्रामीण समुदायों में अधिक है जो वनों के आसपास रहते हैं। महिलाओं एवं पुरुषों के बीच इस बटवारे में लड़कियों की शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाता है।

ग्रामीण महिलाएँ पर्यावरण से निकटता से जुड़ी हुई हैं और पर्यावरण की महत्ता को पुरुषों के मुकाबले अच्छे से समझती हैं इसलिए अनेकों पर्यावरणीय आंदोलनों में महिलाओं ने मुख्य भूमिका निभाई है। उदाहरणार्थ – चिपको आन्दोलन।

6.5.5 भावी पीढ़ियों के लिए संसाधनों का संरक्षण अथवा संसाधनों का सतत् प्रयोग (Preserving Resources for Future Generation or Sustainable use of Resources)

आज के समय में प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुन्ध उपयोग ही रहा है। अगर हम संसाधनों का तथा जीवाश्म ईंधन से प्राप्त ऊर्जा का अतिदोहन तथा गलत प्रयोग करते रहे तो हमारी भावी पीढ़ी को जीवन निर्वहन हेतु अपार समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

इसके लिए हमें पारिस्थितिक तन्त्र एवं प्रजातियों को संरक्षित करना होगा। हमारी पीढ़ी को कोई अधिकार नहीं है कि वे पृथ्वी के संसाधनों का असतततापूर्वक उपभोग करें। ये संसाधन, जिनको हमारे पुरखों ने हमारे लिए संरक्षित करके रखा था जिन्हें हम आज उपयोग करते हैं। हमें भी चाहिए कि आज हमें इन संसाधनों का अनुकूलतम

उपयोग (Optimum Utilization) करते हुए भावी पीढ़ियों के लिए इन संसाधनों को संरक्षित रखें ताकि हमारी भावी पीढ़ियाँ जीवित रह सकें।

हमारी वर्तमान की विकासीय नीतियों से पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन को बढ़ावा मिल रहा है और भावी पीढ़ियों के बारे में नहीं सोचा जा रहा है। अतः आज हमें ये समझने की आवश्यकता है।

केस अध्ययन: चिपको आन्दोलन (Chipko Movement)

आज से 300 वर्ष पहले राजस्थान में एक शासक ने खेजरी (Khejri) नामक पेड़ों को कटवाना शुरू किया। इस कटान के विरोध में स्थानीय महिलाएँ एक बिशनोई महिला, अम्रिता देवी के नेतृत्व में सामने आ गईं। क्योंकि इन्हीं वृक्षों के ऊपर इस क्षेत्र के लोगों का जीवन निर्भर था। इन महिलाओं ने पेड़ों से लिपटकर अथवा चिपककर इन वृक्षों की रक्षा की तभी उस शासक को भी अपनी गलती का एहसास हुआ।

यह कहानी दोहराई गई उत्तराखण्ड (उस समय उत्तर प्रदेश) में 1970 के दशक में (1973)। उत्तराखण्ड में इमारती लकड़ी हेतु बड़े पैमाने पर वृक्षों को काटा जा रहा था। ठेकेदारों द्वारा इस निर्वनीकरण को रोकने हेतु सुन्दर लाल बहुगुणा तथा चण्डी प्रसाद भट्ट के नेतृत्व में स्थानीय महिलाओं द्वारा एक आन्दोलन चलाया गया। जब लकड़ी काटने वाले आते थे तो ये महिलाएँ पेड़ों से लिपट या चिपक जाती थीं। इसीलिए इसे "चिपको आन्दोलन" कहा गया। इस आन्दोलन में राजस्थान में 300 बिशनोई महिलाओं के तरीकों को अपनाया गया।

चिपको आन्दोलन उत्तराखण्ड के गढ़वाल में स्थानीय महिलाओं द्वारा चलाया गया। इन महिलाओं ने निर्वनीकरण के कारण न केवल अपने प्रयोग हेतु ईंधन लकड़ी एवं जानवरों हेतु चारा की बढ़ती तंगी को समझा, बल्कि उन्हें ये भी स्पष्ट हुआ कि टिंबर अथवा इमारती लकड़ी के लिए कटान से गंभीर बाढ़ आयेगी एवं मृदा का हास भी होगा।

चिपको आन्दोलनकर्ता हिमालय क्षेत्रों में निर्वनीकरण के विरोध में लम्बी-लम्बी पदयात्राएँ करते थे ताकि निर्वनीकरण रोका जा सके और लोग जागरूक हो जाएँ। इस आन्दोलन ने विश्व के सामने यह साबित कर दिया कि पहाड़ी क्षेत्रों में वन वहाँ की स्थानीय लोगों के लिए एक जीवन समर्थन प्रणाली (Life Support System) है। इन आन्दोलनकर्ताओं ने इस बात पर भी विचार किया कि ओक तथा अन्य चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के स्थान पर पाईन को उगाने से हिमालयी क्षेत्र में पारिस्थितिक तथा सामाजिक विकार की स्थिति आ जाती है। क्योंकि इन वनों के ऊपर स्थानीय समुदायों का जीवन जुड़ा है।

6.5.6 पर्यावरण शिक्षा एवं जागरूकता का नैतिक आधार

(Ethical Basis of Environmental Education and Awareness)

सबसे महत्वपूर्ण कार्य है एक ऐसी विचारधारा को स्थापना करना जो पर्यावरण एवं समाज में सततीय जीवन पद्धति को समर्थन करे। इस हेतु हमें पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। हमारे देश के माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह आदेश जारी किया कि प्रत्येक युवा को, प्राथमिक एवं कॉलेज स्तर पर पाठ्यक्रम में पर्यावरण शिक्षा को अंगीकृत करके, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाया जाए। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करके प्रकृति में रहते हुए वास्तविक जीवन में अनुभव प्राप्त करें ताकि पर्यावरण को ध्यान रखना हमारी नैतिकता का एक अंग बन जाए।

पर्यावरण से सम्बन्धित नैतिक मामलों से जुड़े तीन पक्ष :-

(Three aspects closely connected to Ethical issues related to Environment)

1. प्रकृति को एक संसाधन के रूप में महत्व प्रदान करना :- हमारे पूर्वज प्रकृति को माता मानते थे। इन्हीं पूर्वजों की तरह हमें एक मूल्य प्रणाली (Value System) को विकसित करना होगा ताकि, पर्यावरणीय चिन्ता हमारी जीवन पद्धति में समाहित हो सके। आज के समय में हम सब कुछ भूल चुके हैं। प्राचीन भारत में वनों को पवित्र माना जाता था। आज हमें ये पता है कि वन हमें शुद्ध वायु प्रदान करते हैं। वर्षा में सहायक हैं। हिन्दु धर्म ग्रन्थों, बुद्ध धर्म तथा विशेष रूप से जैन धर्म में पृथ्वी पर पाये जाने वाले सभी प्रजातियों को हमारे जीवन पद्धति में स्थान दिया जाता है।

वर्तमान समय में हम सभी प्रकृति से दूर हो चुके हैं। हम सभी को ये बात याद रखनी होगी कि हम जो कुछ भी अपने जीवन में उपभोग एवं उपयोग करते हैं उसका स्रोत प्रकृति है। हमारा जीवन एक ऐसे अक्षुण्ण प्रदूषणरहित संसार पर निर्भर है जिसका आधार प्राकृतिक वस्तुएँ एवं सेवाएँ हैं। जिसके बिना कोई जीवन संभव नहीं। अगर हम विश्व नागरिक के तौर पर प्रकृति को महत्व एवं आदर दें तथा उसकी चिंता करें तो वह हमारे जीवन को हमेशा समर्थन देती रहेगी। इसके लिए आवश्यक है कि प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग किया जाए।

प्राकृतिक संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग तभी संभव है यदि इन संसाधनों को सभी व्यक्तियों द्वारा प्रयोग हेतु सहभागिता हो सके। अगर असमानता अत्यधिक हो जाए तो यह अराजकता को जन्म देती है। तथा समाज अत्यधिक धनी तथा अत्यधिक निर्धन में बँट जाएगा।

उपाय :-

प्रकृति के संरक्षण की नैतिकता को पुनः स्थापित करने हेतु पर्यावरण शिक्षा की आवश्यकता है और उसके बाद आवश्यकता है प्रकृति के संरक्षण के प्रति जागरूकता। सबसे उत्तम उपाय ये है हमारे युवाओं को न केवल हमारी प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भरता को बताया जाए बल्कि प्रकृति संदरता तथा चमत्कारी पक्षों से भी उन्हें अवगत कराना अत्यधिक अनिवार्य है।

2. प्रकृति की सुंदरता को सराहना :- (Appreciating the Beauty of Nature)

हम कभी प्रकृति को गंभीरता से नहीं लेते हैं। हम शायद ही कभी सूर्य को छिपता देखते हैं, या वनों में जाकर वहाँ की शान्ति एवं शुद्धता को महसूस करते हैं। या चहचहाती चिड़ियों को सुनते हैं तथा कानों के पास से गुजरती हवा को महसूस करते तथा उसकी ध्वनि सुनते हैं। क्या हम कभी ये देखते हैं कि एक बीज से अंकुर फूटता है जो समय गुजरते एक पौधा बनता है, फिर एक वृक्ष का रूप लेता है। यह एक जादुई प्रक्रिया लगती है। ये वृक्ष हरा भरा होता है। कभी फूल खिलते हैं तो कभी फल लगते हैं और कभी इस पर पतझड़ आता है।

क्या कभी हम ये देखने की कोशिश करते हैं कि मौसमी परिवर्तन के साथ विभिन्न पक्षियों एवं जानवरों के मध्य विभिन्न प्रकार से सम्बन्ध होते हैं। यही प्रकृति की सुंदरता है जो प्रकृति को एक आन्तरिक महत्व एवं मूल्य प्रदान करती है जिसकी हम उपेक्षा कर देते हैं। अगर हम इन सुंदरता को महत्व दें तो हमारा जीवन अनगिनत रंगों से भर जाएगा।

3. जंगल की भव्यता की निधि को सुरक्षित रखना :-

जब हमें यह एकसास होता है कि जंगल की अपनी एक महत्ता है तो हमें स्वतः ही ये महसूस होने लगेगा कि हमें प्रकृति के शोषण के स्थान पर उसका संरक्षण करना चाहिए। बिना जंगल (Wilderness), हमारी पृथ्वी मानव-प्रभुत्व वाला एक दुखद उदास परिदृश्य जैसी हो जाएगी। समस्या यह है कि हमें कितने जंगल को संरक्षित करना होगा। आज के इस युग में जहाँ खेती तथा उद्योगों एवं मानव बस्तियों हेतु भूमि को प्राप्त करने की एक भूख है। जब तक हम जंगलों की पारिस्थितिक महत्ता को समझना प्रारम्भ नहीं करेंगे तब तक इनको संरक्षित करने की नैतिकता हमारे जीवन का भाग नहीं बन सकती है तथा बिना जंगलों के पृथ्वी रहने योग्य नहीं रहेगी।

6.6 जलवायु परिवर्तन, भूमण्डलीय तापन, अम्ल वर्षा, ओजोन परत रिक्तिकरण, परमाणु दुर्घटनाएँ एवं परमाणु प्रलय (Climate change, Global Warming, Acid rain, Ozone layer Depletion, Nuclear accident and Halocaust) :-

6.6.1 जलवायु संबंधी परिवर्तन और विश्व तापमान में वृद्धि:

जलवायु परिवर्तन पर अंतर सरकार पैनल की रिपोर्ट के अनुसार बीसवीं शताब्दी के तापमान में 0.60 डिग्री सेंटीग्रेट की बढ़ोतरी हुई। यह पहले के अनुमान से 0.15 डिग्री सेंटीग्रेट अधिक है। सन् 1880 के बाद मई 2003 का औसत तापमान सबसे अधिक है। डेविडसन के अनुसार शीघ्र ही 2003 को सबसे गर्म वर्ष घोषित किया जा सकता है।

विगत 143 वर्षों के तापमान रिकार्ड के अनुसार 10 सर्वाधिक गर्म वर्षों में तीन वर्ष 1998, 2001 तथा 2002 तो सिर्फ 1990 के पश्चात ही हैं। जलवायु संबंधी विषम घटनाओं में वृद्धि हुई है। वर्ष 1998 में जलवायु संबंधी 63 आपदाएं घटित हुईं, जो कि 1980 के दशक के दौरान प्रतिवर्ष औसतन 21.7 आपदाओं से काफी अधिक हैं। 1990 के दशक के दौरान बाढ़ की औसतन प्रतिवर्ष 26 आपदाएं हुईं जबकि 1980 के दशक में यह दर औसतन प्रतिवर्ष 21.7 थी। पृथ्वी पर विषम तापमान के कारण आपदाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। इसमें जलवायु में ऊर्जा प्रवाह में अंतर पड़ता है। वायुमंडल और समुद्री धाराओं के प्रवाह में परिवर्तन आता है। इससे जल चक्र परिवर्तित हो जाता है। उच्च तापमान के कारण वर्षा में वृद्धि होती है। वायुमंडल में आर्द्रता बढ़ जाती है, जिसके फलस्वरूप वर्षा और हिमपात में बढ़ोतरी होती है।

विगत वर्षों में अननुमेय मौसम के कारण जानमाल की व्यापक क्षति हुई है। विषम जलवायु के कारण 1980 के दशक में प्रतिवर्ष दो खरब डॉलर का नुकसान हुआ है। किंतु 1990 के दशक में यह क्षति बढ़कर प्रतिवर्ष बारह खरब डॉलर हो गई। सिर्फ 1998 के दस माह में मौसम से 89 खरब अमेरिकी डॉलर का नुकसान हुआ जो कि 1980 के संपूर्ण दशक की तुलना में अधिक है।

इससे निर्धन देशों को अधिक क्षति होती है। मोजाम्बिक में बाढ़ आने के कारण वर्ष 2000 में सकल घरेलू उत्पाद में 45 प्रतिशत की कमी आई है। किंतु इसी तीव्रता की बाढ़ में जर्मनी के सकल घरेलू उत्पाद का सिर्फ एक प्रतिशत नुकसान हुआ। यह आशा की जाती है कि मौसम संगठन की चेतावनी से जानमाल की क्षति को कम करने में सहायता मिलेगी।

भविष्य में ग्रीन हाउस गैस की मात्रा में वृद्धि वैश्विक जनसंख्या, आर्थिक, तकनीकी और सामाजिक रुझान पर निर्भर करेगा। जनसंख्या और ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में सीधा संबंध है। जनसंख्या बढ़ने से इन गैसों का उत्सर्जन बढ़ जाएगा। ग्रीन हाउस गैस के उत्सर्जन तथा आर्थिक विकास में प्रत्यक्ष संबंध नहीं है, किंतु विकसित देश में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन अल्प विकसित देश के प्रति व्यक्ति की तुलना में काफी अधिक है। तथापि दो बराबर विकसित राष्ट्रों में प्रतिव्यक्ति उत्सर्जन में अंतर है। यह अंतर दोनों के भौगोलिक परिस्थितियों, ऊर्जा स्रोतों तथा ऊर्जा उपयोग करने की दक्षता पर निर्भर है। यदि उत्सर्जन को कम करने का प्रयास नहीं किया गया तो सन् 1990 से 2100 के बीच पृथ्वी के तापमान में 1.4° – 5.8° C वृद्धि होने की संभावना है। तटीय क्षेत्रों की तुलना में देश के अंदरूनी भाग में गर्म होने की अधिक संभावना है। वैश्विक स्तर पर वर्षा वृद्धि की संभावना है, किंतु स्थानीय स्तरों पर रुझान को स्पष्ट करना कठिन है। अधिक वर्षा और बर्फ के कारण ऊँचे भागों में सर्दी के मौसम में मिट्टी रहेगी, किंतु तापमान बढ़ने से गर्मी के दिनों में शुष्कता बढ़ जाएगी। विषम मौसम के कारण तूफान एवं झंझावतों की आवृत्ति में अंतर आ जाएगा।

19वीं सदी से अब तक के वैश्विक तापवृद्धि की रुझान से पता चलता है कि औसत तापमान में 0.6° + 0.2° C की वृद्धि हुई है। उत्तरी गोलार्द्ध में विगत एक हजार वर्षों से सबसे अधिक तापमान में वृद्धि 20वीं सदी में हुई है। इसके साथ ही उत्तरी गोलार्द्ध में 1990 का दशक सहस्राब्दि का सबसे गर्म दशक रहा है। सन् 1998 सबसे गर्म वर्ष साबित हुआ। समुद्र के जल स्तर में औसत वृद्धि 10–15 प्रतिशत हुई है। आर्कटिक में हिम परत में 40 प्रतिशत की कमी हुई है। ग्रीन हाउस गैस एवं एरोसोल की मात्रा में वृद्धि के अनुरूप 20वीं सदी में जलवायु में परिवर्तन हुआ है।

जलवायु संबंधी परिवर्तनों का प्रभाव:

संपूर्ण विश्व में जलवायु संबंधी परिवर्तन निम्न पलिक्षित होते हैं।

1. प्रदूषण से भारत पर पड़ने वाली सौर-ऊर्जा में कमी:

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनएडपी) के साथ शोधकार्य में जुड़ी वैज्ञानिकों की एक टीम ने हाल में प्रकाशित अपने शोध निष्कर्ष में यह घोषणा की है कि दक्षिण एशिया क्षेत्र पर फैलते प्रदूषण और धुंध की परत के कारण भारत के ऊपर पड़ने वाली सूर्य की रोशनी में 10 प्रतिशत की कमी आ गई है। प्रदूषण और धुंध की इस परत को 'एशियन ब्राउन हेज' (एशियाई भूरी धुंध) कहते हैं। इसके कारण न केवल कृषि को भारी क्षति का सामना करना पड़ सकता है, बल्कि मानसून प्रक्रिया में परिवर्तन के आसार भी दिखाई देने लगे हैं। शोध निष्कर्ष में यह स्पष्ट किया गया कि प्रदूषण के कारण इस परत में ऐसे अम्ल मौजूद हैं, जो पेड़-पौधों और फसलों को बहुत अधिक नुकसान पहुंचा सकते हैं। वैज्ञानिकों ने यह कहा कि जिन पदार्थों से धुंध की इस परत का निर्माण हुआ है, उसके कारण लोग बड़े पैमाने पर सांस की बीमारियों के शिकार हो सकते हैं और असामयिक मौतों की संभावना बढ़ सकती है।

2. कृषि एवं खाद्य सुरक्षा:

जलवायु परिवर्तन में स्थितियाँ और भी बदतर हो जाएँगी। तथापि 2.5°C से कम तक के औसत वैश्विक तापवृद्धि का असर खाद्य सुरक्षा पर नहीं पड़ेगा, किंतु यदि औसत वैश्विक तापवृद्धि 2.5°C से अधिक होती है तो खाद्य पदार्थों के मूल्य में वृद्धि हो जाएगी। कुछ कृषि क्षेत्रों पर जलवायु परिवर्तन का दुष्प्रभाव पड़ेगा।

खाद्यान्न उत्पादन एवं उत्पादकता पर इसका व्यापक असर पड़ेगा। तापवृद्धि, मानसून में परिवर्तन तथा शुष्क मिट्टी के कारण शीतोष्ण तथा उपशीतोष्ण क्षेत्रों में उत्पाद में एक तिहाई की कमी आएगी। इन प्रदेशों में फसल ताप सहन करने में सक्षम होती है। मध्य महाद्वीपीय प्रदेश तथा अमेरिकी अन्न उत्पादन क्षेत्र, मध्य एशिया का विस्तृत भाग, उपसहारा अफ्रीका तथा आस्ट्रेलिया के कई भागों में सूखा के आसार बढ़ जाएंगे।

उच्च तापमान का असर उत्पादन प्रतिमान पर पड़ता है। पादप तथा प्राणी के स्वास्थ्य के लिए थोड़ी ठंड आवश्यक है। किंतु उच्च तापमान के कारण कई फसल नष्ट हो जाएँगी, खासकर वर्षा की कमी होने से। उच्च स्थानों में खरपतवार में वृद्धि हो जाएगी। मैदानी भागों तथा चरागाहों की उत्पादकता पर भी असर पड़ेगा। यदि कृषि पर दुष्प्रभाव पड़ता है तो अन्न महंगा हो जाएगा। ऐसी स्थिति में पशुपालन भी दुष्कर हो जाएगा। विषम मौसम में पशुपालन फिर भी कृषि की अपेक्षा सहज होगा।

3. सागर का जल स्तर, महासागर तटीय क्षेत्र:

विगत सौ वर्षों में सागर का जल स्तर 10 सेन्टीमीटर से लेकर 20 सेन्टीमीटर तक बढ़ा है। जल स्तर उठने की दर 1–2 मिलीमीटर प्रतिवर्ष है जो कि विगत 3,000 वर्षों के दस गुना है। इसका मुख्य कारण सन् 1860 से वायुमंडल के निम्न भागों में 0.6 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान में वृद्धि है। इसके कई परिणाम हुए हैं। यथा—सागर के ऊपरी सतह के मापमान में वृद्धि, अति वाष्पीकरण, हिम का पिघलना तथा समुद्री आहार शृंखला में परिवर्तन।

समुद्र के जल स्तर उठने से प्रमुख आर्थिक क्षेत्र प्रभावित होंगे। समुद्र से काफी मात्रा में खाद्य पदार्थ प्राप्त होते हैं। मत्स्यपालन, जल कृषि तथा कृषि, सभी पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। पर्यटन, आवास क्षेत्र तथा बीमा क्षेत्र पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ेगा। हाल के मौसम संबंधी आपदाओं से बीमा क्षेत्र को काफी नुकसान उठाना पड़ा है। समुद्र के जल स्तर उठने से अधिकांश तटीय क्षेत्र डूब जाएंगे तथा लाखों को विस्थापन का दर्द झेलना पड़ेगा। तटीय क्षेत्रों की कमजोर पारिस्थितिकी इस आपदा से प्रभावित होगी। तटीय क्षेत्र में विविधतापूर्ण पारिस्थितिकी होती है। इस उत्पादक पारिस्थितिकी में कच्छ वनस्पति, प्रवाल-भित्ति तथा समुद्री घास पाए जाते हैं। वर्षा तथा तूफान की तीव्रता का अत्यंत व्यापक असर तटीय पादप एवं प्रवाल पर पड़ता है। प्रवाल समुद्र के जल स्तर बढ़ने के साथ बढ़ेगा। किंतु तापमान बढ़ने के साथ नष्ट हो जाएगा।

केस अध्ययन (Case Study)

प्रशान्त महासागर में प्रवाला भित्तियों को क्षति (Damage of Coral Reefs in Pacific)

वर्ष 1997 में अल-नीनो के कारण पैदा हुए गंभीर आवधिक गरमपन के कारण अब तक के इतिहास में सर्वाधिक प्रवाल भित्तियों की गंभीर मृत्यु हुई। एक आंकलन के अनुसार पृथ्वी की लगभग 10% प्रवाला भित्तियाँ मारी गईं। 30% गंभीर रूप से प्रभावित हुई तथा अन्य 30% प्रवाला भित्तियों का क्षय अथवा पतन हुआ।

वैश्विक प्रवालभित्ति निगरानी तन्त्र, टान्सविले (ऑस्ट्रेलिया) द्वारा की गई भविष्यवाणी के अनुसार वर्तमान स्थिति को देखते हुए वर्ष 2050 तक विश्व की सभी प्रवाला भित्तियाँ मारी जा सकती हैं।

4. जैव विविधता एवं पारिस्थितिकी:

तापमान बढ़ने से पर्यावरणीय, आर्थिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के स्रोत तथा जैव विविधता नष्ट हो जाएगी। जलवायु परिवर्तन से पारिस्थितिकी की भौगोलिक बनावट तथा संरचना परिवर्तित होगी क्योंकि प्रत्येक प्राणी भिन्न प्रकार से अपने को समायोजित करने का प्रयास करेंगे।

मानवीय दबाव के कारण प्राणियों के निवास स्थल भी नष्ट हो जाएंगे। जो प्राणी परिवर्तित जलवायु में अपने आपको समायोजित नहीं कर पाएँगे, वे नष्ट हो जाएंगे। यह अपूर्ण क्षति होगी। जलवायु निर्धारण में वन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। यह कार्बन का प्रमुख स्रोत होता है। वनस्पति का 80 प्रतिशत कार्बन तथा भूमि का 40 प्रतिशत कार्बन वनों में संरक्षित है। यदि वन शीघ्रता से नष्ट होता है तो पेड़ों के नष्ट होने से वायुमंडल में कार्बन का उत्सर्जन अधिक होगा। पेड़ों के उगने से कार्बन का अवशोषण तथा नष्ट होने से इसका उत्सर्जन होता है।

मरुस्थलीय तथा अर्ध-मरुस्थलीय पारिस्थितिकी का टिकना असंभव हो जाएगा। मरुभूमि के तापमान में वृद्धि होगी तथा इन प्रदेशों में वर्षा की कमी होती जाएगी। उच्च तापमान में वे प्राणी नष्ट हो जाएंगे जो इतने तापमान सहन करने के अभ्यस्त नहीं हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में मौसम में परिवर्तन आ सकता है। मैदानी क्षेत्रों में विश्व के 50 प्रतिशत पशु निवास करते हैं। तापमान एवं वर्षा में परिवर्तन में मैदानी भाग, कटीली झाड़ियाँ तथा वन के विस्तार क्षेत्र में परिवर्तन आने की संभावना है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में वाष्पीकरण-वर्षा चक्र में परिवर्तन से उत्पादकता तथा प्राणी जीवन पर असर पड़ेगा।

मानवीय गतिविधियों के कारण पर्वतीय क्षेत्र पर पहले से ही दबाव है। हिमनद तथा हिम परतों के गलने से मिट्टी के संतुलन तथा जल चक्र पर असर पड़ेगा। फलस्वरूप मैदानी भागों के प्राणी पहाड़ी भागों की ओर पलायन करेंगे। इससे कई पर्वतीय प्राणी नष्ट हो जाएंगे। कृषि, पर्यटन, जल विद्युत काष्ठ उद्योग तथा अन्य आर्थिक गतिविधियाँ प्रभावित होंगी। कई देशों में खाद्यान्न तथा चारा का अभाव हो जाएगा। जल क्षेत्र में कई प्राणियों के आश्रय एवं प्रजनन स्थल होते हैं। वे प्राणी जल की गुणवत्ता को बनाए रखते हैं तथा बाढ़ को नियंत्रित करते हैं। एक अध्ययन के अनुसार तापमान बढ़ने से वाष्पीकरण होता है। जल क्षेत्र में परिवर्तन से जैविक तथा जैव रासायनिक परिवर्तन होते हैं। इससे पारिस्थितिकी तथा भौगोलिक वितरण प्रभावित होता है।

5. जल संसाधन:

जलवायु परिवर्तन में वर्षा के साथ-साथ वाष्पीकरण में भी वृद्धि होती है। सामान्य रूप से इस जल चक्र में वृद्धि के आर्द्र रहने की संभावना बढ़ जाती है। वर्षा कुछ क्षेत्र में अधिक होती है तथा कुछ क्षेत्र में कम। जल चक्र में परिवर्तन से वनस्पति, वर्षा इत्यादि में परिवर्तन होता है। जल चक्र में परिवर्तन से न सिर्फ जलवायु और वर्षा में परिवर्तन होता है, अपितु वन विनाश, शहरीकरण तथा जल संसाधन से पता चलता है कि वर्षा में वृद्धि होती जाएगी। इससे बाढ़ में वृद्धि होगी तथा पानी का जमीन के अंदर रिसने की क्षमता में कमी आएगी। अधिक वर्षा में पर्वतीय क्षेत्रों में भी बाढ़ की घटनाएँ बढ़ जाएंगी। वर्षा में अधिकता से हिमताप में कमी आएगी। अर्द्ध शुष्क, निम्न तटीय क्षेत्र, डेल्टा तथा छोटे द्वीपों पर इसका असर पड़ेगा।

केस अध्ययन

(Case Study)

युनाइटेड किंगडम (United Kingdom) में तितलियों की जनसंख्या :-

वैश्विक गर्मपन के प्रभाव के कारण ब्रिटेन में तितलियाँ अपने समय से पहले पर्यावरण में दिखने लगी हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार पिछले दो दशकों में तितलियाँ अपने समय से बहुत अधिक पहले दिखने लगी हैं। अन्य पक्षी जैसे - मारे तथा ऑरेन्ज टिप भूतकाल से 15 से 25 दिन पहले दिखने लगी हैं। भविष्य में अगर और अधिक तापमान में वृद्धि होती है तो इसका तितलियों पर हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है। ऐसी तितलियाँ जिन्हें निम्न तापमान की आवश्यकता होती है, सबसे अधिक प्रभावित होंगी।

6. आधारभूत संरचना, उद्योग तथा मानव निवास-स्थान:

जलवायु में परिवर्तन का असर मानव के परिवेश पर पड़ता है। मत्स्याखेट, स्थायी कृषि तथा प्राकृतिक संसाधनों से संपन्न प्रदेश इससे प्रभावित होते हैं। इन क्षेत्रों से भी अधिक असर आर्थिक तकनीकी, सामाजिक तथा पर्यावरणीय मुद्दों पर पड़ेगा। बाढ़ एवे भू-स्खलन का दुष्प्रभाव आधारभूत संरचना पर पड़ेगा। उष्णकटिबंधीय चक्रवात से तटीय क्षेत्रों को भारी नुकसान होने की संभावना है।

जलवायु में ताप वृद्धि से उत्तर अफ्रीका, मध्य पूर्व, दक्षिण-पश्चिम एशिया, उत्तर अमेरिका तथा एशिया-प्रशांत क्षेत्र के कुछ भाग जैसे जल की कमी वाले क्षेत्र में जल की मांग और बढ़ जाएगी। समुद्र के जल स्तर में वृद्धि से तटीय आधारभूत संरचना तथा संसाधन आधारित उद्योग प्रभावित होंगे। कई तटीय क्षेत्र अत्यंत विकसित हैं। इनमें मानव के निवास-स्थल उद्योग, बंदरगाह तथा अन्य आधारभूत संरचनाएँ अवस्थित हैं। इनमें से कई छोटे द्वीपीय देश, डेल्टा, विकासशील देश तथा सघन आबादी वाले प्रदेश हैं। पर्यटन और मनोरंजन उद्योग इन देशों की आय के प्रमुख स्रोत हैं। ये उद्योग तटीय संसाधनों पर निर्भर हैं।

7. आपदाएँ एवं विषम घटनाएँ

जलवायु परिवर्तन से लू की आवृत्ति एवं तीव्रता बढ़ने की संभावना रहती है। अधिक गर्म मौसम के कारण बड़े-बूढ़ों की सेहत पर असर पड़ता है। और अक्सर मौत हो जाती है। तापमान बढ़ने से पशुधन एवं वन्य प्राणी प्रभावित होते हैं। फसल नष्ट होने तथा आगजनीकी घटनाएँ बढ़ जाती हैं। पर्यटन स्थल तथा ऊर्जा की मांग में परिवर्तन आता है। तीव्र वर्षा से कई क्षेत्रों में बाढ़ आ जाती है। इसके अतिरिक्त भू-स्खलन, हिमस्खलन एवं मिट्टी के अपरदन की घटनाएँ बढ़ जाती हैं। जल के अत्यधिक प्रवाह से कृषि एवं अन्य कार्य हेतु संचित जल स्रोत में कमी आती है। कई क्षेत्रों में उष्णकटिबंधीय तूफान की तीव्रता बढ़ जाती है।

6.6.2 वैश्विक गरमपन (Global Warming)

पृथ्वी पर पहुँचने वाले कुल सौर विकिरण का लगभग 75% भाग पृथ्वी तल पर विभिन्न माध्यमों द्वारा सोख लिया जाता है जिससे पृथ्वी गर्म रहती है। बची हुई ऊष्मा वायुमण्डल में वापिस चली जाती है। ऊष्मा का कुछ भाग ग्रीनहाउस गैसों द्वारा सोख लिया जाता है जिनमें सबसे महत्वपूर्ण गैस – कार्बन-डाई-ऑक्साइड है। कार्बन डाई ऑक्साइड (CO₂) विभिन्न मानवीय क्रियाओं द्वारा वायुमण्डल में छोड़ी जाती है। इसकी मात्रा में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। इस वृद्धि से ही वैश्विक गरमपन की समस्या सामने आ रही है।

पृथ्वी की सतह का औसत तापमान लगभग 15⁰ सेल्सियस है। अगर पृथ्वी पर ग्रीन हाउस प्रभाव न होता तो यहाँ का तापमान -18 से0 होता। अर्थात् अगर ग्रीन हाउस गैसों न होती तो पृथ्वी जम जाती और यहाँ जीवन न पाया जाता। ग्रीनहाउस प्रभाव के कारण ही पृथ्वी का तापमान, इसके मौलिक तापमान (ग्रीनहाउस गैसों के बिना) से 33⁰ से0 अधिक है।

पिछले कुछ दशकों में मानवीय क्रियाओं जैसे – औद्योगिकरण एवं जनसंख्या वृद्धि से वायुमण्डलीय प्रदूषण की समस्या उतनी अधिक गंभीरता से सामने आई है कि इसने जलवायु को गंभीरता से प्रभावित किया है। वायुमण्डल में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा में, पूर्व-औद्योगिकरण से पूर्व के समय की तुलना में, 31% की वृद्धि दर्ज की गई है जिसके द्वारा और अधिक ऊष्मा का संकेन्द्रण निचले वायुमण्डल में हो रहा है। ऐसे साक्ष्य उपलब्ध हैं जो ये बताते हैं कि कार्बन-डाई-ऑक्साइड की मात्रा निरन्तर बढ़ रही है। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन के अन्तर्गत ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा कम करने हेतु अनेक देशों ने सम्मेलन में हस्ताक्षर किये। लेकिन सत्य यह है कि विश्व स्तर पर होने वाले वर्तमान में जलवायु परिवर्तन तथा समुद्र तल वृद्धि के लिए होने वाले समझौतों का कोई असर नहीं दिख रहा है।

जलवायुवेत्ताओं द्वारा कई वर्ष पूर्व की गई गणना से कहीं अधिक गति से, वैश्विक गरमपन में वृद्धि हो रही है। वर्ष 1995 में अन्तर्सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल (Inter-Governmental Panel on Climate Change) की बैठक में यह भविष्यवाणी की गई कि अगर वर्तमान प्रवृत्ति रहती है तो 21वीं शताब्दी के दौरान वैश्विक गरमपन के कारण तापमान में 3.5⁰से0 से 10⁰से0 तक की वृद्धि होगी। अब ये विश्वास किया जा रहा है कि यह वृद्धि और अधिक हो सकती है। इसके परिणामस्वरूप न केवल तापमान-परिवर्तन होगा बल्कि वर्षा की मात्रा में भी परिवर्तन आएगा जिसके कारण भारत में वर्षा में अत्यधिक उतार चढ़ाव होगा जिसका परिणाम होगा – बार-बार बाढ़ एवं सूखा की समस्या होना।

6.6.3 अम्लीय वर्षा:

अम्लीय वर्षा वायु प्रदूषण का विनाशक परिणाम है। इसकी खोज सन् 1850 में राबर्ट अंगुस स्थिम ने मैनचेस्टर में की थी। वर्तमान में यह देश 'अम्लीय वर्षा' सूचना स्थल (ए0आर0आई0) के नाम से भी जाना जाता है। इस स्थल की स्थापना सन् 1984 में हुई थी। स्कैंडेनेवियन देशों के लिए अम्लीय वर्षा सबसे बड़ी समस्या है।

अम्लीय वर्षा वायु प्रदूषण का विनाशक परिणाम है। इसका कारण वायुमण्डल में सल्फर डाईऑक्साइड व नाइट्रोजन ऑक्साइड का पानी में घुल जाना है। साधारणतया वर्षा जल हल्का सा अम्लीय होता है चूंकि उसमें CO₂ के घुलने से कार्बोनिक अम्ल बन जाता है। किंतु यदि वर्षा जल में सल्फर डाई ऑक्साइड व नाइट्रोजन ऑक्साइड के घुलने से pH 5.6 या उससे कम हो जाए तो उसको अम्ल वर्षा कहते हैं। अम्लीय वर्षा में अम्लों का प्रतिशत इतना बढ़ जाता है कि वह पेड़-पौधों एवं इमारतों को गंभीर नुकसान पहुँचाने लगते हैं और वर्तमान समय में औद्योगिक प्रगति के साथ-साथ यातायात और ऊर्जा उत्पादन के साधनों का उपयोग बहुत बढ़ गया है। दैनिक जीवन में

जीवाश्म ईंधन अर्थात् पेट्रोलियम पदार्थों और कोयला का उपयोग बहुत गढ़ गया है। दैनिक जीवन में जीवाश्म ईंधन के जलाने से सल्फर डाइऑक्साइड और नाइट्रोजन डाइऑक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। यह क्रम वर्षों से चल रहा है। वर्तमान में वायुमंडल से सल्फर के ऑक्साइडों की 60 प्रतिशत और नाइट्रोजन के ऑक्साइडों की 30 प्रतिशत मात्रा केवल ताप विद्युतघरों से उत्पन्न होती है।

अम्लीय वर्षा का कारण

वातावरण की नमी के कारण सल्फर डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन ऑक्साइड जलवाष्प से क्रिया करके क्रमशः सल्फ्यूरिक अम्ल एवं नाइट्रिक अम्ल में बदल जाती है।



ये गैसों क्रमशः सल्फ्यूरिक अम्ल और नाइट्रिक अम्ल बनाती हैं, जो वर्षा के रूप में पृथ्वी पर गिरता है। यह क्रिया अम्लीकरण कहलाती है।

अम्ल बनने की क्रिया दो स्तरों पर होती है।

1. गैस स्तर पर
2. तरल स्तर पर।

दोनों स्तरों की रासायनिक अभिक्रियाओं में सल्फर और नाइट्रोजन के ऑक्साइड विभिन्न स्थितियों से गुजरते हैं। इसमें सूर्य का प्रकाश और दूसरे तत्व, जैसे मैग्नीज आदि उत्प्रेरक का कार्य करते हैं। इसके परिणामस्वरूप अम्ल बनने की क्रिया तेज हो जाती है।

अम्लीय वर्षा के दुष्परिणाम:

अम्लीय वर्षा के पर्यावरण पर पड़ने वाले परिणाम गंभीर एवं दूरगामी होते हैं। इसका प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि अम्लीय वर्षा कैसे, कहां और किस रूप में हो रही है।

1. **सूखी अवस्था में:** अर्थात् जब अम्ल पानी के साथ बरसकर वायुमंडल में सूखे रूप में रहते हैं तो वे मकानों तथा इमारतों को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव से चूना, लोहा आदि कमजोर हो जाते हैं।
2. **गैस की अम्लीय अवस्था में:**
 1. गैस की अम्लीय अवस्था में रहने पर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पेड़-पौधों पर पड़ता है। पत्ते पीले पड़ जाते हैं। उनकी क्लोरोफिल बनाने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। जिससे वे अपना भोजन नहीं बना पाते तथा मर जाते हैं। इससे मृदा की उपजाऊ क्षमता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
 2. तरल अवस्था में पानी के साथ-साथ गिरने पर यह वर्षा नदी, तालाब, तथा झीलों के पानी का अम्लीय प्रतिशत बढ़ाती है। इसके परिणामस्वरूप पानी में रहने वाले जीवों की मृत्यु हो जाती है। मछलियां, शैवाल, जीवाणु अर्थात् बड़े जीवों से लेकर एक कोशिकीय जीव, सभी की मृत्यु हो जाती है तथा संपूर्ण व्यवस्था समाप्त हो जाती है।
 3. अम्लीय वर्षा के केवल सल्फर डाइऑक्साइड तथा नाइट्रोजन डाइऑक्साइड ही उत्तरदायी नहीं हैं वरन् कुछ प्राकृतिक कारक भी इस दुष्प्रभाव में सम्मिलित हैं। उदाहरण के लिए स्वीडन में पाइंस की पत्तियां (नीडिल्स) सड़क बैक्टीरिया की क्रिया से अम्ल बनाती है।
 4. अम्लीय वर्षा का दुष्प्रभाव विशेष रूप से वनों पर पड़ता है। स्वीडन, उत्तरी अमेरिका, पश्चिम जर्मनी एवं चेकोस्लोवाकिया के जंगल द्रुत गति से नष्ट हो रहे हैं। स्वीडन के एक सर्वेक्षण के अनुसार कुल 244 नष्ट होने वाले जंगलों में से 137 जंगल अम्लीय वर्षा से नष्ट हो गए हैं। सन् 1982 में स्वीडन के लगभग 34 प्रतिशत वृक्ष नष्ट हो गए थे। ब्रिटेन के पर्यावरण विशेषज्ञों के अनुसार यह सल्फ्यूरिक अम्ल वायु के साथ पश्चिमी यूरोप तक जाता है। यह वायु जीव-जंतुओं पर हानिकारक प्रभाव डालती है।

5. पश्चिम जर्मनी में नाइट्रोजन के ऑक्साइड की अधिकता के कारण ओजोन तह पतली हो रही है, साथ ही अम्लीय वर्षा के बुरे प्रभाव भी देखे गए हैं।



स्वीडन के झीलों के पानी की अम्लता संपूर्ण वर्ष (1988 में) लगभग 5.5 पी0एच0 आंकी गई। यह सामान्य बिंदु से लगभग 1.5 कम है। यही कारण है कि स्वीडन की झीलों में मछलियों की संख्या तेजी से कम हो रही है। अम्लीय वर्षा पर शोधरत वैज्ञानिकों के अनुसार वाहनों की गति बढ़ने के साथ ही नाइट्रोजन के ऑक्साइड भी बढ़ने लगते हैं।

ओजोन का क्षरण:

हमारे सौरमंडल में पृथ्वी ही संभवतः ऐसा अनोखा ग्रह है, जिसका वायुमंडल रासायनिक दृष्टि से सक्रिय तथा ऑक्सीजन से भरा हुआ है, अन्य ग्रह कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन तथा हाइड्रोजन जैसी निष्क्रिय गैसों से घिरे हुए हैं। हमारे वायुमंडल की ऊपरी परत में 15 से 35 किमी0 के मध्य ओजोन गैस (O₃) पाई जाती है। ओजोन गंधयुक्त हल्के नीले रंग की गैस है जो ऑक्सीजन के तीन परमाणुओं के संयोग से बनती है। ओजोन गैस का सर्वाधिक संकेंद्रण धरातल से 20 से 25 किलोमीटर की ऊँचाई पर समतापमंडल में मिलता है। इसमें ओजोन का विघटन एवं संयोजन होता रहता है। सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणें ओजोन के साथ रासायनिक क्रिया कर ओजोन को आणविक तथा परमाणविक ऑक्सीजन में विखंडित करती हैं।

सूर्य से आने वाली लघु तरंगिक हानिकारक पराबैंगनी किरणों का ओजोन के विघटन में ही ह्रास हो जाता है, जिससे ये पृथ्वी की धरातल पर नहीं पहुंच पाती तथा जीवमंडल को सुरक्षित बनाए रखती है। इसीलिए ओजोन परत को पृथ्वी की 'ऊष्मा-सह छतरी' या 'जैवमंडल का सुरक्षा कवच' कहते हैं। वास्तव में सौर पराबैंगनी प्रकाश के घातक प्रभाव से ओजोन हमारी रक्षा करती है। इन पराबैंगनी किरणों का तरंगदैर्घ्य तीन प्रकार का होता है। प्रथम UV-C का तरंगदैर्घ्य 200 से 290 नैनोमीटर, द्वितीय UV-B का तरंगदैर्घ्य 290 से 320 नैनोमीटर तथा तृतीय UV-A का तरंगदैर्घ्य 320 से 400 नैनोमीटर होता है। इसमें से पहली किरण ओजोन परत द्वारा पूर्णरूपेण अवशोषित हो जाती है, दूसरी का आंशिक अवशोषण होता है तथा तीसरी का नहीं होता है।

ओजोन परत का वायुमंडलीय विस्तार कई किलोमीटर है, किंतु यदि इस परत को संपीडित कर पृथ्वी के वायुदाब पर मापी जाए तो यह केवल 03 मिलीमीटर मोटी होगी लेकिन समतापमंडलीय हवा के कम दाब पर यह 35 किलोमीटर तक फैली है। धरातल से ओजोन परत की ऊँचाई में मौसम एवं अक्षांश के अनुसार शीतकाल में नीचे तथा ग्रीष्मकाल में ऊँची हो जाती है। पराबैंगनी किरणों के अवशोषण से ओजोन परत का तापमान बढ़कर 170⁰ फारेनहाइट तक हो जाता है।

ओजोन का क्षरण:

ओजोन परत के क्षरण का वैज्ञानिक व प्रमाणिक ज्ञान सबसे पहले अमेरिकी वैज्ञानिक शेरवुड रॉलैंड और मेरिओ मोलिना ने 1973 में बताया। उन्होंने कहा कि ओजोन परत को मारव निर्मित गैस क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) नष्ट कर सकती है। 1983 और 1984 में अमेरिकी उपग्रह निम्बस ने ओजोन परत का काफी नजदीक से अध्ययन किया। 1987 में शोध द्वारा यह सिद्ध हुआ कि क्लोरीन गैस ओजोन अणुओं को जब्त कर लेता। अप्रैल 1991 में नासा ने बताया कि गत एक दशक में ओजोन परत का 4.5 से 5 प्रतिशत तक ह्रास हुआ है।

क्षरण के कारण:

ओजोन परत के क्षरण के मुख्यतया दो कारणों की भूमिका होती है:

प्राकृतिक कारक: प्राकृतिक कारकों में सौर क्रिया, नाइट्रस ऑक्साइड, प्राकृतिक क्लोरीन, वायुमंडलीय संचरण, पृथ्वी के नचनात्मक प्लेट किनारों से निकलने वाली गैस तथा केंद्रीय ज्वालामुखी उद्गार से निकलने वाली गैसों प्रमुख हैं।

(क) सौर क्रिया – ओजोन को क्षति पहुंचाने वाली पराबैंगनी किरणों की मात्रा सौर स्थिरांक द्वारा प्रभावित होती है। सौर स्थिरांक धरातल से 1000 किमी⁰ की ऊँचाई पर मापी गई सूर्याभिताप की पृथ्वी के वायुमंडल में प्रवेश करने की मात्रा है जो सामान्य रूप से 2 कैलोरी प्रति वर्ग सेन्टीमीटर प्रति मिनट होती है। सौर स्थिरांक सौर क्रिया द्वारा प्रभावित होती है। सौर क्रिया के समय अधिक ऊर्जा निकलती है। एक सौर चक्र में कई सौर क्रियाएँ होती हैं। इस समय 21वाँ सौर चक्र चल रहा है, जिसमें 170 सौर क्रियाएँ हो चुकी हैं। सौर क्रिया के समय सौर स्थिरांक सामान्य से अधिक हो जाता है, जिससे ओजोन का प्राकृतिक विनाश बढ़ जाता है।

(ख) नाइट्रस ऑक्साइड – वायुमंडल में आणविक नाइट्रोजन गैस प्राकृतिक रूप में उपस्थित रहती है, जिसके साथ सूर्याभिताप के संयोग से नाइट्रस ऑक्साइड बनता है जिसे प्रकाश रसायन कहा जाता है जो ओजोन को नष्ट करता है। मध्य अक्षांशीय देशों में नाइट्रस ऑक्साइड की मात्रा में 30 से 60 प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है।

(ग) वायुमंडलीय संचरण – वायुमंडल को त्रिकोशिकीय देशांतरीय संचरण द्वारा शीतोष्ण कटिबंधीय औद्योगिक देशों से विसर्जित ओजोन विनाशक तत्व 60°–70° उत्तरी तथा दक्षिणी अक्षांशों के सहारे ऊपर उठाए जाते हैं, जो ओजोन का क्षरण करते हैं। इन गैसों को ऊपर विसर्जित करने में शीतोष्ण कटिबंधीय चक्रवातों का हाथ होता है।

(घ) प्राकृतिक क्लोरीन – वायुमंडल में प्राकृतिक स्रोतों से विसर्जित क्लोरीन की मात्रा मानव द्वारा विसर्जित क्लोरीन की मात्रा से हजारों गुना अधिक है। अंटार्कटिका महाद्वीप के रास सागर में जेम्स रास द्वीप पर 77°32' दक्षिणी अक्षांश तथा 167°9' पूर्वी देशांतर पर स्थित 12450 फीट ऊँचा माउंट एरबस एक सक्रिय ज्वालामुखी पर्वत है, जो प्रतिदिन लगभग 1000 टन क्लोरीन वायुमंडल में विसर्जित करता है।

(ङ) गैस हाइड्रेट संकल्पना – सोवियत शोधकर्ता डॉ० ब्लादीमीर साखे के अनुसार गैस हाइड्रेट रंध्रमय बर्फ की तरह होती है तथा ऊपरी वायुमंडल में निर्मित होती है। यह गैस विरल होती जा रही है। क्लोरोफ्लोरोकार्बन फ्रियान का दूसरा रासायनिक नाम है जो एक शीतलक गैस है। इसका विकास सर्वप्रथम 1930 में थॉमस मिडग्ले द्वारा किया गया। क्लोरोफ्लोरोकार्बन की रचना क्लोराइन, फ्लोराइन तथा कार्बन से हुई है जो एक कृत्रिम रसायन है। इसका भूमितल पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता लेकिन यह ओजोन से रासायनिक अभिक्रिया कर खतरनाक बन जाती है। इस रसायन का प्रयोग वातानुकूलक, रेफ्रिजरेटर, हेयर स्प्रे, फर्नीचर पॉलिश, अग्निशामक, भू-उपग्रह प्रक्षेपण तथा डिसपेंसर आदि में किया जाता है। इस रसायन के अलावा हैलन्स नाइट्रस ऑक्साइड तथा अन्य हैलोजनिक गैसों भी ओजोन परत के क्षरण में मुख्य भूमिका निभाती हैं। सुपरसोनिक जेट विमानों द्वारा निससृत नाइट्रस ऑक्साइड द्वारा 3 से 23 प्रतिशत तक ओजोन गैस का क्षरण होता है।

ओजोन क्षरण का वितरण:

ओजोन क्षरण के वितरण को मुख्यतया दो भागों में बांटा जा सकता है:

1. **कालिक वितरण** – सूर्य के उत्तरायण व दक्षिणायन होने से दोनों गोलार्द्धों में ग्रीष्मकाल में समयांतर होती है। दक्षिणी गोलार्द्ध में सितंबर-अक्टूबर के बीच ओजोन क्षरण की स्थिति देखी जाती है जबकि उत्तरी गोलार्द्ध में मार्च-अप्रैल में ओजोन की कमी देखी जाती है।
2. **स्थानिक वितरण** – 60°–70° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांशों के सहारे ओजोन क्षरण की स्थिति पाई जाती है। इसके अंतर्गत अर्जेंटीना, चिली, ब्राजील, उरूग्वे, ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, फ्रांस, कनाडा तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के क्षेत्र आते हैं।

ओजोन परत को सुरक्षित रखने हेतु विश्वव्यापी प्रयास हुए, जिनमें 1985 में ओजोन नष्ट करने वाले पदार्थों (ओ०डी०एस०) पर वियना समझौता और 1997 में मॉन्ट्रियल संधि पारित हुई। भारत 1992 में इस संधि में सम्मिलित हुआ। संधि प्रस्ताव के तहत ओजोन नष्ट करने वाले पदार्थों को क्रमबद्ध ढंग से समाप्त करने और ओजोन तथा ऐसे पदार्थों से संबंधित जानकारी प्रदान करने के लिए मंत्रालय द्वारा ओजोन प्रकोष्ठ की स्थापना की गई।

वायु प्रदूषण के कारण पृथ्वी से 20–25 किलोमीटर की ऊँचाई पर स्थित ओजोन परत की क्षति हो रही है। ओजोन परत को क्षीण करने वाले विभिन्न हानिकारक रसायनों की वायुमंडल में निरंतर वृद्धि हो रही है। सुपरसोनिक वायुयानों द्वारा अधिक ऊँचाई पर जो प्रदूषक पदार्थ विसर्जित होते हैं, उससे भी ओजोन परत प्रभावित होती है। वैज्ञानिकों के अनुमान अनुसार ओजोन परत की मोटाई में 2 प्रतिशत की कमी आई है, जिससे पराबैंगनी किरणों के पृथ्वी पर पहुँचने की संभावना बढ़ गई है। इसके दूरगामी परिणाम हम भुगत रहे हैं। प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में लोग त्वचा कैंसर आदि बीमारियों से पीड़ित हो रहे हैं। घातक पराबैंगनी किरणें मनुष्य में आनुवांशिक परिवर्तन लाती हैं और

रोग प्रतिरोधक क्षमता को घटाती है। परिणामस्वरूप पृथ्वी के जीव-जंतुओं की अनेक प्रतिरोधक क्षमता को घटाती है। परिणामस्वरूप पृथ्वी के जीव-जंतुओं की अनेक प्रजातियों का अस्तित्व संकट में पड़ गया है।

मॉन्ट्रियल समझौता, 1987

(Montreal Protocol, 1987)

1987 में मॉन्ट्रियल (कनाडा) में ओजोन परत की सुरक्षा हेतु एक संधि की गई जिसमें इस बात पर समझौता किया गया कि वर्ष 2000 तक सीओएफओसीओ का प्रयोग बिलकुल बन्द कर दिया जाएगा। वर्ष 2000 के पश्चात ओजोन परत की दोबारा से स्वस्थ होने की उम्मीद आने वाले 50 वर्षों में की जा रही है।

6.6.5 परमाणु दुर्घटनाएँ एवं परमाणु प्रलय

(Nuclear Accidents and Nuclear Holocaust)

परमाणु ऊर्जा का शोध एवं खोज मनुष्य द्वारा एक वैकल्पिक ऊर्जा के रूप में की गई। यह ऊर्जा स्रोत जीवाश्म ईंधन की तुलना में स्वच्छ एवं सस्ती होगी। परमाणु ऊर्जा के छोटे से इतिहास में ऐसी बड़ी दुर्घटनाएँ हुई हैं, जिन्होंने हर प्राकृतिक आपदा को पीछे छोड़ दिया।

एक अकेली परमाणु दुर्घटना से जीवन का विनाश, लम्बी अवधि की बीमारियाँ तथा बड़े स्तर पर सम्पत्ति का विनाश हो सकता है।

रेडियोधर्मिता (Radioactivity) तथा रेडियोधर्मी परिणाम (Radioactive fallout) के कारण कैंसर, अनुवांशिक विकार तथा मृत्यु दुर्घटना के कई दशकों बाद भी विद्यमान रहती है। इन परमाणु दुर्घटनाओं का असर आने वाली कई पीढ़ियों के ऊपर भी पड़ता रहता है।

केस अध्ययन

परमाणु आपदाएँ एवं रिसाव (Nuclear accidents and leakages)

चरनोबल आपदा:-

वर्ष 1986 में सोवियत संघ के चरनोबल में स्थित परमाणु ऊर्जा स्टेशन में कोई तकनीकी समस्या उत्पन्न हुई और आग लग गई तथा परमाणु रिएक्टर में अनेक धमाके हुए। इस दुर्घटना से उत्पन्न रेडियोधर्मी धूल कई कि०मी० तक फैल गई और न केवल यूरोप बल्कि उत्तरी अमेरिका तक पहुँच गई।

धमाके में तुरंत बाद तीन लोगों की मृत्यु हुई तथा 28 लोग रेडियोधर्मी विकिरण की चपेट में आने के बाद मरे। कुछ 259 बीमारों को अस्पताल में भर्ती किया गया।

आसपास के पूरे क्षेत्र को खाली कराया गया और तत्काल 1,35,000 लोगों को दूसरी जगह विस्थापित किया गया तथा बचे हुए 1,50,000 लोगों को वर्ष 1991 तक वहाँ से दूसरे स्थानों पर विस्थापित कर दिया गया।

रेडियोधर्मी पदार्थों के वातावरण में उपस्थित रहने से आस पास के और अधिक लोगों को भी वहाँ से निकलना पड़ा। लगभग 6,50,000 लोग इस दुर्घटना से गंभीर रूप से प्रभावित हुए माने जाते हैं। जिनमें से किसी को कैंसर, थाईरॉइड कैंसर, अन्धापन तथा कम प्रतिरक्षा तन्त्र में खराबी की समस्या हुई।

जब ये रेडियोधर्मिता घास के द्वारा शाकाहारी जानवरों के शरीर में पहुँची तो स्कॉटलैण्ड की भेड़ें तथा लेपलैण्ड के रेण्डियर के उपर इसका गंभीर प्रभाव पड़ा जिनका माँस खाने योग्य नहीं रहा। यूरोप में फल, सब्जियाँ तथा दूध भी प्रदूषित हो गया था।

परमाणु प्रलय (Nuclear Holocaust)

युद्ध में परमाणु ऊर्जा के उपयोग का मानव एवं पृथ्वी के ऊपर विनाशकारी प्रभाव पड़ा है। वर्ष 1945 में संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा हिरोशिमा एवं नागासाकी में द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान परमाणु बम गिराये गये जिसे मानव इतिहास की सबसे विध्वंस आपदाओं में से एक माना जाता है।

इन दो परमाणु बमों से हजारों संख्या में लोग मारे गये तथा कई हजार लोग जख्मी हुए तथा कई मील दूर तक प्रत्येक वस्तु तहस नहस हो गई। उन बमों से उत्पन्न परमाणु विकिरण का असर आज भी उन लोगों में देखा जा सकता है, जो बच गये थे और प्रभावित हुए थे।

6.7 बंजर भूमि उद्धार:

वन विनाश का सीधा परिणाम मिट्टी कटाव होता है। मिट्टी कटान का परिणाम है बंजर भूमि। बंजर भूमि देश की एक गम्भीर समस्या है। मिट्टी कटाव से कृषि योग्य भूमि का बड़े पैमाने पर ह्रास हुआ है। अगर इस समस्या कोई समाधान नहीं किया गया तो धीरे-धीरे हमारी कृषि योग्य भूमि का एक बड़ा भाग बंजर भूमि में बदल जाएगा तथा हमारे सामने खाद्यान्न, फल, सब्जी, चारा इत्यादि की गम्भीर समस्या आ सकती है। अतः मृदा संरक्षण कृषि योग्य भूमि का संरक्षण तथा पहले से हो चुकी बंजर भूमि का उद्धार भविष्य की विकासीय योजनाओं का एक मुख्य भाग है। बंजर भूमि उद्धार कार्यक्रम पहले चलाये गये हैं लेकिन वे असफल रहे हैं। क्योंकि कार्यक्रम के पश्चात कुप्रबंधन के कारण इस भूमि की उर्वरता खत्म हो चुकी है। अतः हमें आवश्यकता बंजर भूमि उद्धार के ऐसे तरीकों की जो सस्ते और टिकाऊ हों। इसके लिए प्रारम्भ में पर्यावरण एवं मानवीय पहलुओं का अध्ययन करना आवश्यक है क्योंकि ये दोनों पहलू इससे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हैं।

बंजर भूमि के प्रकार

1. आसानी से उद्धार योग्य: इसे कृषि कार्य हेतु प्रयोग किया जा सकता है।
2. कुछ कठिनाई से उद्धार योग्य: इसे कृषि उद्धान हेतु प्रयोग किया जा सकता है।
3. अत्यधिक कठिनाई से उद्धार योग्य: इसे वानिकी हेतु प्रयोग किया जा सकता है।

बंजर भूमि उद्धार के उपाय:

कृषि:— बंजर भूमि को कृषि हेतु उपयोग करने के लिए लीचिंग एवं फलशिंग द्वारा मृदा से नमक की मात्रा को कम करके किया जा सकता है। ऐसे क्षेत्रों में फसल पैदा करने के लिए जिप्सम, यूरिया, पोटाश एवं कम्पोस्ट को मृदा में मिलाना होता है।

कृषि उद्यान: इसके अन्तर्गत भूमि को अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जाता है। अर्थात् बागानी कृषि एवं पशुपालन का एकीकरण जिसके फलस्वरूप एक निश्चित क्षेत्र में जैविक उत्पादन का एकीकृत प्रणाली को विकसित किया जाता है।

वानिकी: वृक्ष जैसे *युकेलिप्टस हाईबिड*, *प्रोसोपिस सिनरेरिया* तथा *अकेशिया निलोटिका*, अत्याधिक क्षारीय मिट्टी में विकसित नहीं हो सकते। इसके लिए मूल मिट्टी के साथ जिप्सम तथा खाद को मिलाकर पौधारोपण किया जाए तो भूमि का अच्छा विकास प्राप्त किया जा सकता है। हालाँकि इसके लिए आवश्यक है कि इस वानिकी हेतु स्वदेशी प्रजातियों का उपयोग किया जाए ताकि स्वदेशी को मिलाकर एक स्थानीय पारिस्थितिक तन्त्र विकसित किया जा सके।

बंजर भूमि विकास की आवश्यकता:

1. ग्रामीण गरीबों हेतु आय का स्रोत प्रदान करता है।
2. बंजर भूमि विकास स्थानीय निवासीयों हेतु चारा, ईंधन व इमारती लकड़ी की आपूर्ति को सुनिश्चित करता है।
3. इसके द्वारा मृदा की उर्वरता बढ़ती है क्योंकि इसमें मृदा अपरदन पर नियंत्रण एवं नमी को संरक्षित किया जाता है।
4. क्षेत्र में परिस्थितिक तन्त्र में संतुलन बनाये रखने में सहायक।
5. वन क्षेत्र वृद्धि द्वारा स्थानीय जलवायु परिस्थितियों को बनाये रखने में सहायक।
6. प्राकृतिक कीट नियन्त्रक वनस्पति आवरण का पुनः स्थापन पक्षियों को आकर्षित करता है। ये पक्षी कीटों को अपना भोजन बनाते हैं।
7. पेड़ों द्वारा मिट्टी में नमी की मात्रा बनी रहती है।
8. वृक्ष पानी के तेज बहाव को कम करने में सहायक होते हैं जो मिट्टी अपरदन को रोकते हैं।

बंजर भूमि उद्धार के अवयव:

1. निचले स्तर पर समस्या की पहचान, इसके अन्तर्गत प्लॉट, गाँव एवं जिले का सर्वेक्षण किया जाता है। एक मानचित्र तैयार किया जाता है जिसमें यह बंजर भूमि की विस्तृत जानकारी एवं वितरण दिया हुआ होता है। तत्पश्चात् स्थानीय सरकारी संस्थानों (जैसे—ग्राम पंचायत, बी0डी0ओ0, राजस्व विभाग) की सहायता से समुदाय की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए एक प्लान बनाया जाता है। यह प्लान सभी हतिकारकों/ग्रामीण समुदाय के लोगों, सरकारी लोग इत्यादि का इस प्रक्रिया में होना अति आवश्यक है। पारिस्थितिकविदों, स्थानीय गैर सरकारी संगठनों तथा अधिकारीगणों का एक विशेषज्ञ समूह को इस प्रक्रिया में शामिल होना अनिवार्य होना चाहिए।
2. बंजर भूमि निर्माण के लिए उत्तरदाई कारकों की पहचान: इस आधार पर बंजर भूमि को तीन श्रेणियों में बाँटा जाता है।

(i) मामूली रूप से बर्बाद बंजर भूमि

(ii) आंशिक रूप से बर्बाद भूमि

(iii) गंभीर रूप से बर्बाद भूमि

3. अन्य कारक:

- बंजर भूमि उद्धार हेतु स्थानीय विशिष्ट रणनीति का निर्माण।
- गैर सरकारी संगठनों द्वारा किसानों को बेहतर कृषि करने के तरीकों की जानकारी देना।
- महिलाओं की भागीदारी का परिणाम अब तक बहुत अच्छा रहा है।
- विभिन्न संस्थाओं द्वारा छोटे, मध्यम तथा भूमिहीन किसानों की तथा गरीबों के लिए सस्ते लौन उपलब्ध कराना।
- ग्रामीणों, सरकारी तथा वन अधिकारियों को प्रशिक्षण।
- प्रचार अभियान।

बंजर भूमि के विभिन्न उपयोगिताओं का प्रचार। इसके अन्तर्गत मृदा विज्ञान, वन विज्ञानीयों द्वारा प्रशिक्षण प्रदान करना।

- मृदा का मृदा प्रयोगशालाओं में परीक्षण से बंजर भूमि उद्धार में तेजी से सुधार आयेगा।
- स्थानीय लोग को कृषि तथा प्रबन्धन में नवीन तकनीकी के प्रयोग हेतु प्रशिक्षण देना

केस अध्ययन (Case study)

हिमाचल प्रदेश भारत का प्रथम राज्य है जिसने प्लास्टिक के उत्पादन एवं प्रयोग को विनियमित किया। वर्तमान में उत्तराखण्ड समेत लगभग सभी राज्यों में प्लास्टिक पर रोक लगी हुई है।

केस अध्ययन

टिहरी, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड के टिहरी जनपद में एक निर्वनीकृत एवं अपरदित नागचौण्ड नामक एक ग्राम था। जब 1987 में सोबन सिंह भण्डारी सेना से सेवानिवृत्त होकर गाँव पहुँचे तो उन्हें गाँव की बदहाली को देखकर धक्का लगा। छः महीने बाद वे गाँव के प्रधान नियुक्त हुए। उन्होंने निश्चय किया कि वे ग्राम में विभिन्न विकासीय योजनाएँ चलाएंगे। जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत उन्हें समुदाय का बहुत सहयोग मिला। वर्ष 1990 में वन विभाग ने सूक्ष्म जलागम विकास प्रबन्धन हेतु समुदाय भूमि के 30 हैक्टेयर बंजर भूमि को चुना। ग्रामवासियों ने चराई पर नियन्त्रण किया और ईंधन तथा चारों के लिए वृक्षारोपण किया। भण्डारी ग्रामवासियों को चारे को दूसरे ग्रामों में बेचने में सहायता की। इससे मिलने वाले धन को उसके बाद ग्राम विकास के कार्यों हेतु उपयोग किया गया। समुदाय के इस प्रयास ने क्षेत्र के पारिस्थितिकी पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। क्षेत्र में पानी की मात्रा में वृद्धि हुई तथा गाँव के जल स्रोत पुनः भरित हो गये। इस क्षेत्र के स्थानीय लोगों के पास वो सारे संसाधन उपलब्ध हैं जिनकी उन्हें जरूरत है।

6.8 उपभोक्तावाद एवं अपशिष्ट उत्पाद:

आधुनिक समाज में वस्तुओं का अत्यधिक उपभोग एक परम्परा बन चुका है। और मुख्यतः एक बार उपयोग होने वाले उत्पादों का प्रयोग एक बड़ी समस्या है। जिसके परिणाम आज विश्व स्तर पर देखने को मिल रहे हैं। इस जीवन शैली से अनवीकृत संसाधनों की अतिदोहन हो रहा है तथा पारिस्थितिक तन्त्र का धीरे-धीरे विनाश हो रहा है। विश्व के विकसित देशों में विश्व के 20 प्रतिशत धनी लोग निवास करते हैं जो विश्व के 80 प्रतिशत प्राकृतिक संसाधनों का उपभोग करते हैं और साथ ही साथ विश्व के 80 प्रतिशत अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न करते हैं।

इस स्थिति का मुख्य कारण है उपभोक्तावाद जिसके अन्तर्गत लोगों को उनकी आवश्यकता से अधिक संसाधनों का उपभोग करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। भारत भी आर्थिक वृद्धि एवं विकास के इस असतृतीय प्रतिमानों की तरह तेजी से बढ़ रहा है। इसके परिणामस्वरूप धनी और धनी होता जाता है और निर्धन अर निर्धन। क्योंकि इस आर्थिक विकास में धनवानों का विकास निर्धनों के जीवन की कीमत पर होता है।

किसी उत्पाद का मूल्य सिर्फ पैसे से नहीं आंका जा सकता है। उसके उत्पादन में कितना कच्चा माल लगा है और उस कच्चे माल को बनने में कितनी ऊर्जा का उपयोग हुआ होगा। यह सब एक उत्पाद की कीमत तय करता है। अगर इस दृष्टि से देखें तो जिस तेजी से उत्पादन हो रहा है और जिस तीव्रता से अपशिष्ट उत्पाद उत्पन्न हो रहा है इसका हमारे पर्यावरण पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ रहा है। क्योंकि ये कच्चा माल हमें पर्यावरण के भण्डार से ही प्राप्त होता है। विकसित राष्ट्रों में प्रत्येक वर्ष दो सौ बिलियन टन से अधिक कैन, बोतल प्लास्टिक बैग, पेपर कप प्रयोग के बाद फेंक दिये जाते हैं। उत्पादों में "प्रयोग एवं फेंकों" का सिद्धान्त चल रहा है।

कुछ ऊर्जानुकूल उत्पाद जैसे कार और अन्य उत्पाद बन रहे हैं लेकिन पुराने उत्पादों को अपशिष्ट के रूप में फेंक देने से उनके उत्पादन में प्रयोग होने वाले पदार्थ एवं ऊर्जा की बर्बादी होती है। उपभोक्ता का सम्बन्ध उत्पादों के लगातार क्रय करने से है। इसमें बात का कोई उल्लेख नहीं होता कि यह उत्पाद किन कच्चे पदार्थों से बना है। कितनी ऊर्जा इसमें खर्च हुई है, उसके अपशिष्ट से पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा इत्यादि।

उपभोक्तावाद को लोगों के मस्तिष्क पर हावी करने हेतु विज्ञापनों का प्रयोग किया जाता है जिन पर अरबों रुपये प्रत्येक वर्ष खर्च किये जाते हैं। विज्ञापनों के द्वारा लोगों को लुभाया जाता है, उनमें नई आवश्यकताओं को उत्पन्न किया जाता है। और यह अनुभूमि पैदा की जाती है कि इस उत्पाद को लेकर ही लोगों को परम सुख का अनुभव होगा। यह भौतिकवाद को जन्म देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो भौतिकवाद उपभोक्तावाद का अंतिम उत्पाद होता है।

विश्व में उपभोक्ता उन्मुख समाज द्वारा उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थ की भारी मात्रा आज विश्व की एक गंभीर समस्या बन चुकी है। अपशिष्ट प्रबंधन की समस्या नगरों में तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भिन्न है। ग्रामीण समुदाय छोटा होता है और कम अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न करता है। पहले इस अपशिष्ट पदार्थ को पुनः चक्रित किया जाता था लेकिन जब से औद्योगिक सभ्यता का प्रारम्भ हुआ है तब से वर्तमान तकनीकी प्रक्रियाओं द्वारा अत्यधिक मात्रा में अपशिष्ट पदार्थ उत्पन्न हो रहा है। जिसका पुर्नचक्रण अत्यधिक महंगा होने के कारण असम्भव है।

जनसंख्या वृद्धि के साथ बढ़ते अपशिष्ट पदार्थ के प्रबंधन को भी आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। अगर इसी गति से अपशिष्ट पदार्थ में वृद्धि होती गई तो मानव जाति कूड़े के ढेर में दब जायेगी। मानव जाति बीमारियों से ग्रस्त हो जाएगी तथा फैक्ट्रियों के धुएँ तथा अवस्थ गैसों से मानव सभ्यता घुटकर मर जायेगी। मानव सभ्यता से संसाधनों का विनाश हो जायेगा। और बढ़ता विकास एकदम से रुक जायेगा।

तीन 'R' का सिद्धान्त

(Principle of 3 Rs)

Reduce:- उपभोग को घटना सबसे अच्छा विकल्प है। उपभोग कम होगा तो अपशिष्ट भी कम होगा।

Reuse:- उत्पाद को बिना अतिरिक्त ऊर्जा खर्च किये पुनः प्रयोग करना दूसरा सबसे अच्छा विकल्प है।

Recycle:- इसमें एक अपशिष्ट को संसाधन के रूप में बदल दिया जाता है इस प्रक्रिया में ऊर्जा खर्च होती है।

यह सिद्धान्त व्यक्तिगत तथा औद्योगिक दोनों स्तर पर प्रयोग किया जा सकता है।

उपाय:

- उत्पादों के अंधाधुंध उपभोग को रोकना होगा।
- उपलब्ध संसाधनों को विवेकपूर्ण ढंग से उपभोग करना होगा।
- अपशिष्ट पदार्थों के पुनः चक्रण करके पुनः उपयोग करना तथा उपयोग करना ताकि वस्तु का पुनः उपयोग उत्पादन-उपभोग चक्र का एक अभिन्न अंग बने।
- अपशिष्ट पदार्थों का भूमि में दबाने तथा बहते जल में बहने से उत्पन्न पर्यावरणीय क्षति को ध्यान में रखकर वस्तुओं का उपयोग करना।
- उपभोक्तावाद को मायाजाल से अपने आप को बचाना होगा।
- सिर्फ वे ही उत्पाद खरीदें जाएं जिनकी वास्तव में दैनिक जीवन शैली में आवश्यकता है।
- पर्यावरण जागरूकता सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है जिसको सदैव ध्यान में रखने की आवश्यकता है।
- अपशिष्ट पदार्थों के प्रबन्धन में एक नयी संकल्पना का प्रयोग हो रहा है। जिसे "तीन आर. के नाम से जाना जाता है।
- जो पदार्थ पुनः चक्रित हो सकते हैं उन्हें वापस फैक्ट्री में भेज देना चाहिए।
- जैविक एवं अजैविक अपशिष्ट पदार्थों को अलग-अलग एकत्रित करके उसे पुनः चक्रण हेतु भेजना
- उन अपशिष्ट पदार्थों जिनका न तो पुनः उपयोग हो सकता है और न ही पुनः चक्रण, उनको इस प्रकार स निपटान किया जाए ताकि वो पर्यावरण को कम से कम नुकसान पहुँचा सकें। जैसे-विषैले तथा गैर विषैले अपशिष्ट पदार्थों को अलग करके विषैले अपशिष्ट को अलग दबा देना चाहिए तथा गैर विषैलों को गड्ढों के भराव में दबा देना चाहिए ताकि उनकी रिसाव पर्यावरण में न हो।
- सीवर तथा औद्योगिक अपशिष्ट जल को नदी नालों में छोड़ने से पहले उपचार किया जाए ताकि वो जल को प्रदूषित न करे।

अपशिष्ट पदार्थों के बेहतर प्रबंधन हेतु बेहतर सुझाव:

1. सभी देशों को विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों तथा उनके स्रोत को जानने हेतु एक सर्वेक्षण करना चाहिए।
2. अपशिष्ट को उनके स्रोत पर ही नियंत्रित किया जाना चाहिए जिसके अन्तर्गत सूखे एवं गीले अपशिष्ट पदार्थों को अलग-अलग किया जाना चाहिए।
3. अपशिष्ट पदार्थ के पुनः चक्रण हेतु बेहतर तरीकों के लिए विकासीय कार्य चलाये जाने चाहिए। पुनः चक्रण पर्यावरण संरक्षण एवं सुरक्षा कार्यक्रमों का एक भाग माना जाता चाहिए।
4. कचरा निपटारण के बेहतर उपाय खोजे जाने चाहिए।
5. प्रत्येक समुदाय को साफ सफाई एवं कचरा निस्तारण के उपायो हेतु प्रशिक्षण कार्य चलाये जाने चाहिए ताकि लोग जागरूक बनें।
6. प्रत्येक समाज को ऐसी जीवन शैली बनाने हेतु प्रयास करने चाहिए जिसमें कम से कम कचरा निर्मित हो।
7. प्रत्येक समाज का लक्ष्य कम से कम कचरा या शून्य कचरा वाला बेहतर समाज होना चाहिए।

6.9 पर्यावरण सुरक्षा अधिनियम, 1986:

वर्ष 1972 के जून माह में स्वीडन की राजधानी स्टॉकहॉम में मानव पर्यावरण के ऊपर हुई संयुक्त राष्ट्र की सभा में जो पर्यावरण को लेकर जो उद्घोषणा की गई, उस उद्घोषणा को भारत सरकार द्वारा एक अधिनियम के तहत भारत में 1986 में लागू किया गया जिसे "पर्यावरण (सुरक्षा) अधिनियम, 1986" के नाम से जाना जाता है।

यद्यपि इस समय कई विद्यमान अधिनियम थे जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से पर्यावरणीय मुद्दों को देखते थे लेकिन ये अधिनियम किन्हीं विशिष्ट प्रकार के प्रदूषणों या विशिष्ट प्रकार के खतरनाक विषैले पदार्थों पर केन्द्रित थे। अतः एक सामान्य विधान की आवश्यकता थी जो अधिनियम के द्वारा भू उपयोग पर नियंत्रण कर सके, हमारे राष्ट्रीय पार्को एवं अभ्यारणों को संरक्षित करे तथा वन्य जीवन की रक्षा हो सके।

पर्यावरण पर प्रभाव बढ़ने के साथ ही 1970 के दशक तक आते आते पर्यावरण संरक्षण राष्ट्रीय वरियता की श्रेणी में आ गया। इसी समय पर्यावरणीय गुणवत्ता में भारी गिरावट आई जिसका कारण था-प्रदूषण, वन विनाश तथा जैवविविधता के लिए बढ़ता खतरा।

पर्यावरण एवं जलीय परिस्थितिक तन्त्र में हानिकारक रसायन के अति संकेन्द्रण से खाद्य-श्रृंखला में बाधा तथा प्रजातियों का विनाश शुरू हुआ। स्टॉकहॉम सम्मेलन में जो निर्णय लिए गये उनमें पर्यावरण की बढ़ती समस्याओं को जोर देकर कहा गया और पर्यावरण संरक्षण के लिए अनेक उपाय भी सुझाए गये।

एक गम्भीर समस्या ये है कि पर्यावरण हेतु अधिनियम बनने के बाद भी हमारा पर्यावरण दिन प्रतिदिन खराब हालत में होता जा रहा है। इसके लिए हमें इस अधिनियम की उग्रता के साथ लागू करने के आवश्यकता है अगर हमें अपने पर्यावरण की रक्षा करनी है तो इसके लागू होने के लिए आम लोगों के समर्थन की भरपूर आवश्यकता है। आज पर्यावरण को आवश्यकता है सभी मीडिया कर्मियों, अधिकारियों, योजना बनाने वाले, सक्रिय न्यायपालिका तथा तकनीकी विशेषज्ञों की ताकि पर्यावरण को बर्बाद होने से बचाया जा सके।

6.10 वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981

यह अधिनियम भारत सरकार द्वारा 1981 में पारित किया गया। वायु प्रदूषण के स्रोत जैसे- उद्योग, परिवहन के साधन, ऊर्जा प्लांट इत्यादि को कोई अधिकार नहीं है कि वे वायु में हानिकारक गैसों- सल्फर डाइऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड, सीसा कणिका तत्व तथा अन्य विषैले पदार्थों को निर्धारित स्तर से अधिक छोड़कर वायुमण्डल को प्रदूषित करें। इसको सुनिश्चित करने हेतु भारत सरकार ने प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड का गठन किया है जो लगातार वायु की जाँच करता है और प्रदूषण स्तर को नियंत्रित करने की हर संभव कोशिश करता है।

अधिनियम के मुख्य उद्देश्य:

- (क) वायु प्रदूषण को रोकथाम, नियंत्रण एवं कम करना।
- (ख) इस अधिनियम को लागू करने हेतु राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्रदूषण नियंत्रण मंडल की स्थापना करना।
- (ग) इन गठित मंडलों को अधिनियम के प्रावधानों को लागू करने की शक्ति प्रदान करके प्रदूषण नियन्त्रण सम्बन्धित कार्यों की जिम्मेदारी प्रदान करना।

मंडलों की शक्तियाँ एवं कार्य:

राष्ट्रीय मंडल:

- अधिनियम को संपूर्ण देश में लागू करके वायु की गुणवत्ता में सुधार करना तथा वायु प्रदूषण को रोकना तथा नियंत्रित करना।
- वायु प्रदूषण एवं वायु गुणवत्ता से सम्बन्धित मुद्दों पर केन्द्र सरकार को सुझाव देना तथा क्रिया में भागीदारी करना तथा तकनीकी सहायता उपलब्धता कराना।
- राज्य स्तरीय मंडलों को सहयोग एवं दिशा निर्देश उपलब्ध कराना।
- वायु गुणवत्ता एवं प्रदूषण के सम्बन्धित सूचनाओं को एकत्रित करना तथा प्रकाशित करना।

राज्य प्रदूषण नियन्त्रण मंडल:

- वायु प्रदूषण से सम्बन्धित प्रत्येक मुद्दे पर राज्य सरकार की सलाह उपलब्ध कराना।
- इनके पास किसी औद्योगिकी इकाई, परिवहन के साधन तथा ऐसी किसी भी इकाई की जाँच करने की शक्ति है जो वायुमण्डल को प्रदूषित करने का कार्य कर रहे है।
- ये उत्सर्जन के मानक तय कर सकते है।
- समय-समय पर प्रदूषण की जाँच कर सकते है जब ये चाहें।
- राज्य सरकार राज्य प्रदूषण नियन्त्रण मंडल की सिफारिशों के आधार पर किसी भी क्षेत्र को वायु प्रदूषण नियंत्रण क्षेत्र घोषित कर सकती है।

दण्ड:

जो व्यक्ति अधिनियम के प्रावधानों के विरुद्ध जाएगा उस पर दण्ड का प्रावधान है। इसके अन्तर्गत तीन माह का कारावास या ₹ 10,000 रु या दोनों के दण्ड का प्रावधान है। अगर वह व्यक्ति फिर भी वह कार्य निरन्तर करता है तो उसे ₹ 5000 प्रतिदिन का दण्ड लगेगा।

व्यक्तिगत स्तर पर वायु प्रदूषण नियन्त्रण करने वाले कार्य:

हम व्यक्तिगत स्तर पर वायु प्रदूषण पर नियन्त्रण कर सकते है:

- 1) जब कोई प्रदूषण वाहन देखें तो तुरन्त सड़क परिवहन दफ्तर या प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड के ऑफिस को उसका नंबर उपलब्ध करायें।
- 2) प्रदूषण करने वाली किसी भी औद्योगिक इकाई के बारे में मंडल को सूचित करें तथा यह सुनिश्चित करें कि संघ में मंडल द्वारा कोई कदम उठाया गया है या नहीं।
- 3) कार को तभी प्रयोग करें जब अत्यधिक आवश्यकता हो।
- 4) सरकारी कर्मचारियों को चाहिए कि वे सप्ताह में दो बार साइकिल या रिक्शा का प्रयोग करें या पैदल चलें या सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग करें।
- 5) वायु सुगंध फैलाने पर नियन्त्रण करें।
- 6) सार्वजनिक एवं खुले स्थानों पर धूम्रपान न करें।
- 7) जब खॉसी आये तो रूमाल को मुँह पर रखें।
- 8) परिवह के साधन को साझा करके प्रयोग करें।

6.11 जल (प्रदूषण निवारण एवं नियन्त्रण) अधिनियम, 1974:

यह अधिनियम 1974 में उद्योगों, कृषि तथा घरेलू कार्यों के कारण होने वाले जल प्रदूषण को नियन्त्रित करने हेतु अस्तित्व में आया। अपशिष्ट जल, जिसमें हानिकारक जीवाणु उपस्थित होते हैं, जब नदियों, तालाबों तथा झीलों, आर्द्र क्षेत्रों तथा समुद्रों में मिलता है तो गम्भीर स्वास्थ्य के खतरों का कारण बनता है। अतः इस जल प्रदूषण को नियन्त्रित करके समाप्त का करना सरकार तथा देश के आम नागरिकों की साझा जिम्मेदारी है ताकि हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक प्रदूषण मुक्त जल उपलब्ध करा सकें।

वर्तमान समय में उद्योगों से निकलने वाले पार्टिकुलेट तत्वों का जल में मिलना तथा कृषि कार्यों में उपयुक्त होने वाले रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों के कारण सतही एवं भूमिगत जल दोनों प्रदूषित हो रहे हैं। आम नागरिक का कर्तव्य है कि वे जल प्रदूषण की किसी में होने वाली समस्या के बारे में प्रदूषण मंडलों को अवगत करायें ताकि सही कदम उठाया जा सके।

जल अधिनियम के उद्देश्य:

- जल प्रदूषण की रोकथाम, नियंत्रण एवं कम करना
- जल प्रदूषण के स्तर को परखना तथा प्रदूषण को दण्ड देना।
- जल के प्रदूषण को कम करके स्तर सुधारना तथा उसे बनाये रखना।
- जल प्रदूषण नियन्त्रण हेतु राज्य एवं केन्द्रीय नियन्त्रण मंडलों का गठन करना।

प्रदूषण नियन्त्रण मंडलों के कार्य:

राज्य एवं केन्द्रीय प्रदूषण मंडलों को कुछ विशिष्ट शक्तियाँ दी गई हैं जो निम्न हैं।

केन्द्रीय जल प्रदूषण मंडल:

- जल प्रदूषण से सम्बन्धित मुद्दों पर केन्द्र सरकार को सलाह देना।
- राज्य स्तर के मंडलों को सहायता उपलब्ध कराना को तथा झगड़ों का निपटारा करना।
- राज्य मंडलों को जाँच करने में दिशा निर्देश तथा तकनीकी सहायता उपलब्ध कराना।
- यह मंडल सार्वजनिक स्तर पर जागरूकता कार्यक्रम चलाते हैं ताकि लोग जल प्रदूषण के खतरों से सावधान हो जाएं एवं सरकार के साथ कार्य में सहयोग दें।
- जल प्रदूषण से सम्बन्धित आँकड़ों को एकत्रित करना एवं प्रकाशित करना भी इन मंडलों का कार्य है।
- केन्द्र बोर्ड राज्य बोर्ड के साथ परामर्श करके कचरे के निपटान के मानकों से सम्बन्धित पुराने दिशा निर्देशों में संशोधन तथा अन्य नये दिशा निर्देश भी बना सकते हैं।
- केन्द्रीय जल प्रदूषण मंडल का मुख्य उद्देश्य नदियों धाराओं, तालाबों एवं झीलों तथा देश में स्वच्छता को बढ़ावा देना है।

राज्य जल प्रदूषण मंडल:

- इन मंडलों के पास राज्य सरकार को जल प्रदूषण से सम्बन्धित सुझाव देने की शक्ति है।
- ये जल प्रदूषण को रोकने हेतु विस्तृत कार्यक्रम बनाते हैं।
- सम्बन्धित राज्य में जलप्रदूषण से सम्बन्धित आँकड़ों एवं जानकारी को एकत्रित करना तथा प्रकाशित करना इनका कार्य है।
- राज्य के लोगो को जल प्रदूषण से सम्बन्धित कार्यशालाओं में प्रशिक्षण राज्य प्रदूषण मंडल, केन्द्रीय मंडल के सहयोग से कराता है।
- सीवेज के जल को कृषि कार्यों में प्रयोग करने की योजना राज्य मण्डल बनाता है।
- यह मंडल राज्य सरकार यह परामर्श देता है कि किस स्थान पर औद्योगिक इकाई स्थापित होगी और किस स्थान पर नहीं होगी।
- प्रदूषित जल के नमूनों की जाँच हेतु प्रयोगशालाओं की स्थापना की गई है ताकि प्रदूषण बोर्ड अच्छे से अपना कार्य करे।
- राज्य बोर्ड उन अफसरों से आँकड़े एवं जानकारी लेने की शक्ति रखते हैं जो सर्वेक्षण एवं जल के नमूनों की जाँच के बाद उनके आँकड़े रखते हैं, नदियों के बहाव के आँकड़े रखते हैं, इत्यादि।
- राज्य बोर्ड को किसी भी प्लाट के रिकॉर्ड, रजिस्टर तथा किसी भी दस्तावेज के निरीक्षण की शक्ति प्रदान की गई है।

दण्ड का प्रावधान:

कोई भी व्यक्ति या संख्या जो जल (प्रदूषण) अधिनियम के निर्देशों के विरुद्ध कोई कार्य करता है या इन निर्देशों की अनदेखी करता है, उसको दण्ड का प्रावधान है— यह दण्ड है—तीन माह का कारावास या 10,000 रु जुर्माना या दोनों अगर इसके बाद भी वह व्यक्ति या संस्था लगातार नियमों का उल्लंघन करती है तो प्रतिदिन 5000 का दण्ड देय होगा।

यदि कोई व्यक्ति जो पहले से जल प्रदूषण से सम्बन्धित किसी गतिविधि में अपराधी ठहराया गया है और दूसरी बार उसी अपराध में दोषी पाया जाता है तो दूसरे एवं तत्पश्चात प्रत्येक दोष सिद्ध के लिए दो वर्ष से अधिक के कारागार के लिए दण्डनीय होगा। यह अवधि दो साल से सात साल तक, जुर्माने सहित, बढ़ सकती है।

व्यक्तिगत स्तर पर जल प्रदूषण नियन्त्रण:

- 1) जल को प्रदूषित करने वाले व्यक्ति या संस्था या इकाई को जानकारी तुरंग प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को देना प्रत्येक व्यक्ति का निजी कर्त्तव्य होना चाहिए।
- 2) कोई भी अपशिष्ट पदार्थ ऐसी नाली में न डाले जो किसी झील, नदी या तालाब में गिरती है।
- 3) कृषि एवं बागानों या बगीचों में रसायनिक खाद के स्थान पर कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें।
- 4) शौचालयों में कोई भी ऐसा पदार्थ फलश न करे जो दूसरी बार सतह पर आकर जल प्रदूषण का कारण बने।
- 5) घरों में कीटनाशकों का प्रयोग न करें जैसे—DDT, मिलेथियन, एड्रिन। इनके स्थान पर कॉकरोच तथा अन्य कीटों को भगाने के लिए चने के आटे, के साथ बोरिक एसिड का लेप बनाकर रखे। कीटों का दूर रखने के लिए नीम की पत्तियों का प्रयोग किया जा सकता है।

6.12 वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972:

वन्य जीव संरक्षण अधिनियम, वर्ष 1972 में पारित जीवन अभ्यारण तथा इनके क्षेत्रों के घोषित करने से सम्बन्धित मामलो को देखता है।

कार्य:

- यह राज्य वन्य जीवन प्रबन्धन की संरचना को स्थापित करता है।
- यह वन्य जीवन प्रबन्धन हेतु पदों को नामित करता है।

- यह वन्य जीवन सलाहकार बोर्ड की स्थापना करता है।
- यह अधिनियम, अनुच्छेद I से लेकर IV तक में निर्दिष्ट जानवरों के शिकार को प्रतिबन्धित करता है।
- अनुच्छेद VI में निर्दिष्ट पौधों को काटने पर भी इस अधिनियम द्वारा प्रतिबन्ध लगाया गया है।

अधिनियम में संशोधन वर्ष 2002 में इस अधिनियम में संशोधन किया गया। इस संशोधन के पश्चात् यह अधिनियम और अधिक कड़ा हो गया तथा इसके द्वारा क्षेत्र के स्थानीय निवासियों पर वन्य जीवन के वाणिज्यिक उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

इस संशोधन के अन्तर्गत सामुदायिक आरक्षित वनों की संकल्पना का उदय हुआ। जानवर व मछलियों को शामिल किया गया। वन उत्पाद को पारिस्थितिक तन्त्र की संरक्षण हेतु पुनः परिभाषित किया गया।

विभिन्न बदलावों के बाद भी इस अधिनियम को लागू करने की समस्या है शिकार की समस्या, टिंबर के गैरकानूनी ढंग से सप्लाई की समस्या इसके लागू होने से जुड़ी है। स्टाफ की कमी भी एक बड़ा मुद्दा है। क्योंकि बिना संसाधनों के किसी भी अधिनियम के लागू करने की समस्या तो आयेगी।

दंड:

अगर कोई व्यक्ति इस अधिनियम के किसी भी नियम के विरुद्ध जाता है तो उसे अपराधी माना जाएगा इस अपराध में तीन वर्ष तक का कारागार या रु 25000 का जुर्माना या दोनों का प्रावधान है।

अधिनियम की अनुसूची-I या अनुसूची-II के भाग-II में निर्दिष्ट जानवरों के शिकार, उनके मांस, हड्डी, खाल से सम्बन्धित मामलों में अपराधी को एक साल से अधिक छः वर्ष तक का कारावास तथा 25000 रु का जुर्माना देने का प्रावधान है।

दूसरी बार या लगातार वह अपराध करने की स्थिति में कारावास छः वर्ष तक और बढ़ सकती है तथा दो वर्ष एवं 10000 का जुर्माना।

व्यक्तिगत स्तर पर वन्यजीवन संरक्षण के लिए सुझाव:-

1. जब कोई जंगली जानवर के अवैध शिकार की सूचना मिले तो तत्काल स्थानीय वन विभाग को सूचित किया जाए।
2. वन जीवों से उत्पादित उत्पादों का बहिष्कार करें।
3. जहाँ तक हो सके लकड़ी तथा लकड़ी उत्पादों का कम से कम प्रयोग करें।
4. कागज का विवेकपूर्वक उपयोग करें क्योंकि इसके अनेकों वृक्षों को काटा जाता है।
5. सरकार के ऊपर जैवविविधता के संरक्षण हेतु एक दबाव समूह बनाया जाए।
6. जानवरों को नुकासान न पहुँचाए।
7. चिड़ियों के घाँसलों को न तोड़ें।
8. जब भी चिड़ियाघर जाएँ तो जानवरों को बिलकुल नहीं चिढ़ाएँ। अगर कोई कंकर मारता है तो उसे विनम्रता से रोके।
9. अगर आपको कोई घायल जानवर दिखें तो जो आपसे हो सके उसके इलाज हेतु करें।
10. अगर किसी जानवर को चिकित्सा देखभाल की आवश्यकता है तो समुदायिक स्तर पर प्रयास करें।
11. जैवविविधता संरक्षण के प्रति जागरूक हों और जागरूकता फैलाएँ।
12. जैवविविधता के संरक्षण से सम्बन्धित संगठनों से जुड़ें या कोई स्थानीय संरक्षण गैर सरकारी संस्था इत्यादि।

6.13 वन (संरक्षण) अधिनियम, 1980

1980 के वन संरक्षण अधिनियम (जो 1988 में संशोधित हुआ था) की महत्ता जानने के लिए, यह आवश्यक है कि हम इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझें। भारतीय वन अधिनियम, 1927 में वनों से सम्बन्धित पिछले उन सभी कानूनों एवं नियमों को समाहित किया गया था जो 1920 के दशक से पहले पारित हुए थे। इस अधिनियम ने सरकार एवं वन विभाग को आरक्षित वन का निर्माण भी किया गया जिसके अन्तर्गत स्थानीय समुदायों के संरक्षित क्षेत्रों के प्रयोग को नियंत्रित कर दिया गया। कुछ वन ग्रामीण समुदाय द्वारा नियन्त्रित किये जाने लगे जिन्हें ग्राम वन कहा गया। यह अधिनियम 1980 के दशक तक लागू रहा क्योंकि उस समय यह महसूस किया जाने लगा कि वनों को सिर्फ टिम्बर उत्पादन हेतु संरक्षित नहीं किया जाना चाहिए। इस समय वन सेवाओं को अधिक महत्ता दी जाने लगी।

उसके लिए एक नवीन अधिनियम की आवश्यकता पड़ी। तत्पश्चात “वन संरक्षण अधिनियम, 1980” अस्तित्व में आया और 1988 में संशोधित किया गया।

भारत की प्रथम वन नीति, 1952

भारत की प्रथम वन नीति 1952 में स्थापित की गई। वर्ष 1952 एवं 1988 के मध्य वनीकरण का बहुत अधिक विस्तार हुआ।

मुख्य बिन्दु:

- नवीन वन नीति में वन संरक्षण को एक प्राकृतिक विरासत के रूप में स्थान दिया गया जिसके अर्न्तगत वनों की जैविक विविधता एवं अनुवांशिक संसाधनों के संरक्षण की शामिल किया गया।
- इस नीति में स्थानीय लोग की आवश्यकताओं को भी महत्व दिया गया। जैसे—खाद, ईंधन लकड़ी, चारा तथा गैर वन उत्पाद इत्यादि से सम्बन्धित आवश्यकताएँ।
- इसमें परिस्थितिक संकुलन एवं पर्यावरणीय स्थिरता को बनाए रखने को प्राथमिकता दी गई।
- इसमें संरक्षित क्षेत्रों को मजबूत बनाने एवं विस्तारित करने पर जोर दिया गया।

73 वाँ एवं 73 वाँ सविधान संशोधन, 1992:—

इस संशोधन द्वारा वनों की शासित करने का कार्य पंचायतों को सौंपने का प्रावधान किया गया। इसके द्वारा राज्य सरकारों को यह शक्ति दी गई कि वे स्थानीय पंचायतों को स्थानीय वन संसाधनों के प्रबन्धन हेतु शक्ति प्रदान करें। यह अधिनियम निर्वनीकरण को नियंत्रित करने हेतु बनाया गया था। इस अधिनियम के अर्न्तगत यह सुनिश्चित किया गया कि बिना केन्द्र सरकार के अनुमोदन के किसी भी वन भूमि को अनारक्षित नहीं किया जाएगा। यह अधिनियम इसलिए बनाया गया था क्योंकि इस समय राज्यों में आरक्षित वनों को गैर वन उपयोग हेतु अनारक्षित करना प्रारम्भ कर दिया था। राज्यों ने अतिक्रमण को नियमित कर दिया था तथा विकास परियोजनाओं के कारक प्रभावित लोगों को पुर्नवास कर शुरू कर दिया था। फलस्वरूप एक नवीन अधिनियम की तत्काल आवश्यकता पड़ी।

इस अधिनियम के बनने के बाद निर्वनीकरण पर नियंत्रण किया गया तथा दण्ड के प्रावधान को उल्लेखित किया गया।

आरक्षित वनों में अपराध हेतु दण्ड:

पेड़ों को काटना, आग लगाना, चराई करना, पेड़ों की छाल एवं टहनीयों उतारना, उत्खनन, वन उत्पाद को संग्रहित करना इत्यादि अपराधों के लिए 6 महीने तक का कारावास या रु 500 तक का जुर्माना या दोनों का प्रावधान है।

संरक्षित वनों में अपराध के लिए दण्ड:

उपरोक्त सभी अपराधों के लिए संरक्षित क्षेत्रों में 6 महीने तक का कारावास अथवा रु 500 का जुर्माना अथवा दोनों का प्रावधान है। कोई भी वन अधिकारी बिना मजिस्ट्रेट की आज्ञा के किसी संदिग्ध व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता है।

व्यक्तिगत स्तर पर अधिनियम को कैसे समर्थन दे?

1. जब कोई पेड़ काटे या किसी भी प्रकार से आपके चारों ओर के हरित आवरण को नुकसान पहुँचाता दिखें तो तुरन्त उसकी सूचना निकट के वन विभाग तथा प्रेस को दें।
2. वन संरक्षण अधिनियम को अच्छे से जानें। सरकारी नियम कानूनों को समझें।
3. स्थानीय सक्रिय गैर सरकारी संगठनों के साथ संपर्क बनाये रखें।
4. राष्ट्रीय उद्योगों एवं अभ्यारण्यों के महत्व को लोगों की समझायें तथा इसके प्रति उन्हें जगायें तथा किसी भी गैर कानूनी क्रियाओं के विरुद्ध जनता की राय स्थापित करें।
5. अधिकारियों के ऊपर वन्य जीवन एवं संरक्षण के विधानों को लागू करने का दबाव बनाएं।
6. अगर संभव हो सके तो गैर कानूनी कार्यों के विरुद्ध Public Interest Litigation दाखिल करें। गैर सरकारी संगठनों तथा इस कार्य हेतु सहायता प्राप्त करें।
7. जब भी आवश्यकता हो तो नियमों एवं कानून में बदलाव करने हेतु जनता का दबाव सरकार पर बनाएं।
8. वन क्षेत्रों में कूड़ा न फैलाएं।
9. पारिस्थिति दृष्टि से सवेदनशील सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग वन क्षेत्रों में करें तथा साइकिल ट्रेक बनाएं।

10. वनीकरण को बढ़ाये तथा उसे बनाए रखने में अपना योगदान दें। पेंड लगाएँ उनकी देखभाल करें।
11. आप सीधे पुलिए में F.I.R. भी कर सकते हैं।

6.14 पर्यावरण सम्बन्धी कानून लागू करने में आने वाली समस्याएँ:

पर्यावरण सम्बन्धी कानून या पर्यावरण कानून को हमारे सम्पूर्ण पर्यावरण, हमारे स्वास्थ्य तथा पृथ्वी के संसाधनों की रक्षा हेतु विकसित किया गया है। विश्व स्तर या राष्ट्रीय या प्रदेश स्तर पर मात्र कानून बना देने से पर्यावरण संरक्षण का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता है इसके लिए आवश्यक है कि इन कानूनों का सफलतापूर्वक क्रियान्वयन होना। इन कानूनों के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन हेतु आवश्यक है इन कानूनों की सम्पूर्ण जानकारी तथा लोगों की पर्यावरण के प्रति जागरूकता। आज अनेकों गैर-सरकारी संगठन पर्यावरण के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। जैसे-WWF-I, BEAG तथा BHNS। ये वो गैर सरकारी संगठन हैं जो पर्यावरण के मुद्दों को कोर्ट तक लेकर गये हैं। लेकिन फिर भी पर्यावरण कानून को लागू करना एक बड़ी चुनौती है। आम लोगों का कार्य गलत पर्यावरण क्रियाओं के बारे में न केवल अधिकारियों को सूचित करना है अपितु उन सूचनाओं पर कोई कार्यवाही की जा रही है या नहीं इसको भी देखते रहना है।

पर्यावरण प्रभाव आंकलन:

वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के निर्देशानुसार प्रत्येक विकास योजना, चाहे सरकारी हो या गैर-सरकारी, के क्रियान्वयन हेतु उसका पर्यावरण प्रभाव आंकलन जरूरी है। इस पर्यावरण प्रभाव आंकलन में योजना से उत्पन्न उसके भौतिक, जैविक तथा सामाजिक मापदण्डों का ब्यौरा होना आवश्यक है।

पर्यावरण प्रभाव आंकलन का उद्देश्य यह देखना है कि किसी विकास योजना के क्या-क्या सम्भावित प्रभाव पड़ सकते हैं। पर्यावरण प्रभाव आंकलन में जल, मिट्टी और वायु पर योजना का प्रभाव देखा जाता है।

क्षेत्र के सभी पेड़ पौधों एवं जीव जन्तुओं की सूची तैयार की जाती है और यह देखा जाता है कि कहीं ऐसा कोई पौधा या प्राणी तो नहीं है जिसका अस्तित्व इस योजना के क्रियान्वयन से खतरों में आ जाए।

प्रत्येक विकास परियोजना (बाँध, सड़क, रेलवे, उद्योग) स्थानीय लोगों को प्रभावित करते हैं। यह भी EIA में उल्लेखित होना आवश्यक है। वन एवं पर्यावरण मंत्रालय ने 30 विभिन्न उद्योगों को सूचिबद्ध किया है जिसके स्थापना से पहले पर्यावरणीय मंजूरी नितांत आवश्यक है। नई परियोजनाओं को "ग्रीन फील्ड प्रोजेक्ट" कहा जाता है जहाँ कोई अभी तक कोई विकास नहीं हुआ होता है। ऐसी परियोजनाएँ जो पहले से स्थापित हुई होती हैं और उनका मात्र विस्तार होना होता है। "बाऊन फील्ड परियोजनाएँ" कहलाती हैं।

वर्ष 1986 के पर्यावरण संरक्षण अधिनियम के बाद से किसी परियोजना के लिए पर्यावरण मंजूरी को पाने के लिए पर्यावरण प्रभाव आंकलन अनिवार्य बन गया।

पर्यावरण प्रभाव आंकलन की प्रक्रिया:

परियोजना के समर्थकों को सर्वप्रथम एक सक्षम एजेन्सी को चुनकर यह कार्य सौंपना होता है। परियोजनाओं को तीन प्रकारों में बाँटा लिया जाता है।

- 1.) हल्के प्रभाव वाली परियोजनाएँ: निर्माणाधीन अवस्था में प्रभाव पड़ता है तथा बाद में कम हो जाता है।
- 2) मध्यम प्रभाव वाली परियोजनाएँ: इनका प्रभाव लगातार हो सकता है या बढ़ भी सकता है उदाहरणार्थ जहाँ विपैले पदार्थ बनते रहते हैं
- 3) गम्भीर प्रभाव वाली परियोजनाएँ: इनके प्रभाव से कभी-कभी अस्थायी प्रतिवृत्ति क्षति होती है और कुछ मामलों में यह क्षति या प्रभाव स्थाई रूप से होता रहता है।

प्रथम चरण- पर्यावरण मंजूरी हेतु प्रस्ताव देने वालों को प्रदेश पर्यावरण नियन्त्रण बोर्ड में आवेदन करना होगा।

द्वितीय चरण- पर्यावरण नियन्त्रण बोर्ड निरीक्षण करके इस बात की पुष्टि करेगा की इस परियोजना हेतु पर्यावरण प्रभाव आंकलन की प्रक्रिया प्रारम्भ की जा सकती है।

तृतीय चरण- पर्यावरण नियन्त्रण बोर्ड यचिकाकर्त्ता की रिपोर्ट भेजती है (इस कार्य में कई महीने का समय लग जाता है।)

चतुर्थ चरण— पर्यावरण विवरण की रिपोर्ट वन एवं पर्यावरण मंत्रालय को भेज दी जाती है। वर्ष 1997 के पश्चात वन एवं पर्यावरण मंत्रालय में यह निर्धारित किया कि स्थानीय लोगों की बातें भी पर्यावरण प्रभाव आंकलन की रिपोर्ट बनाने के समय सुनी जाएगी। क्योंकि परियोजना का प्रत्यक्ष प्रभाव उन्हीं लोगों के जीवन पर पड़ता है।

- प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड स्थानीय भाषा के स्थानीय अखबार में जनता की सुनवाई हेतु विज्ञापन देती है।
- पर्यावरण प्रभाव विवरण के जनता के सामने पढ़ने हेतु रखा जाता है।
- सुनवाई का दिन व समय निश्चित किया जाता है।
- जब सुनवाई पूरी हो जाती है और परियोजना के पक्ष एवं विपक्ष दोनों में सबके विचार व्यक्त किये जाते हैं तो बैठक का विवरण बनाकर वन एवं पर्यावरण मंत्रालय को भेज दिया जाता है।

इस कार्य को कभी-कभी कोई गैर सरकारी संगठन के द्वारा भी किया जाता है। इस प्रकार से यह मान लिया जाता है कि परियोजना से प्रभावित स्थानीय लोगों के विचारों को भली भाँती सूना गया है।

समस्याएँ:

- जब तक लोग शिक्षित नहीं होते तब तक ऐसी सुनवाईयों का कोई औचित्य नहीं है। अनुभव ये बताते हैं कि इन पर्यावरण प्रभाव आंकलन में से बड़ी संख्या में अपर्याप्त शोध के आधार पर बने हैं और आवेदक द्वारा पैसा देकर पास हो जाते हैं।
- क्षेत्र के जीव जन्तुओं की गिनती नहीं होती है जिसका क्षेत्र को पारिस्थितिक तन्त्र पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
- क्षेत्र के भूमि उपयोग को भी ध्यान में नहीं रखा जाता है। संसाधनों के बराबर बँटवारे की भी अनदेखी की जाती है। लोगों को पर्यावरण प्रभाव आंकलन में हुई कमियों के कारण अपना घर बार तक छोड़ना पड़ता है।
- यह कहना प्रयाप्त नहीं है कि पर्यावरण प्रभाव आंकलन द्वारा हो गया है बल्कि यह पूरी ईमानदारी और सत्यता से हो यह नितांत आवश्यक है।
- पर्यावरण प्रभाव आंकलन का उद्देश्य किसी भी प्रकार के विकास के विरुद्ध खड़ा होना नहीं है। लेकिन किसी भी विकासीय परियोजना के स्थापित करने हेतु ऐसे क्षेत्र का चयन किया जाए जहाँ से पर्यावरण पर (पेड़ पौधों) विपरीत प्रभाव न पड़े।

उपाय:

- रिपोर्ट ईमानदारी से बने/अच्छे से शोध होना चाहिए।
- लोगों का जागरूक एवं सक्रिय होना परम आवश्यक है।
- अगर योजना का प्रभाव पड़ रहा है और इसके प्रभाव को कम किया जा सकता है तो आवश्यक कदम उठाकर प्रभाव को कम किया जाए। जैसे— वनीकरण करके, कुछ क्षेत्र को संरक्षित करके इत्यादि।
- अगर योजना का प्रभाव विपरीत पड़ रहा है और उसे कम करने का भी कोई उपाय न हो तो ऐसी सूरत में इस इकाई या परियोजना की वहाँ स्थापित न किया जाए।
- प्रभावित लोगों के स्थानांतरण एवं पुर्नवासन पूरी तरह से हो।
- अगर किसी क्षेत्र की वनस्पति नष्ट हो रही है तो परियोजना में उतनी ही मूल्य की वनीकरण क्षेत्र में किया जाए ताकि हरित आवरण बना रहे।

नागरिक कार्यवाही एवं कार्यवाही समूह:

देश के नागरिकों को एक प्रहरी की भूमिका निभानी चाहिए तभी पर्यावरण में कोई सुधार की आशा की जा सकती है। जागरूकता एवं अच्छी जानकारी नागरिक न सिर्फ अपने अधिकार के लिए रखता है बल्कि राष्ट्र की प्रति उत्तरदायी बनता है। कुछ भी गलत होने पर कोई भी व्यक्ति सरकारी कार्यालयों में सूचना दे सकता है। कोर्ट में जनहित याचिका दायर कर सकता है। नागरिक समूह वैकल्पिक तरीकों का भी सहारा ले सकते हैं जैसे चिपको आन्दोलन में।

केस अध्ययन	केस अध्ययन
नर्मदा मुद्दा	शान्त घाटी
<p>नर्मदा नदी एवं उसकी सहायक नदियों पर बनने वाले अनेकों छोटे बड़े बाँधों के कारण लाखों लोग बेघर हुए। इसी के विरोध जन समूहों एवं विभिन्न उत्साही लोगों, संगठनों ने नर्मदा बचाओ आन्दोलन प्रारम्भ किया। यह लोगों का सबसे गतिशील आन्दोलन है जिसके द्वारा प्रभावित लोगों के लिए संसाधनों पर बराबर हक की बात रखी गई है। लोग अपने हक के लिए लड़ रहे हैं।</p> <p>जब बाँध बनकर तैयार होगा तो 37000 हेक्टेयर उर्वर भूमि डूब जाएगी और 200000 आदिवासी का विस्थापित हो जाएंगे और पारिस्थितिक तन्त्र का बहुत बड़े स्तर पर नुकसान होगा।</p>	<p>दक्षिण भारत में शान्त घाटी उष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र में एक अनुठा जैव विविधता का क्षेत्र है जहाँ पर एक बिजली उत्पादन परियोजना स्थापित होनी थी। लेकिन 1970 के दशक में इसे बन्द कर दिया गया और 1984 में इसे राष्ट्रीय उद्यान घोषित किया गया।</p> <p>यह कार्य तभी सम्भव हो सका जब अनेक उत्साही लोगों ने समूहों में और संगठनों ने इस क्षेत्र को पानी में डूबने से बचा लिया तथा यहाँ की जैव विविधता को नष्ट होने से बचा लिया।</p>

6.15 जन जागरूकता:

भारत में पर्यावरण संवेदशीलता उत्पन्न करने हेतु बड़े स्तर पर जन जागरूकता कार्यक्रम चलाने की आवश्यकता है। इसके लिए अनेक माध्यमों की सहायता ली जा सकती है जैसे— इलेक्ट्रॉनिका मीडिया, स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय, शिक्षा, प्रेस तथा व्यस्क शिक्षा। इसको अनेक प्रकार से किया जा सकता है।

6.15.1 पर्यावरणीय क्रिया के कैलेंडर का उपयोग करके:

पूरे वर्ष में अनेक ऐसे दिवस हैं जो पर्यावरणीय मुद्दों से जुड़े हैं। हमें इन्हें जनजागरूकता हेतु प्रयोग करने की लिए मनाना चाहिए।

- 2 फरवरी— विश्व आर्द्र भूमि दिवस 2 फरवरी 1971 को इरान के रामसर में "अन्तर्राष्ट्रीय आर्द्र भूमि पर रामसर सम्मेलन" पर हस्ताक्षर किये गये। विश्व की अर्द्र भूमियों के संरक्षण के लिए अभियान चलाया गया।
- 21 मार्च— विश्व वन दिवस, इसे वनों एवं उनके महत्व के बारे में लोगों को जागरूक करने हेतु प्रयोग किया जा सकता है।
- 7 अप्रैल— विश्व स्वास्थ्य दिवस, विश्व स्वास्थ्य संगठन वर्ष 1948 में इसी दिन अस्तित्व में आया।
- 18 अप्रैल— विश्व विरासत दिवस, पर्यावरण में सांस्कृतिक धरोहरों को भी सम्मिलित किया जाता है लोगो को इसके बारे में जागरूकता फैलाई जा सकती है।
- 22 अप्रैल— पृथ्वी दिवस, सर्वप्रथम 1970 में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोगों के एक समूह द्वारा मनाया गया। ताकि लोगों द्वारा पृथ्वी पर कितना प्रभाव डाला गया है।
- 5 जून— विश्व पर्यावरण दिवस, वर्ष 1972 में इसी दिन स्वीडन के स्टॉक होम में मानव पर्यावरण के ऊपर स्टॉकहोम सम्मेलन हुआ था इसी की यादगार में प्रत्येक वर्ष यह दिवस मनाया जाता है।
- 11 जून— विश्व जनसंख्या दिवस, इस दिन कॉलेज एवं विश्वविद्यालय स्तर पर जनसंख्या एवं पर्यावरण के सम्बन्धों पर चर्चा की जा सकती है।
- 6 अगस्त— हिरोशिमा दिवस, इस दिवस पर भोपाल गैस त्रासदी एवं चर्नोबल आपदा पर चर्चा की जाती है।
- 16 सितम्बर— विश्व ओजोन दिवस, संयुक्त राष्ट्र द्वारा ओजोन संरक्षण हेतु इस दिवस को घोषित किया गया। इस दिवस को 1987 में हस्ताक्षरित मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल की याद में मनाया जाता है जिसमें ओजोन की हानि पहुँचाने वाले पदार्थों के उत्पादन एवं उपभोग पर नियन्त्रण करने की बात कही गई थी।
- 28 सितम्बर— हरित उपभोगता दिवस, उपभोक्ताओं में उत्पादों के प्रति जागरूकता लाने हेतु इस दिवस का प्रयोग किया जाता है।
- 1 से 7 अक्टूबर— वन्य जीवन सप्ताह, राज्य वन विभाग इस दिवस पर अनेकों कार्यक्रमों का आयोजन करता है जैसे— पोस्टर प्रदर्शनी, गालियों में कार्यक्रम इत्यादि। वन्य जीवन में पशु पक्षियों के अतिरिक्त पेड़-पौधों एवं अन्य सभी प्रकार की वनस्पतियों को भी शामिल किया जाता है।

6.15.2 व्यक्तिगत स्तर पर किये जाने वाले कार्य:

हमें वर्तमान समय में अधिकारियों एवं सरकार को दोष देने के स्थान पर व्यक्तिगत स्तर पर पर्यावरण की परिस्थितियों को सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

6.15.3 जैवविविधता संरक्षण:

क्या करें।

1. और अधिक पेड़ पौधों के अपने आस पास लगाये और अपने दोस्तों को भी इस कार्य हेतु प्रोत्साहित करें।
2. अगर नगरीय होने के कारण स्थान छोटा है तो फूलों के पौधे एवं बेलों को अपने छोटे गार्डन में लगाए।
3. अगर आप किसी अपार्टमेंट में रहते हैं तो अपनी बाल्कनी को छोटे-छोटे पौधों के गमलों से हरा भरा बनाए रखें।
4. जब हो सके जहाँ तक हो सके, पेड़ों को काटने से रोके। अगर आप कुछ नहीं कर सकते हैं तो अधिकारियों को इसकी सूचना दें।
5. पहाड़ियों पर बेतरतीब बस्तियाँ न बसाएँ।
6. खरीदारी करते समय सीमित पैकिंग वाले उत्पाद ही खरीदें।
7. जहाँ तक हो सके कागज का कम से कम प्रयोग करें।
8. अपने घर के लिए पुनः चक्रित कागज से बने उत्पाद की खरीदारी करें।
9. गिफ्ट पैपर एवं कॉर्टन को पुनः प्रयोग किया जाए।
10. प्रयोग हुई किताबों को दूसरों को देना चाहिए ताकि और अधिक उत्पादन न हो जिससे कागज हेतु अधिक पेड़ों को ना काटा जाये।
11. पर्यावरण को बचाने के प्रत्येक कार्यक्रम में हमें हिस्सा लेना चाहिए।
12. प्रोटेक्ट टाइगर, प्रोटेक्ट हाथी, आदि की सपोर्ट करना तथा NGOs के साथ मिलकर कार्य करना।

क्या न करें।

1. किसी को फूलों का गुलदस्ता न दें बल्कि फूलों का गमला उपहार के रूप में दें।
2. अनावश्यक विज्ञापन में प्रयुक्त कागज एकत्रित न करें।
3. पार्टी में कागज से बने गिलास एवं प्लेट प्रयोग न करें।

6.15.4 निवास संरक्षण:

कुछ विकासीय योजनाओं से व अर्थिक क्रियाओं से जंगल खत्म हो रहें हैं तथा जीव जन्तुओं एवं पेड़-पौधों की निवास स्थान समाप्ति की ओर है। नीचे दिये गये कुछ उपाय हैं जिनसे खतरे में आये हुए पारिस्थितिक तन्त्रों को संरक्षित किया सकता है।

क्या करें:

1. वनों में जाए। उसको गन्दा न करें और जहाँ कचरा हो उसे साफ करें।
2. लोगों को वनों को साफ रखने हेतु उत्साहित करें।
3. जानवरों को फालतू में परेशान न करें और ओरो को भी रोके।
4. चिड़िया को जाने और उनके खाद्य आवश्यकता को समझे और अपनी छतों पर पानी व दानों की उनके खाने हेतु हमेशा रखें।
5. वन्य जीवन को आकर्षित करें जैसे – गिलहरी को पानी देना, इत्यादि।
6. वन्य जीवन की सुरक्षा करें।
7. पालतू जानवरों को अच्छा रहना खाना अपलब्ध कराये।
8. चिड़ियाघरों में जानवरों को तंग न करें।

क्या न करें:

1. पक्षियों के प्राकृतिक निवास क्षेत्र को परेशान न करें।
2. जानवरों की खाल, हड्डी व चर्बी से बनी उत्पादों को न खरीदें।
3. तितलियों को न पकड़े और न मारें। कीट पंतर्गों, मधुमक्खियों, चींटियों तथा बिटिल्स न मारें क्योंकि ये सभी परागकणों को फैलाने वाले होते हैं।
4. छोटे जानवरों को न मारे क्योंकि ये जानवर प्राकृतिक कीटनाशक होते हैं।

5. जगली जानवरों एवं पौधों को पालतू न बनाएँ।
6. हाथी दाँत से बनी उत्पाद न खरीदे।

6.15.5 मृदा संरक्षण:

मृदा जब बेकार हो जाती है तो हमे हर प्रकार से प्रभावित करती है। मृदा अपरदन एवं अनुर्वरकता से गम्भीर पर्यावरणीय समस्याएँ उत्पन्न होती है। इसके संरक्षण हेतु नीचे दिये गये उपायों के किया जा सकता है।

क्या करें:

1. सूखी घास या पुराल से अपने गार्डन की मिट्टी को ढक कर रखे ताकि उसका अपरदन न हो और उसकी नमी बनी रहें।
2. खेत के मेड़ों पर पेड लगाये जो अपरदन संरक्षण में सहायक सिद्ध होंगे।
3. अगर आपके कॉलेज में खाली जगह हो तो उसे छायादार वृक्ष लगाकर कवर करें ताकि मिट्टी कटाव न हो।
4. मिट्टी में रासायनिक खादों की जगह जैविक खाद का उपयोग करें।
5. अपने खेतों व बागीचों में फसल चक्र का सिद्धान्त अपनाएँ ताकि मिट्टी की उर्वरता बनी रहे।
6. जैविक खाद हेतु अपने कॉलेज या विश्वविद्यालय में खाद हेतु गढ़दे खोदे ताकि उपयोग होकर कूड़ा बने पदार्थों से खाद बनाया जा सकें।
7. जैविक रूप से उत्पादिक शाक सब्जियों को खरीदे ताकि रासायनिक पदार्थ आपके शरीर में न जाए।
8. पर्यावरणीय अभियानों का हिस्सा बनें।

क्या न करें:

1. अपने आंगन में घास को भूमि से साफ न करें बल्कि उसे काट छोटकर छोटा कर दे। यह कटी हुई घास को जैविक गड़दों में डाल दे जो कम्पोस्ट खाद बन जाएंगे।
2. अपने बागीचों में रासायनिक कीट नाशकों का प्रयोग न करें।

6.15.6 जल संरक्षण:

भारत में वर्षा अच्छी मात्रा में होती है लेकिन फिर भी यहाँ पानी की समस्या है। यह एक महत्वपूर्ण पर्यावरणीय समस्या है। जल को संरक्षित करके इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है इसके लिए निम्नलिखित उपाय बताएँ गये हैं—

क्या करें:

1. प्रतिदिन प्रयोग किये जान वाले जल की मात्रा को कम करना होगा।
2. धुलाई में प्रयुक्त जल को घरेलू पौधों को सींचने हेतु प्रयोग करना तथा जिस जल से सब्जी धुलती है उसे अपने बागीचों के पौधों में पुनः उपयोग करना।
3. हमेशा प्रातः काल के समय पेड पौधों में पानी डाले क्योंकि इस समय वाष्पीकरण बहुत कम होता है
4. बर्तन को धोने से पहले भिगाँकर रखना चाहिए ताकि पानी की बचत हो सके।
5. गुसलखानों एवं शौचालयों में पानी की टपकन या पानी के रिसाव (यदि हो रहा हो) को रोके।
6. पेड़ों को पानी देते समय इतनी जल्दी पानी दें जितनी जल्दी वो पौधा पानी को सोख ले।
7. कृषि में टपकन सिंचाई का उपयोग करें।
8. जितनी प्यास हो उतना ही जल गिलास में डालें।
9. घरों की छतों पर वर्षा जल का सग्रह करके इसे भूमि पर बने साफ सुथरे गड़दों में सग्रहित कर ले।
10. नालियों में गदां पानी न छोड़े। उसे पुनः उपयोग करें।
11. फिनाइल, हानिकारक डिर्टेजेंट, शैम्पू तथा रासायनिक कीट नाशकों का प्रयोग न करें।
12. गणेश चतुर्थी पर प्लास्टर ऑफ पेरिस की बनी मूर्ति को जल में न बहायें बल्कि घर पर रखें और दूसरों को उपहार में दे।
13. जल को बिना आवश्यकता के बेकार में न बहाएं।

क्या न करें:

1. अपनी पानी की टंकी को पूरा न खोलकर हल्का खोलें।
2. फव्वारों के स्थान पर बाल्टी को प्रयोग नहाने हेतु करें।
3. गार्डन में पेड़ पौधों को जब आवश्यकता हो तब जल उपलब्ध कराये।
4. जल स्त्रोंतों को कूड़ा करकट फैला कर गंदा न करें।
5. व्यर्थ सामान को शौचालय में ना डालें।

6.15.7 ऊर्जा संरक्षण:

कोयला, पेट्रोलियम तथा तेल खनिज संसाधन हैं तथा ऊर्जा के अनव्यकरणीय साधन हैं वर्तमान समय के आंकड़ों के अनुसार पृथ्वी पर 15 से 35 साल तक का पेट्रोलियम भण्डार है। अतः हमें अपनी आवश्यकताओं हेतु इसका विवेकपूर्ण ढंग से उपयोग करना होगा तथा वैकल्पिक ऊर्जा के स्त्रोंतों को खोजकर उन्हें ऊर्जा के रूप में प्रयोग करना होगा। यहाँ कुछ उपाय दिये गये हैं कि क्या करें और क्या न करें, ताकि ऊर्जा का संरक्षण किया जा सके।

क्या करें:

1. जब आवश्यकता न हो तो पंखा, फ्रिज, ए0सी0, टी0वी0 को बन्द कर दे।
2. कम वोल्टेज लाइट प्रयोग करें।
3. द्यूब लाइट एवं ऊर्जा बचान वाले बल्ब का प्रयोग करें।
4. वैकल्पिक ऊर्जा जैसे सौर ऊर्जा का प्रयोग करें।
5. बिजली का कम प्रयोग करें।
6. गर्मियों में सुबह सवेरे ही पर्दे, दरवाजे बन्द कर दें ताकि घर को ठंडा रखा जा सके।
7. खाना बनाने से पहले सभी पदार्थ तैयार रखें।
8. स्टोव को प्रयोग के बाद तुरन्त बन्द कर दें।
9. बर्तनों को खाना बनाते समय पास में रखें।
10. खाना बनाने में प्रेशर कुकर का प्रयोग करें।
11. ऐसे बर्तन प्रयोग करें जिनका मुँह छोटा हो।
12. जब खाना लगभग पक जाए तो गैस बन्द कर दें।
13. चावल, दाल इत्यादि को पकाने से पहले पानी में भिगोकर रख दें।
14. पूरा परिवार साथ में खाना खाए ताकि बार-बार खाना गरम करने में लगने वाली अतिरिक्त ऊर्जा को बचाया जा सके।
15. घरों की दीवारों एवं छतों को हल्के रंग से रंगे ताकि कम लाइट का ज्यादा प्रतिबिम्ब पड़े।
16. अपनी मेज को खिडकी के पास रखे ताकि दिन में प्राकृतिक प्रकाश से काम चल जाए।
17. साइकिल खरीदें। हो सके तो सप्ताह में तीन दिन साइकिल से काम पर जाएं।
18. सार्वजनिक परिवहन का प्रयोग करने की कोशिश करें।
19. पैदल चलें।
20. अपने वाहन की समय पर सर्विस कराएं।

क्या न करें:

1. घर से बाहर सजावटी रोशनी का प्रयोग न करें।
2. गर्मियों में पानी गर्म करने हेतु गीजन का प्रयोग न करें बल्कि सौर प्रकाश में पानी को गर्म करें।
3. घर में या बाहर हेलोजन बल्ब का प्रयोग न करें इससे बहुत अधिक बिजली खर्च होती है।
4. गर्म खानों को फ्रिज में न रखें।

इकाई – 7

मानव जनसंख्या और पर्यावरण

- 7.1** : जनसंख्या वृद्धि, विभिन्न राष्ट्रों में अंतर
- 7.2** : जनसंख्या विस्फोट-परिवार कल्याण कार्यक्रम
- 7.3** : पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य
- 7.4** : मानवाधिकार
- 7.5** : मूल्य शिक्षा
- 7.6** : एचआईवी/एड्स
- 7.7** : महिला एवं बाल कल्याण
- 7.8** : पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका
- 7.9** : केस अध्ययन

मानव पर्यावरण का एक सर्वाधिक सक्रिय घटक है। मानव एवं पर्यावरण के सम्बन्ध निरन्तर परिवर्तनशील रहे हैं। आदिम मानव पूर्णतः प्राकृति पर निर्भर था। जैसे-जैसे विकास होता गया एवं मानव जनसंख्या वृद्धि होती गयी, वह अपनी क्षमता व आवश्यकता के अनुरूप प्राकृतिक पर्यावरण में लगातार परिवर्तन करता रहा। प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण व अवैज्ञानिक तकनीकी से किये गये दोहन के परिणाम स्वरूप आधुनिक मानव के समक्ष अनेक पर्यावरणीय समस्याएँ खड़ी हो गयीं। जनसंख्या वृद्धि का पर्यावरण परिवर्तन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।

7.1 जनसंख्या वृद्धि, विभिन्न राष्ट्रों में अंतर

मानव का इतिहास लगभग 3 मिलियन वर्ष पुराना है। हमारे पूर्वज सर्वप्रथम शिकार तथा संग्रहण का कार्य करते थे और उनकी जनसंख्या लगभग 10 मिलियन से कम थी। कृषि का विकास होने पर भोजन की समस्या का अंत हो गया और अधिक जनसंख्या का गुजर बसर होने लगा। पाषाण युग में जनसंख्या लगभग स्थायी थी। पर्यावरणीय दशाएँ सम थी और मानव निर्मित साधनों का प्रयोग न के बराबर था। सूखे और महामारी के कारण मृत्यु दर अधिक थी। 14वीं सदी में फैला प्लेग यूरोप और एशिया में लगभग 50 प्रतिशत लोगों की मृत्यु का कारण बना था।

प्रायः ऐतिहासिक काल की जनसंख्या के संबंध में प्रमाणिक साक्ष्य उपलब्ध नहीं हैं, लेकिन डूरंड, 1973 के अनुमान में 8000 ई0 पूर्व में विश्व की जनसंख्या 5 मिलियन थी। उस समय मानव 30-40 व्यक्ति के झुंड में आखेट व एकत्रीकरण करके अपना जीवनयापन करते थे तथा लगभग चार व्यक्ति प्रति 100 किलोमीटर से भी कम घनत्व था। आखेटक मानव एशिया तथा अफ्रीका से अन्य महाद्वीपों में भी स्थानांतरित हुए।

विश्व जनसंख्या वृद्धि दर 1650-2000

वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	वृद्धि दर (प्रतिशत)
1650	54.3	—
1700	620.3	0.4
1750	79.1	0.5
1800	97.8	0.5
1850	162.2	0.5

1900	165.0	0.8
1950	251.5	1.8
2000	613.0	2.22

विद्वानों के अनुसार 1650 ई0 में विश्व की जनसंख्या 54.5 करोड़ अनुमानित की गई तथा 200 वर्ष के पश्चात् सन् 1850 में जनसंख्या तीन गुनी होकर 162.5 करोड़ हो गई। सारणी से स्पष्ट है कि 1850 ई0 के बाद मात्र 100 वर्ष में ही विश्व की जनसंख्या पुनः डेढ़ गुनी हो गई। इस प्रकार सन् 1950 में 251.5 मिलियन हो गई। इसके पश्चात् विश्व जनसंख्या वृद्धि दर में अधिक वृद्धि हुई तथा 1975 ई0 में वृद्धि दर 2.45 प्रतिशत वार्षिक तक पहुंच गई। परिवार नियोजन व अन्य कारकों से जनसंख्या वृद्धि दर में गिरावट आई तथा 2000 में वृद्धि दर 2.22 प्रतिशत वार्षिक आंकी गई। सन् 2050 में विश्व की जनसंख्या 932.2 करोड़ से भी अधिक होने की संभावना है।

विश्व जनसंख्या वृद्धि की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं—

1. सन् 1650–1750 ई0 तक जनसंख्या वृद्धि सामान्य रही। मात्र एशिया व यूरोप में ही अधिक वृद्धि हुई।
2. सन् 1750–1850 ई0 के मध्य सभी महाद्वीपों में जनसंख्या वृद्धि हुई लेकिन एशिया, यूरोप व उत्तरी अमेरिका में वृद्धि दर सर्वाधिक रही।
3. 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में वृद्धि दर एशिया व उत्तरी अमेरिका में अधिक रही, लेकिन 1975–2000 के मध्य पिछले 25 वर्षों में विश्व जनसंख्या वृद्धि दर में कमी आई है।
4. विगत 50 वर्षों में अफ्रीका में 3.6 गुना, एशिया में जनसंख्या लगभग 2.60 गुना, उत्तरी अमेरिका में 1.8 गुना, जबकि यूरोप में केवल 1.3 गुना जनसंख्या वृद्धि हुई।

जनसंख्या वृद्धि को प्रभावित करने वाले कारक

जनसंख्या वृद्धि को निम्न कारक प्रभावित करते हैं—

- धर्म
- लिंग भेद
- आर्थिक स्थिति
- परिवार की सीमा
- प्रवास (Emigration)
- राष्ट्रीय नीति (Govt. Policies)
- सामाजिक रीति-रिवाज
- प्रजनन (Fertility) शक्ति में सुधार
- मृत्यु दर (Mortality rate) में कमी

जनसंख्या का वितरण

विश्व की वर्तमान जनसंख्या 6056.7 मिलियन (2000) है। यह विश्व के 13.6 करोड़ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर निवास करती है। लेकिन इसका वितरण सभी क्षेत्रों में समान नहीं है। कुछ क्षेत्रों में तो जनसंख्या घनत्व 2000 मनुष्य प्रति वर्ग किलोमीटर है जो कुछ ऐसे भी भाग हैं जहाँ जनसंख्या निवास ही नहीं करती है। एंटार्कटिका महाद्वीप में जिसका क्षेत्रफल लगभग 13.5 लाख वर्ग किलोमीटर है, स्थायी जनसंख्या निवास करती है। पृथ्वी के स्थल भाग का 2/3 भाग प्रायः निर्जन है, जबकि इसके 10 प्रतिशत स्थल भाग पर विश्व की 75 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। इस प्रकार जनसंख्या का वितरण असमान है, जिसका प्रमुख कारण भौगोलिक पर्यावरण में विषमता का होना है। विश्व के कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है और कुछ क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि अत्यंत ही धीमी है। जनसंख्या वितरण प्रमुख उत्तरदायी कारकों में धरातल की बनावट, विकास का स्तर, संसाधनों की उपलब्धता आदि कई कारक जनसंख्या बसाव को प्रभावित करते हैं।

18 वीं सदी के प्रारम्भ में औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हुई। इसके कारण मनुष्य के रहन-सहन में सुधार हुआ और अनेक क्षेत्रों में सूखे और महामारी की घटनाएँ कम होने से मनुष्यों की जनसंख्या में वृद्धि होने लगी। लोगों ने स्थायी निवास बना लिए जिनमें सफाई, भोजन एवं दवाईयों की सुविधा उपलब्ध थी।

सन् 1750 में विश्व की जनसंख्या 760 मिलियन थी तथा सन् 1800 में बढ़कर 1 बिलियन और सन् 1975–1987 के बीच इसमें एक बिलियन और जुड़ गए। 20वीं सदी के प्रारम्भ में विश्व की जनसंख्या 1.6 बिलियन थी, जो सदी के अंत तक 6.1 बिलियन पहुंच गई थी। बढ़ती हुई जनसंख्या का प्राकृतिक संसाधनों पर गहरा असर पड़ता है। संसाधनों के इस ह्रास से समृद्ध समाज अधिक जिम्मेदार है, जिनकी प्रति व्यक्ति ऊर्जा और संसाधनों की खपत निर्धन लोगों से बहुत अधिक है।

विश्वव्यापी जनसंख्या में वृद्धि

पूरे विश्व में जन्म और मृत्यु की दरें घट रही हैं किन्तु जनसंख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। विभिन्न चिकित्सा सुविधाएँ, अधिक रोग प्रतिरोधक टीकों का व्यापक प्रसार, स्वच्छता में सुधार होने से जन्म दर की तुलना में मृत्यु दर कम हुई है, जिससे दुनिया की जनसंख्या में वृद्धि हुई है। 1963 और 2005 के बीच लगभग मूल जनसंख्या 3.2 बिलियन से 6.5 बिलियन हो गई है।

पिछले 200 वर्षों में हुई विस्फोटक वृद्धि का प्रभाव मुख्यतः पर्यावरण तथा संसाधनों पर पड़ा। हमारे प्राकृतिक दृश्यों में तेजी से परिवर्तन आया है। संसाधनों पर बढ़ते दबाव ने प्रकृति पर भी दबाव डाला है। विश्व का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि विभिन्न देशों की सरकारें तथा लोग जनसंख्या को सीमित रखने, प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा करने, गरीबी दूर करने, और अधिक अपशिष्ट उत्पन्न करने वाली आदतों को सुधारने में किस प्रकार के प्रयास रखते हैं।

7.1.1 विभिन्न राष्ट्रों में जनसंख्या सम्बन्धित जानकारी

हमारा देश इस समय कई समस्याओं से जूझ रहा है। अगर विचार किया जाये तो जनसंख्या वृद्धि इन सभी समस्याओं का मूल कारण है। बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अराजकता, आतंकवाद, निरक्षरता, आदि सामाजिक समस्याएँ जनसंख्या कम होने पर स्वयं ही खत्म हो जाएगी।

भारत की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने के कारण आज हमारा देश एक अरब के आकड़े को पार कर गया है। भारत जनसंख्या के आधार पर चीन के बाद दूसरे स्थान पर है, अगर जनसंख्या वृद्धि की दर यही रही तो सन् 2050 में हमारी जनसंख्या 1 अरब 63 करोड़ होगी और भारत अधिकतम जनसंख्या वाला देश होगा।

जनसंख्या वृद्धि के कारण भूमि क्षेत्र, जल, संसाधन, खनिज, तेल आदि का बहुत शोषण हुआ है। औद्योगिक और तकनीकी विकास से जीवन का स्तर तो ऊंचा उठा है, परन्तु पर्यावरण में जहरीले व घातक प्रदूषक भी बढ़े हैं जो कि मानव के अस्तित्व के लिये खतरे की घंटी हैं। हमें जनसंख्या वृद्धि को रोकने के लिए विश्वव्यापी जनन नियंत्रण को अपनाना होगा व तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर अन्य संसाधनों को खोजना पड़ेगा।

जनसंख्या वृद्धि को जानने के लिए महत्वपूर्ण तथ्य, कुल जनन क्षमता, विस्थापन स्तर, शिशु मृत्यु दर तथा आयु संरचना हैं:-

1. कुल जनन क्षमता

जीवन काल में पैदा होने वाले शिशुओं की औसत संख्या कुल जनन क्षमता कहलाती है। किसी भी राष्ट्र की जनसंख्या वृद्धि दर की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कारक है। 1950 में कुल जनन क्षमता 6.1 थी। आज के समय में विकसित राष्ट्रों की क्षमता 1.9 तथा विकासशील राष्ट्रों की जनन क्षमता 4.7 है। लोक जागृति और सरकार की नीतियों के फलस्वरूप कुल जनन क्षमता कम हुई है।

2. विस्थापन स्तर

जनसंख्या में बदलाव की दृष्टि से विस्थापन स्तर का महत्वपूर्ण स्थान है। यदि दो अभिभावक जिनके दो बच्चे हैं, सामान्यतः बच्चों द्वारा विस्थापित कर दिये जाते हैं। विकासशील देशों में जीवन काल कम है। तथा शिशु मृत्यु दर अधिक है। वहाँ का विस्थापन स्तर 2.7 है, जबकि विकसित देशों में यह स्तर 2.1 है।

3. शिशु मृत्यु दर

भविष्य की जनसंख्या निर्धारित करने के लिये शिशु मृत्यु दर का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रतिवर्ष जन्म लेने वाले, शिशुओं में से उन शिशुओं की संख्या है जिनकी मृत्यु हो गई है। विकसित तथा विकासशील देशों के शिशु मृत्यु दर में काफी अंतर है। आज के समय में आधुनिक चिकित्सा सुविधाओं और उचित पोषण की जानकारी के कारण शिशु मृत्यु दर में काफी कमी आयी है।

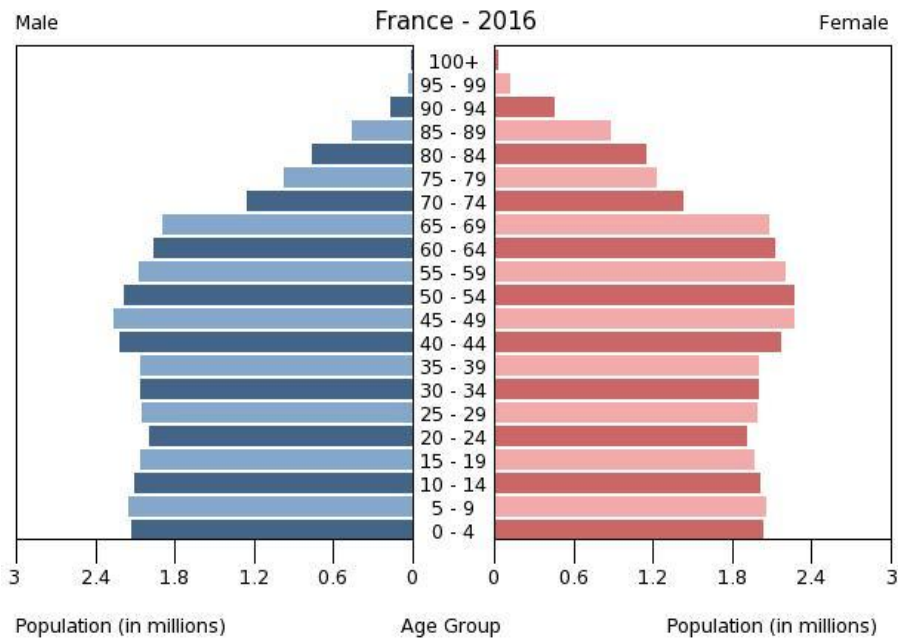
4. आयु संरचना

पिरामिडों के द्वारा विभिन्न देशों की आयु संरचना को दर्शाया जाता है। विभिन्न आयु वर्ग को निम्न प्रकार से दर्शाया जाता है।

1. किशोरावस्था (0–14 वर्ष)
 2. युवावस्था (15–44 वर्ष)
 3. वृद्धावस्था (45 वर्ष से अधिक)
- ये पिरामिड तीन प्रकार के होते हैं।

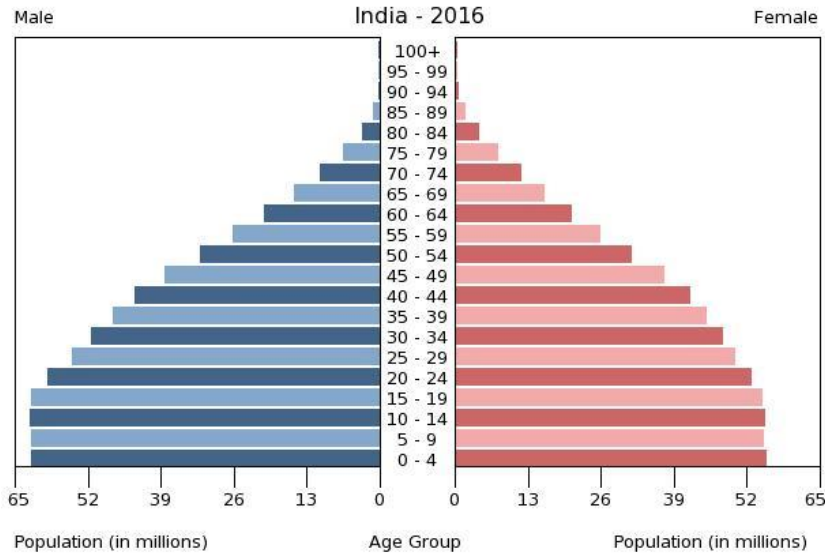
1. घंटीनुमा:

ऐसी स्थिति में 0– 35 वर्ष के आयु वालों की जनसंख्या लगभग समान है जिससे अगले 10 वर्षों में प्रजनन करने वाले वर्ग की जनसंख्या कम होगी। जनसंख्या स्थायित्व इस पिरामिड का अंग होता है। विकसित राष्ट्र जैसे अमेरिका, कनाडा, फ्रांस आदि इसके उदाहरण हैं।



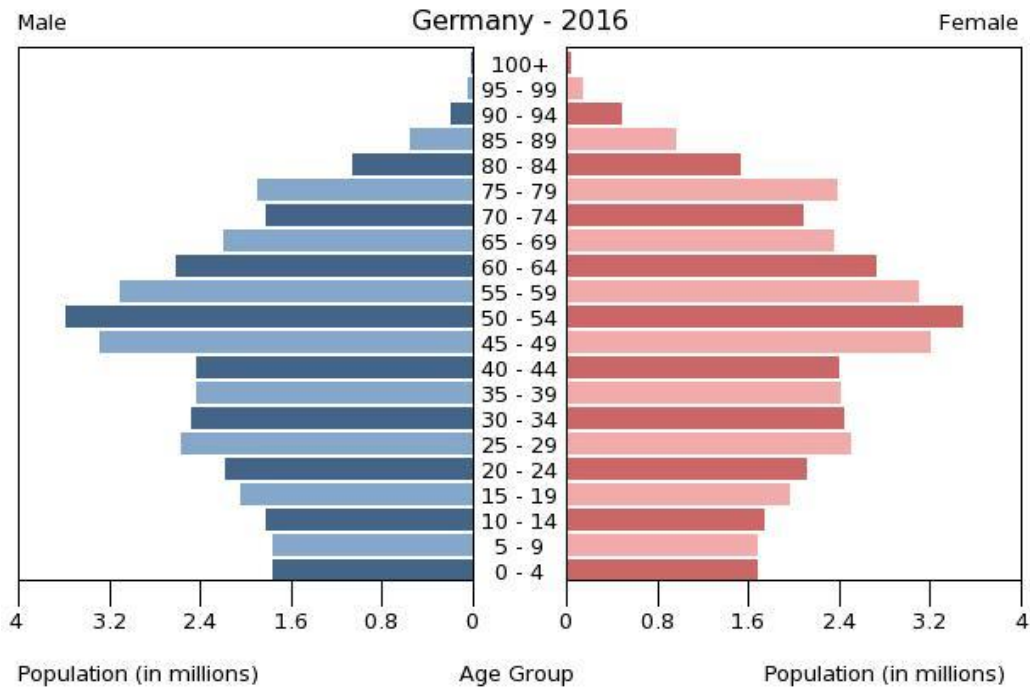
2. पिरामिडनुमा:

ऐसी स्थिति में वृद्धावस्था वर्ग की जनसंख्या कम होती है तथा किशोरावस्था वर्ग की जनसंख्या अधिक होती है। किशोरावस्था, शीघ्र ही यह स्थिति बढ़ती हुयी जनसंख्या को प्रदर्शित करती है। युवावस्था में बदलेगी जो कि जनसंख्या वृद्धि के लिये उत्तरदायी होगी, विकासशील राष्ट्र जैसे भारत, नाइजीरिया, बांग्लादेश, इथोपिया, आदि इसके उदाहरण हैं।



3. घड़ा नुमा:

ऐसी स्थिति में किशोरावस्था वर्ग की जनसंख्या की आपेक्षा युवावस्था वर्ग की जनसंख्या अधिक होगी। जिसके परिणामस्वरूप, अगले 10 वर्षों में प्रजनन के लिये उत्तरदायी जनसंख्या कम होगी, जो कि जनसंख्या में गिरावट का कारण होगी। जर्मनी, इटली, हंगरी, जापान आदि देश इसके उदाहरण हैं।



7.2 जनसंख्या विस्फोट-परिवार कल्याण कार्यक्रम

आधुनिक दौर में विश्व जनसंख्या को दोगुना होने में लगने वाले समय में कमी आयी है। सर्वाधिक जनसंख्या वृद्धि बीसवीं सदी के दौरान दर्ज की गयी। 1950-1990 के बीच, मात्र 40 वर्षों में जनसंख्या 5 अरब से अधिक हो गई। वर्ष 2000 में विश्व की जनसंख्या 6 अरब 30 करोड़ थी और यह अगले 100 वर्षों में चार गुणा बढ़ जायेगी। मानव जनसंख्या की इस अनियंत्रित वृद्धि को 'जनसंख्या विस्फोट' कहा जाता है।

जनसंख्या की अनियंत्रित वृद्धि को जनसंख्या विस्फोट कहते हैं। विकासशील राष्ट्रों में जनसंख्या का स्थिरीकरण केवल परिवार नियोजन कार्यक्रमों को अपनाकर प्राप्त किया जा सकता है। भारत ने 1951 में, जनसंख्या में होने वाली अनियंत्रित वृद्धि को रोकने के लिए परिवार कल्याण कार्यक्रम की शुरुआत की गयी। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जन्म दर को इस सीमा तक घटाना था कि भारत की जनसंख्या एक ऐसे स्तर पर आकर रुक जाए जो राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करे। इस कार्यक्रम में "हम दो, हमारे दो" जैसे नारों को दिया गया।

इस कार्यक्रम का नाम बदल कर बाद में 'परिवार कल्याण' रखा गया। इस कार्यक्रम में सबसे महत्वपूर्ण जनता को गर्भ निरोध के उपलब्ध उपायों की जानकारी देना है। यह जानकारी जनता को सरकारी एजेंसियों आदि के द्वारा दी जाती है। इस कार्यक्रम के उद्देश्य एवं प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं।

1. जन्म दर को नियन्त्रित कर परिवार सीमित रखना।
2. गर्भ निरोधक स्थायी विधियों (महिला व पुरुष नसबन्दी), स्थायी या अन्तराल विधियों (निरोध, गोलियाँ, कापर टी) की जानकारी तथा बंध्याकरण हेतु सलाह व प्रोत्साहन।
3. स्त्री शिक्षा पर जोर।
4. युवक-युवतियों की वैवाहिक आयु (21 वर्ष एवं 18 वर्ष) पूरी होने के पश्चात् विवाह।
5. यौवन शिक्षा की जानकारी।
6. बच्चों में उचित अन्तराल (कम से कम 3 वर्ष रखने की सलाह।
7. गर्भवती स्त्रियों के पोषण, टीकाकरण व नियमित जाँच की व्यवस्था।
8. शिशु मृत्यु दर में कमी लाने हेतु टीकाकरण व स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार।

विकासशील देशों में गर्भ बंध्याकरण सबसे अधिक लोकप्रिय है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में 50 प्रतिशत दंपति परिवार नियोजन को अपना रहे हैं।

राष्ट्रीय जनसंख्या नीति, 2000

इस नवीनतम संशोधित जनसंख्या नीति के अनुसार सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए जीवन में गुणात्मक सुधार किया जाना आवश्यक है, ताकि मानव शक्ति समाज के लिए उत्पादक पूंजी में परिवर्तन हो सके। इस नीति में तीन उद्देश्यों का समावेश है—

1. तात्कालिक उद्देश्य : गर्भ निरोधक उपायों के विस्तार हेतु स्वास्थ्य एवं बुनियादी ढांचे का विकास।
2. मध्यकालीन उद्देश्य : सन् 2010 तक कुल प्रजननता दर को घटाना।
3. दीर्घकालीन उद्देश्य : 2045 तक स्थायी आर्थिक विकास हेतु आवश्यक स्थिर जनसंख्या के उद्देश्य की प्राप्ति।

संशोधित नई नीति में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए निम्नलिखित सामाजिक जनांकिकीय लक्ष्य भी घोषित किए गए हैं—

- बुनियादी प्रजनन तथा शिशु सेवाओं, आपूर्तियों तथा आधारभूत ढांचे से संबंधित अपूर्ण आवश्यकताओं पर ध्यान देना।
- 14 वर्ष की आयु तक विद्यालयी शिक्षा को मुक्त तथा अनिवार्य बनाना। प्रारंभिक तथा माध्यमिक विद्यालय स्तरों पर छात्र और छात्राओं दोनों का ही विद्यालय छोड़ने में 20 प्रतिशत तक कमी लाना। शिशु मृत्यु दर प्रति हजार पर 30 से नीचे लाना।
- मातृत्व मृत्यु दर 1,00,000 प्रति जीवित जन्मों पर 100 से नीचे लाना।
- कन्याओं के विवाह में देरी को प्रोत्साहित करना जो, 18 वर्ष से पहले नहीं तथा 20 वर्ष के बाद करने को तरजीह दी जाए।
- 80 प्रतिशत प्रसव संस्थानों द्वारा 100 प्रतिशत प्रसव प्रशिक्षित दाइयों द्वारा होना।
- प्रजनन विनियमन के लिए सूचना/सलाह और सेवाओं की सार्वभौमिक पहुंच तथा गर्भ-निरोधक के व्यापक विकल्पों का पता लगाना।
- जन्म, मृत्यु, विवाह तथा गर्भावस्था का 100 प्रतिशत पंजीकरण कराना।
- एड्स के प्रसार को रोकना तथा प्रजनन अंग-संक्रमण (आरटीआई) और यौन संचारी रोगों तथा राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन के बीच अपेक्षाकृत अधिक एकीकरण को बढ़ावा देना।
- संक्रमण बीमारियों की रोकथाम और उन पर नियंत्रण।

- प्रजनन तथा शिशु स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था तथा घरों तक इनकी पहुंच करने हेतु भारतीय औषधिक पद्धति को एकीकृत करना।
- टी0एफ0आर0 को प्रतिस्थापन स्तरों को प्राप्त करने हेतु छोटे परिवार के मानदंडों को ठोस रूप से बढ़ावा देना।
- संबंधित सामाजिक क्षेत्र कार्यक्रमों के कार्यान्वयन को एकीकृत करना ताकि परिवार कल्याण एक जन केंद्रित कार्यक्रम बन सके।

नगरीकरण

नगरीकरण शब्द उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है जिसके माध्यम से नगरों का निर्माण होता है। 18वीं शताब्दी में होने वाली औद्योगिक क्रांति ने नगरीकरण को अत्यधिक प्रोत्साहित किया है। औद्योगिकीकरण का परिणाम यह होता है कि एक स्थान पर उद्योगों की स्थापना की जाती है। इन उद्योगों में काम करने के लिए अधिक संख्या में व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर स्थानांतरण प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है।

विकासशील देशों में वर्ष 1975 में 27 प्रतिशत लोग नगरों में रहते थे, वर्ष 2000 में 40 प्रतिशत लोग नगरों में रहते थे अनुमान लगाया गया है कि 2030 तक 56 प्रतिशत लोग नगरों में निवास करेंगे। विकसित देशों की लगभग 75 प्रतिशत आबादी नगरीय क्षेत्रों में रह रही है। रोजगार के बेहतर अवसर की तलाश में गांवों से नगरों और कस्बों में लोगों का आगमन, नगरों की जनसंख्या की वृद्धि से नगर बनता है तो बाहर की दिशा में ऊंची इमारतों के रूप में आकाश की तरफ बढ़ता है। अगर भली प्रकार से उसकी रक्षा न की जाए तो कस्बा हरियाली से वंचित हो जाता है। जिससे नगर में जीवनयापन की गुणवत्ता नष्ट हो जाती है। नगरीय क्षेत्रों में रहने वाले गरीबों की संख्या में भी तेजी से वृद्धि हो रही है। लगभग दुनिया के एक-तिहाई गरीब नगरीय क्षेत्रों में रह रहे हैं। ये लोग गंदी बस्तियों में रह रहे हैं तथा पानी की कमी और गंदी दशाओं की वजह से रोगों के शिकार हो रहे हैं।

नगरीकरण का अर्थ एवं परिभाषा

‘नगर’ शब्द अंग्रेजी भाषा के ‘सिटी’ का हिंदी अनुवाद है। स्वयं ‘सिटी’ शब्द लैटिन भाषा के ‘सिविटाज’ से बना है। जिसका तात्पर्य है नागरिकता। नगरीकरण शब्द नगर से ही बना है। सामान्यतः नगरीकरण का अर्थ नगरों के उद्भव, विकास, प्रसार एवं पुनर्गठन से लिया जाता है।

डेविस के शब्दों में- “नगरीकरण एक निश्चित प्रक्रिया है, परिवर्तन का वह चक्र है जिससे कोई समाज कृषक से औद्योगिक समाज में परिवर्तित होता है।

मिचेल के अनुसार - “नगरीकरण नगर बनने की प्रक्रिया है। जिसमें लोग नगरों की ओर गमन करते हैं, कृषि को छोड़कर अन्य नगरीय व्यवसायों को ग्रहण करते हैं और इसके साथ-साथ व्यवहार प्रतिमानों में भी परिवर्तन लाते हैं।”

नगरीकरण की विशेषताएँ

नगरीकरण की निम्न विशेषताएँ हैं:-

1. नगरीकरण ग्रामों को नगरों में बदलने की प्रक्रिया है।
2. नगरीकरण में लोग कृषि व्यवसाय छोड़कर अन्य व्यवसाय करने लगते हैं।
3. नगरीकरण में लोग गांवों को छोड़कर शहर में निवास करते हैं। जिससे शहरों का विकास प्रसार होता है।
4. नगरीकरण जीवन जीने की एक पद्धति है, जिसका प्रसार शहरों से गांवों की ओर होता है। यदि ग्रामीण व्यक्ति नगरीय जीवन शैल, मनोवृत्ति, मूल्य, व्यवहार और दृष्टिकोण अपनाते हैं तो नगरीय हो सकते हैं।
- 5.

भारत में नगरीकरण

विश्व में जनसंख्या वृद्धि एवं वितरण का प्रारूप समान नहीं है। नगरीय जनसंख्या की वृद्धि दर ग्रामीण जनसंख्या की वृद्धि दर से लगभग दोगुनी अधिक है। विश्व में औद्योगिक क्रांति के समय 03 प्रतिशत लोग नगरों में निवास करते थे। जो 1992 में 40 प्रतिशत हो गए एवं 2000 में विश्व की आधी जनसंख्या नगरों में निवास कर रही है।

2001 की जनगणना के अनुसार भारत में 102.70 जनसंख्या है। जिसमें नगरों की जनसंख्या 28.53 करोड़ तथा गांवों की 74.17 करोड़ है। 1951 में 10 लाख जनसंख्या वाले नगर केवल 5 थे जो 1991 में बढ़कर 23 और 2001 में 35 हो गए। भारत का सबसे बड़ा नगर ग्रेटर मुंबई है, जिसकी जनसंख्या लगभग 1.63 करोड़ है। इसके

पश्चात् कोलकाता की जनसंख्या 1.32 करोड़, दिल्ली 1.27 करोड़ और चेन्नई 64.24 लाख है। भारत का सर्वाधिक नगरीकृत राज्य तमिलनाडु है, जिसकी जनसंख्या 43.35%, नगरीय क्षेत्र में निवास करती है। महाराष्ट्र 42.40%, गुजरात 37.35%, उत्तर प्रदेश 30.78%, मध्यप्रदेश 26.67%, राजस्थान 23.78%, छत्तीसगढ़ 20.0% और बिहार 10.47% जनसंख्या नगरों में निवास करती है।

भारत में नगरीकरण 1951 से 2001 के दशकों में अधिक हुआ है। लेकिन अन्य देशों की तुलना में इनकी गति काफी धीमी है।

भारत में नगरीकरण को प्रभावित करने वाले कारक

भारत में नगरीकरण को प्रभावित करने वाले कारक निम्न प्रकार हैं—

1. ग्रामीण जनसंख्या की कृषि पर निर्भरता
2. अशिक्षा
3. अज्ञानता
4. बढ़ती महंगाई
5. कम गतिशीलता
6. नगरों में आवास की कमी
7. गांवों में यातायात के साधनों का अभाव
8. गांवों में औद्योगिकीकरण की धीमी गति।

नगरीकरण का पर्यावरण पर प्रभाव

भारत में बढ़ते नगरीकरण ने अनेक सामाजिक, आर्थिक समस्याओं और परिवर्तनों को जन्म दिया है। इसका पर्यावरण पर भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा है, जो निम्न रूपों में सामने आता है—

1. **नगरों में बढ़ती जनसंख्या** — गांवों से रोजगार की तलाश में ग्रामीणों का नगरों की ओर पलायन करना जारी है। जिसमें दिन-प्रतिदिन इन नगरों की जनसंख्या और घनत्व में निरंतर वृद्धि हो रही है।
2. **नगरों में गंदी बस्तियों और झुग्गी**— झोपड़ियों में वृद्धि से रोजगार की तलाश में गए ग्रामीण जनता झुग्गी झोपड़ियों और गंदी बस्तियों में बस जाती है। भारत में दिल्ली, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश, पश्चिम बंगाल आदि राज्यों के बड़े नगरों में इनकी परंपरा बढ़ रही है। 'टाऊन एंड कंट्री प्लानिंग ऑर्गेनाइजेशन' के सर्वेक्षणानुसार इन गंदी बस्तियों में निवास करने वाले लोगों में 55% मलेरिया और 27% डायरिया के शिकार थे। यहां जल-मल निकास, शौचालय और स्वास्थ्य सेवाओं की कोई व्यवस्था नहीं है।
3. **प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन** — बढ़ती जनसंख्या व घनत्व के निर्वाह के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तीव्रगति से हुआ है, जिससे भूमि का उपजाऊपन, जल, वन संपदा, जलवायु, खनिजों के प्रभावित होने से प्राकृतिक असंतुलन उत्पन्न हो गया है।
4. **प्रदूषण में वृद्धि** — शहरों में बढ़ते जनसंख्या दबाव के कारण जल, वायु, ध्वनि व मृदा प्रदूषण में वृद्धि होती है। नगरों में यातायात के दबाव से वायु व ध्वनि प्रदूषण बढ़ता है। उद्योगों के कारण जल प्रदूषण और भूमि में बढ़ते रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से भूमि का उपजाऊपन कम होता जा रहा है, आहार प्रदूषण और मृदा प्रदूषण हो रहा है।
5. **वन विनाश** — नगरों में बढ़ती जनसंख्या के कारण नगरों का विस्तार हुआ है। आवास, उद्योगों, सड़कों व विकास के कारण वनों व हरियाली में कमी आई है। शहरों में वन क्षेत्र सीमित होता जा रहा है।
6. **कृषि भूमि में कमी**— नगरों के बढ़ते आकार के कारण आवासीय सुविधाओं व उद्योगों के प्रसार हेतु भूमि की आवश्यकता बढ़ती जा रही है, जिससे समीप की कृषि भूमि आवासीय भूमि के क्षेत्र में निरंतर कमी हो रही है।
7. **पारिस्थितिकी असंतुलन** — बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण प्रकृति प्रदत्त संसाधनों भूमि, जल, वायु, जीव-जंतु, खनिज तेल आदि का अनियंत्रित व अव्यवस्थित उपयोग हो रहा है, जिससे पारिस्थितिकी असंतुलन हो रहा है। परिणामस्वरूप सूखा, बाढ़, भूकंप, तूफान, जलवायु परिवर्तन, पृथ्वी का बढ़ता तापमान जैसी समस्या सामने आ रही है।

महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने चेतावनी देते हुए कहा था कि— "वैज्ञानिक विकास तो ठीक है, लेकिन उसे प्रकृति विरोधी नहीं होना चाहिए।" भारत में जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगाने हेतु परिवार कल्याण कार्यक्रम लागू किया गया है।

7.3 पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 'स्वस्थ शारीरिक, मानसिक व भौतिक स्वास्थ्य के अलावा सामाजिक तनाव, व्याधियों और रोगों से मुक्ति की स्थिति है।' साधारणतः व्यक्ति का बीमारी से पीड़ित न होना और शारीरिक व मानसिक तनाव से मुक्त होना उसका स्वस्थ होना कहलाता है।

मानव के कार्यकलापों से पर्यावरण में परिवर्तन हुए हैं जो उसी के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। बढ़ती जनसंख्या से कई रोग पैदा हो रहे हैं। इसके द्वारा गंदे जल आदि से जलजन्य रोगों तथा वायुजन्य रोगों में वृद्धि होती जा रही है। भारी यातायात के कारण शहरों में दमा जैसे सांस के रोगों का खतरा बढ़ा है। खाद्य उत्पादन बढ़ाने वाले कीटनाशकों ने भी हम सब लोगों के स्वास्थ्य को प्रभावित किया है। विभिन्न प्रकार के कीटनाशक का उपयोग भोजन श्रृंखला में सम्मिलित जीवों को कुप्रभावित करते हैं।

ध्वनि प्रदूषण द्वारा भी मानसिक तनाव, सिर दर्द, चक्कर आना आदि संबंधी बीमारियां होती हैं। मिलावट के कारण जैसे सरसों के तेल में मिलावट के कारण रोग द्राप्सी भी बीमारियां होती हैं। स्वच्छ जल, स्वच्छ वायु, समुचित आवास तथा जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। प्रदूषण व गंदगी बीमारियों तथा मानसिक अवस्था का महत्वपूर्ण कारक है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार पर्यावरणीय स्वास्थ्य में जीवन की गुणवत्ता समेत मानव-स्वास्थ्य के वे पक्ष शामिल हैं, जो पर्यावरण में भौतिक, रसायनिक, जैविक, समाजिक और मनोवैज्ञानिक कारकों से निर्धारित होते हैं।

ये कारक मानव स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं—

1. आहार— विहार स्वास्थ्य को बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बीमारियों का एक कारण भोजन-विषाक्तता भी हो सकता है।
2. संक्रामक सूक्ष्मजीवी— रोगाणु स्वस्थ शरीर में बीमारी पैदा करने का एक घटक है। बैक्टीरिया आदि सूक्ष्मजीव भोजन-विषाक्तता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। संक्रामक सूक्ष्मजीवी श्वास संबंधी बीमारियों जैसे निमोनिया, तपेदिक आदि तथा उदर संबंधी बीमारियों जैसे दस्त, हैजा आदि के लिए भी जिम्मेदार होते हैं। विभिन्न प्रकार के परजीवी (सूक्ष्म-जीवी) मलेरिया, फाइलेरिया, कालाज्वर आदि का कारण है। अधिकतर सूक्ष्मजीवी संक्रमण, प्रदूषित जल तथा प्रदूषित भोजन के कारण होते हैं।
3. रासायनिक कारक— मानवीय गतिविधियों के कारण अनेक प्रकार के रसायन पर्यावरण में प्रवेश कर रहे हैं। इन रसायनों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है।
 - (i) वातक रसायन— विस्फोटक ज्वलनशील
 - (ii) जहरीले रसायन— कोशिकाओं की मृत्यु का कारण

इसके अलावा अन्य रसायन जो कैंसर, जन्म से पहले विकास, अनुवांशिक परिवर्तनों, तंत्रिका तंत्र, प्रजनन, विकास आदि पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। प्रदूषक जैसे धातुएं पारा, सीसा, कैडमियम आदि के प्लोराइड, नाइट्रेट आदि स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं। धातु के बर्तनों में भोजन दूषित हो जाने के कारण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो जाता है। जल वितरण पाइपों में सीसे के जोड़ भी सीसा संदूषण का एक कारण है। विभिन्न कारखानों से निकलने वाले विभिन्न प्रकार के प्रदूषक जैसे वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा प्रदूषण तथा अप्रत्यक्ष रूप से स्वास्थ्य संबंधी बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं।

अतः विषैली धातुएं, पी0वी0सी0, डायक्सिन, रोगनाशक, पशुओं की दवाएं तथा खेतिहार रसायन मनुष्य के स्वास्थ्य पर गंभीर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

7.4 मानवाधिकार

मानव अधिकार वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है तथा जिसके बिना हम मनुष्य के भांति जीवित नहीं रह सकते, मनुष्य को मानवीय अस्तित्व के लिए दिए गए अधिकार कहा जाता है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत मानव अधिकार को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 10 दिसम्बर 1948 को मानव अधिकारों की सर्वाभौमिक घोषणा को अंगीकार किया था। प्रतिवर्ष 10 दिसम्बर को मानव अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है। सर्वाभौमिक घोषणा में घोषित अधिकार 30 अनुच्छेदों में वर्णित हैं, जिन्हें निम्न कोटियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. सामान्य (अनुच्छेद 1 एवं 2)
2. सिविल एवं राजनीतिक अधिकार (अनुच्छेद 3 से 21)
3. आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकार (अनुच्छेद 22 से 27)
4. अन्तिम (अनुच्छेद 28 से 30)

इस घोषणा पत्र में सभी मानव जाति को सभी प्रकार के अन्यायों से रक्षा और मानव अधिकारों के हनन से सुरक्षा तय हुई। इन अधिकारों के द्वारा सामान्य, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, सुरक्षा, समान न्याय तथा विचारों की अभिव्यक्ति सम्बन्धित स्वतन्त्रता दी गई। इसमें व्यक्ति के लिंग तथा रंग के भेद को भुलाकर समान कार्य करने के लिए समान वेतन देने की बात पर जोर दिया गया।

विकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में इन अधिकारों में भेद है। अल्पविकसित तथा विकासशील देशों में जनसंख्या विस्फोट तथा गरीबी के कारण मानव अधिकारों का हनन हो रहा है। गरीबी के कारण प्रतिष्ठा कम होती है जो सीधी रूप से मानव अधिकारों का हनन है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विश्व में प्रत्येक पाँचवा नागरिक अल्पाहार से पीड़ित है, उसके पास स्वास्थ्य सेवाओं का अभाव है। विकासशील देश विभिन्न समस्याओं से जूझ रहे हैं। ऐसी स्थिति में गरीब व्यक्ति शिक्षा की बात भुलाकर अपने बच्चों के रोजगार के लिए सोचता है।

विकसित राष्ट्रों में सामाजिक व आर्थिक अधिकारों की अपेक्षा राजनैतिक अधिकार अधिक महत्वपूर्ण है।

विना (1993) में 'मानव अधिकारों' पर राष्ट्रीय संगोष्ठी में पश्चिम के राजनैतिक तथा सामाजिक अधिकारों व पूर्व के आर्थिक व सामाजिक अधिकारों की समानता पर बल दिया गया। अमेरिका में 1992 बर्टन बिल पास किया जिसमें विकासशील राष्ट्रों (जिसमें भारत भी सम्मिलित था) में मानव अधिकारों के हनन के संदर्भ में 24 मिलियन अमेरिकी डालर की आर्थिक सहायता रोक दी गई। पृथ्वी सम्मेलन (1992) के पश्चात् सतत् विकास आवश्यकता पर पूर्णतः बल दिया गया।

जिनेवा (1994) में संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानव अधिकार एवं पर्यावरण घोषणा पत्र आया जिसमें यह घोषणा की गई कि स्वच्छ, सुरक्षित तथा प्रदूषण रहित पर्यावरण प्रत्येक मानव का अधिकार है। समानता, सुरक्षा तथा पर्यावरणीय न्याय की सुरक्षा सतत् समाज में दी गई है।

अधिकतर विकसित राष्ट्र प्राकृतिक स्रोतों के दोहन द्वारा पर्यावरण प्रदूषित कर रहे हैं। विकसित राष्ट्र, विकासशील राष्ट्रों में जहरीले तथा घातक अपशिष्टों में निर्यात कर रहे हैं। गरीब वर्ग तथा कर्मचारी कारखानों के प्रदूषित पर्यावरण से सर्वाधिक प्रभावित हो रहे हैं। मानव अधिकारों एवं पर्यावरण पर एक घोषणा पत्र दिया गया है जो नागरिक, सरकार, अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं आदि के अधिकारों तथा कर्तव्यों का पूर्ण विवरण है—

यह घोषणा-पत्र 5 भागों में बांटा गया है।

भाग-I : यह भाग पारिस्थितिक रूप से स्वच्छ पर्यावरण, निर्वाह विकास तथा शांति से सम्बन्धित मानवाधिकारों को बताता है। यह भाग वर्तमान की जरूरतें पूरी करने तथा भविष्य के लिए संसाधनों के दुरुपयोग पर बल देता है।

भाग-II: यह भाग प्रदूषण रहित पर्यावरण के अधिकार को बताता है। यह भाग अपनी जमीन और रहने के स्थान पर अधिकार देता है। प्रत्येक नागरिक को आपदा के समय सहायता पाने का हक है।

भाग-III : यह भाग प्रत्येक नागरिक को पर्यावरण सम्बन्धी सूचना, शिक्षा, जागृति और पर्यावरण सम्बन्धित मामलों में सलाह देने का अधिकार देता है।

भाग-IV: यह भाग पर्यावरणीय ह्रास को रोकने के कर्तव्य को बताता है। यह इस बात को भी बताता है कि प्रदूषण को रोकने की जिम्मेदारी प्रत्येक नागरिक की होती है।

भाग-V: यह भाग प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं निर्वाह विकास में प्रत्येक के लिए सामाजिक न्याय के विषय को बताता है।

7.5 मूल्य शिक्षा

मूल्यों का तात्पर्य हमारे अपने सिद्धान्तों और मानदंडों से है जिनके आधार पर हम यह तय करते हैं कि कौन-सा व्यवहार सही है और कौन-सा व्यवहार गलत है। मनुष्य का नजरिया सूचना प्रौद्योगिकी की चमक की दुनिया में सिमट सा गया है जिससे आदर्शवाद और अच्छे गुणों में कमी आई है। मूल्य आधारित शिक्षा की

आवश्यकता तभी है ताकि युवा वर्ग को सही दिशा प्राप्त हो सके। मूल्यों पर आधारित शिक्षा द्वारा युवा वर्ग में शांति प्रियता, सहायता, सहयोग, सदभाव आदि गुणों का संचार होना चाहिए।

मूल्यों पर आधारित शिक्षा मानव-जीवन से सम्बन्धित मूल्यों जैसे सामाजिक मूल्यों, व्यावसायिक मूल्यों, धार्मिक मूल्यों, राष्ट्रीय मूल्यों तथा पर्यावरणीय मूल्यों का सम्मिलित रूप है। पर्यावरण संबंधी मूल्यों का बोध हमारे पर्यावरण की सम्पत्तियों के महत्व की समझ और पर्यावरण के विनाश से पैदा होने वाली समस्याओं के अनुभव की प्रक्रिया द्वारा पैदा होता है। पर्यावरण शिक्षा के अन्तर्गत मूल्यों पर आधारित अनेक नई अवधारणाओं का समावेश होना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय के निर्देश के अनुसार भारत में पर्यावरणीय अध्ययन व विकास को विद्यालय के पाठ्यक्रम में व महाविद्यालयों में स्नातक स्तर पर स्नातक की कक्षाओं में अनिवार्य विषय के रूप में अपनाया गया है। इस निर्देश का उद्देश्य सभी नागरिकों को पर्यावरण की दृष्टि से साक्षर बनाना है। पर्यावरण पर पड़ने वाले असर का प्रभाव हमारे स्वास्थ्य तथा भविष्य पर पड़ेगा। अतः यह हम सबकी मुख्य जिम्मेदारी है कि हम पर्यावरण की दृष्टि से साक्षर हो तथा इसके मूल्यों को समझे।

पर्यावरणीय मूल्यों का सम्बन्ध पूर्णतः पर्यावरण से जुड़ा हुआ है। जिस प्रकार हम भोजन, जल और अन्य पदार्थों के रूप में संसाधनों को महत्व देते हैं उसी प्रकार पर्यावरण की ऐसी सेवाएँ भी हैं जिनको हमें महत्व देना चाहिए। उदाहरण:- पौधों के द्वारा कार्बन-डाई ऑक्साइड (CO₂) को हटाकर और ऑक्सीजन (O₂) को बढ़ाकर वायु को स्वच्छ करने के बारे में प्रकृति की व्यवस्थाएँ, प्रकृति का जल-चक्र, जलवायु की व्यवस्थाएँ आदि शामिल हैं।

पर्यावरणीय मूल्यों से जुड़े मुख्य पहलू निम्न हैं:

1. प्रकृति को महत्व

प्रकृति को महत्व देना पर्यावरण संबंधी मूल्यों की बुनियादी भावना है। हम ऐसे विश्व-समुदाय के भाग हैं जिसमें 18 लाख अन्य प्रकार के प्राणी भी शामिल हैं। सभी रूपों की जीवन की रक्षा करना हमारा महान दायित्व बनता है।

2. संस्कृति को महत्व

हर संस्कृति को अपने अस्तित्व को बनाये रखने का अधिकार है। इसलिए सभी को यह शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए जो उनकी संस्कृति तथा जीवनशैली में बाधा बने बिना उन्हें बेहतर आर्थिक स्थिति पाने का अवसर दे।

3. समाजिक न्याय

गरीबों और अमीरों के बीच की खाई बढ़ने से रोकना चाहिये साथ ही अमीरों का कर्तव्य है कि वे गरीबों के अधिकारों की रक्षा करें। अगर यह न किया तो गरीब बगावत करेंगे जिससे अराजकता व आतंकवाद का प्रसार होगा।

4. मानव की धरोहर

मानव की धरोहर की रक्षा आज पर्यावरण का गंभीर विषय बन चुका है। हम एलोरा तथा अंजता की गुफाओं, 10वीं व 15वीं सदी के मंदिरों की, ताजमहल जैसी इमारतों को जन्म देने वाली मुगल शैली आदि की सराहना तो करते हैं परन्तु हम उनके संरक्षण के लिए कम कार्य करते हैं।

5. संसाधनों का उपयोग

विकासशील देशों में जनता की भारी संख्या के बावजूद विकसित देशों के कम लोग ही विकासशील देशों से अधिक संसाधनों और ऊर्जा का उपयोग कर रहे हैं। वह ऊर्जा और संसाधनों के प्रति व्यक्ति उपयोग तथा फँकने योग्य वस्तुओं के एक के उपयोग के कारण पैदा अपशिष्ट पर्यावरण पर भारी दबाव डाल रहे हैं।

6. सांझी सम्पत्ति संसाधन

प्रकृति में पुर्नचलित जल, वायु, जलवायु और मृदा को बनाये रखने वाले वन और चारागाह यह सब सांझी सम्पत्ति संसाधन हैं। वन विभाग तथा स्थानीय जनता के बीच वनों आदि का नियंत्रण अर्थात् शाक्ति का विभाजन इस प्रकार की सांझी सम्पत्ति के उपयोग के लिए सही रहेगा।

7.6 एच.आई.वी. / एड्स

HIV (Human Immuno Deficiency Virus) के द्वारा AIDS (Acquired Immuno Deficiency Syndrome) होता है।

यह संक्रमित व्यक्तियों के ऊतक द्रवों के सम्पर्क खासकर यौन संबंधों के द्वारा होता है। यह संक्रमित व्यक्ति की रोगरोधी क्षमता को कम करता है इसलिए व्यक्ति अनेक पर्यावरण जनित रोगों से ग्रस्त होते हैं तथा उनकी सामान्य जीवन जीने की क्षमता कम होती है संक्रमित व्यक्ति रोगों के अधिकाधिक शिकार होते हैं और अंत में मर जाते हैं।

एड्स पसीने, आंसू, मूत्र, लार, बर्तन कपड़े या मच्छर के काटने से नहीं फैलता है। एड्स मृत्यु को चौथा बड़ा कारण माना जाता है। 2003 में लगभग 30 लाख लोग एड्स के कारण मर गए। यह एशिया तथा पूर्वी यूरोप में तेजी से फैल रहा है आने वाले कुछ वर्षों में चीन, रूस तथा भारत में एड्स से ग्रसित लोगों की संख्या बढ़ सकती है। 1983 में एड्स की खोज हुई थी इसके विषाणु के स्रोत का सही पता नहीं चला है। अधिकतर तथ्यों के अनुसार ऐसा माना जाता है कि एड्स का विषाणु अफ्रीका के बंदर या चिंपाजी से मनुष्य तक पहुँचा। एक दूसरे अनुमान के अनुसार यह अंदाजा भी लगाया जा रहा है कि एड्स का विषाणु अनुवांशिक इंजीनियरिंग के दौरान प्रयोगशाला में बना। यह शरीर की रोग विरोधी क्षमता को कम करता जाता है जिस कारण रोगों से लड़ने वाले T – कोशिका की कमी हो जाती है। एड्स से पीड़ित व्यक्ति को कैंसर भी हो सकता है। एड्स के दौरान संक्रमण की संभावना शराब के सेवन द्वारा और बढ़ जाती है।

एच.आई.वी. पॉजिटिव और एड्स में अन्तर

आमतौर पर उपलब्ध एलिसा टेस्ट द्वारा जांच करने पर एच.आई.वी. संक्रमण होने के लगभग 12 सप्ताह के बाद ही रक्त की जांच से ज्ञात होता है कि व्यक्ति के शरीर में एच.आई.वी. विषाणु प्रवेश कर चुका है, ऐसे व्यक्ति को एच.आई.वी. पॉजिटिव कहते हैं। एच.आई.वी. के शरीर में प्रवेश के समय से लेकर टेस्ट द्वारा इसकी पुष्टि होने तक की अवधि को विन्डो पीरियड कहते हैं। ऐसे व्यक्ति कई वर्षों तक सामान्य जीवन व्यतीत कर सकता है, किन्तु दूसरों को बीमारी फैलाने में सक्षम होता है। एच.आई.वी.विषाणु मुख्यतः शरीर को बाहरी रोगों से सुरक्षा प्रदान करने वाली रक्त में उपस्थित सी.डी.-4 कोशिकाओं को धीरे-धीरे नष्ट करता रहता है। कुछ वर्षों बाद यह स्थिति हो जाती है कि शरीर आम रोगों से भी बचाव नहीं कर पाता तथा टीबी, कैंसर, केन्डीडियासिस जैसे रोगों से ग्रसित होने लगता है। इस प्रकार जब विभिन्न बीमारियों के लक्षण नजर आने लगे या रक्त में सी.डी.-4 कोशिकाओं की संख्या घटकर 200 से कम हो जाये, तो इस अवस्था को एड्स कहते हैं।

एच.आई.वी. कैसे फैलता है:

1. संक्रमित व्यक्ति से असुरक्षित यौन सम्बन्ध से।
2. एड्स से संक्रमित व्यक्ति का रक्त-चढ़ाए जाने पर।
3. संक्रमित व्यक्ति को लगी हुई सुई से किसी और को दवा चढ़ाने पर भी यही होता है।
4. एच.आई.वी संक्रमित माता द्वारा होने वाले बच्चे को।
5. संक्रमित अंग प्रत्यारोपण से।

7.7 महिला एवं बाल कल्याण

महिला एवं बाल कल्याण का अनेक पर्यावरणीय कारकों से गहरा संबंध है। महिला एवं बालक/बालिका शारीरिक रूप से कोमल, लाचार तथा आर्थिक रूप से दूसरों पर निर्भर होने के कारण समाज में प्रभावित रहते हैं। महिलाएं मुख्यतः घर, ऑफिस, विवाह, समाज आदि में भेदभाव सहन करती हैं। लिंग भेद, शारीरिक शोषण आदि विभिन्न संस्कृतियों एवं राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न रूपों में प्रचलित है। आंकड़ों के अनुसार अपहरण, बलात्कार, दहेज, घरेलू हिंसा व मारपीट, मानसिक प्रताड़ना आदि की संख्या बहुत अधिक है और महिलाओं की दशा सुधारने के लिए सार्थक कदम उठाने पड़ेंगे। इसके लिए महिलाओं की शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। महिलाओं की दशा पर नजर रखने के लिए महिला एवं शिशु विकास मंत्रालय की स्थापना की गई है। समाज में महिला कोष व अन्य महिला समूह सक्रिय हैं जो इनकी दशा सुधारने की दिशा में कार्य कर रहे हैं। महिला एवं शिशु विकास मंत्रालय की स्थापना महिलाओं की दशा पर नजर रखने के लिए की गई है। समाज में समान दर्जा और प्रतिष्ठा दिलाने के लिए महिलाओं के लिए समाजिक परिवर्तन की आवश्यकता है। गाँव और शहर दोनों में महिलाएं पुरुषों से अधिक समय तक काम करती हैं उनमें काम के द्वारा स्वास्थ्य संबंधी खतरे अधिक होते हैं शहरी क्षेत्रों में निम्न आयवर्ग की महिलाएं गई बस्तियों और धुएँ भरे झोपड़ियों में रहती हैं और लंबे समय तक अंदर ही काम करती हैं जिससे सांस के रोग भी हो

जाते हैं। निम्न आय वर्ग की महिलाओं को अपर्याप्त खुराक से कुपोषण और रक्तहीनता की स्थिति पैदा होती है। भारत देश में पुरुषों की आपेक्षा महिलाओं पर कम ध्यान दिया जाता है। उन्हें शिक्षा की सुविधाएँ कम दी जाती हैं। यह पर्यावरणीय तथा सामाजिक भेदभाव चिंता का विषय है और इसे देश से दूर किये जाने की बहुत अधिक आवश्यकता है।

शिशु कल्याण

शिशु किसी भी समाज की अमूल्य धरोहर है। अनुमानतः कुछ देशों में हर पांच बच्चों में एक-एक शिशु 5 वर्ष की आयु से पहले ही मर जाता है। प्रत्येक 10 में से 7 मौते प्रमुख कारणों जैसे निमोनिया, दस्त, खसरा मलेरिया आदि से हो जाती है। विश्व शिशु सम्मेलन में बच्चों के कल्याण के लक्ष्य को प्राप्त करने की बात पर जोर दिया गया है। यह सम्मेलन 30 सितम्बर 1990 को हुआ था। भारत की बच्चों के अस्तित्व, सुरक्षा एवं विकास के लिए इस घोषण पत्र में प्रतिभागी रहा। बच्चों की स्थिति में सुधार लाने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय नीति तैयार की गई है। इस नीति में बच्चों की शिक्षा स्वच्छ जल की सुविधा, पोषण, सफाई और समुचित विकास को प्राथमिकता दी गई है। बच्चों में होने वाले विभिन्न बीमारियाँ निम्न है।

(i) **सांस की बीमारी:** कम हवा वाले तथा धुएँ भरे, कम रोशनी वाले मकानों में रहने वाले बच्चों को सांस के रोग खासकर हो जाते हैं।

(ii) **निमोनिया:** निमोनिया 5 साल से कम उम्र के बच्चों की मौत का प्रमुख कारण है। इससे हर साल लगभग 20 लाख से अधिक बच्चों की मृत्यु हो जाती है।

(iii) **खसरा:** खसरा होने पर बच्चों को बुखार, शरीर में दर्द, शरीर पर चकत्ते आदि हो जाते हैं। इस रोग से 5 वर्ष से कम आयु के 1,50,000 से अधिक बच्चों की मृत्यु हो जाती है।

(iv) **कुपोषण:** बच्चों में भोजन का अभाव, पोषण के गलत तरीके और संक्रमण आदि के कारण मृत्यु तक हो जाती है। 2 माह से लेकर 6 वर्ष तक के बच्चे में कुपोषण का खतरा अधिक होता है।

7.8 पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका

पर्यावरण शिक्षण व स्वास्थ्य, राजनीति, अर्थशास्त्र व व्यवसाय आदि की दृष्टि में सूचना प्रौद्योगिकी की विशेष भूमिका है। मानव-स्वास्थ्य से जुड़े प्रश्नों और मुद्दों को समझने में सूचना प्रौद्योगिकी की उन्नति के कारण तीव्र वृद्धि हुई है। सूचना तंत्र, इंटरनेट तथा उपग्रहों से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पर्यावरण से सम्बन्धित समस्त जानकारी जुटाई जा रही है। भारत सरकार में, पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने सभी जैविक समुदायों से सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्र करने का कार्यभार लिया है। इसके अन्तर्गत निम्न जानकारी तंत्र है—

1. **राष्ट्रीय प्रबंधन सूचना तंत्र:** इसमें विभिन्न शोध परियोजनाओं पर कार्य कर रहे वैज्ञानिकों तथा उनके विषयों की जानकारी उपलब्ध है।
2. **पर्यावरण सूचना तंत्र:** पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा इसका विकास किया गया है। देशभर में यह 25 केन्द्रों में सक्रिय है और प्रदूषण नियंत्रण, नई तकनीके, जैव विविधता, ऊर्जा के स्रोत, खनन आदि संबंधित जानकारी एकत्र करता है।
3. **राष्ट्रीय व्यवसायिक स्वास्थ्य संस्थान:** यह संस्थान प्रदूषित परिवेश में कार्य करने से जुड़े स्वास्थ्य पर होने वाले प्रभावों को एकत्र करने का कार्य करता है।
4. **भौगोलिक सूचना तंत्र:** उपग्रह से प्राप्त चित्र विभिन्न जैविक तथा भौतिक संसाधनों के बारे में जानकारी एकत्र करने का महत्वपूर्ण स्रोत है। यह तंत्र पर्यावरण प्रबंधन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है।

प्रश्न

1. जनसंख्या वृद्धि से क्या अभिप्राय है?
2. 'जनसंख्या विस्फोट' से आप क्या समझते हैं? भारतीय परिदृश्य की चर्चा करें।
3. मानवाधिकारों की विश्व घोषणा क्या है? समानता, न्याय और सततता प्राप्त करने में इनका क्या योगदान है?
4. जनसंख्या एवं पर्यावरणीय कारकों के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों का वर्णन करें?
5. मूल्य शिक्षा से क्या अभिप्राय है?

6. एच.आई.वी. कैसे फैलता है?
7. एच.आई.वी. पॉजिटिव और एड्स में अन्तर क्या है।
8. सूचना क्रान्ति से क्या अभिप्राय है?
9. जनसंख्या किस तरह पर्यावरण को प्रभावित करता है ?
10. भारत की प्रगति के लिये एक सफल परिवार कल्याण कार्यक्रम क्यों जरूरी है ?
11. जलवायु परिवर्तन का मनुष्य के स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? उदाहरण सहित समझाये।
12. पर्यावरण एवं मानव स्वास्थ्य में सूचना प्रौद्योगिकी की भूमिका का उल्लेख करें।